ISSN 0973-3914

RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL AND LIFE SCIENCES

HALF YEARLY, BILINGUAL (English/Hindi)

A REGISTERED REVIEWED/REFEREED RESEARCH JOURNAL
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory©, ProQuest, U.S.A (Title Id: 715205)

अंक–XXV-II हिन्दी संस्करण वर्ष–13 सितंबर, 2018

UGC
Journal No. 40942
Impact Factor 3.112

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act, 1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

आई एस एस एन 0973–3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

पंजीकृत रिव्यूड/रेफर्ड रिसर्च जरनल

A Registered Reviewed/ Refereed

U.G.C. Journal No. 40942, Impact Factor 3.112
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest,
U.S.A. Title Id : 715205

अंक-XXV-II	हिन्दी संस्करण	वर्ष-13	सितम्बर, 2018

प्रधान सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

ऑनरेरी सम्पादक

डॉ. एस. अखिलेश

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ला

प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ला

संयुक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त प्राध्यापक रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा की मुख्य शोध पत्रिका

म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (आचार्य) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
   arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर (आचार्य) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर।
   rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत (आचार्य) डॉक्टर हरिसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर।
   drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह (आचार्य) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी।
   imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव (आचार्य) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।
   anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला (सेवानिवृत्त (आचार्य)) कांगड़ा हिमाचल प्रदेश।
   bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना (सह प्राध्यापक) अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी।
   drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा (आचार्य) महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट।
   pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना (आचार्य) इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
   ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय (आचार्य) विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश।
    drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया (सह प्राध्यापक इतिहास) राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान।
    pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी (आचार्य) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
    dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे (प्राध्यापक) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल। shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव (आचार्य) शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान।
    dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही (आचार्य) अलवर राजस्थान।
    jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी (सेवानिवृत्त (आचार्य)) रीवा मध्य प्रदेश।
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच एन बी केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड।
    rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग–अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका रिव्यूड एवं रेफर्ड हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है। शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई–मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50–100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।
- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट– पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए–4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
  researchjournal.journal@gmail.com
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई–मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	**व्यक्तिगत सदस्यता**	**संस्थागत सदस्यता**
दो वर्ष	2000.00	2500.00
पाँच वर्ष	4000.00	5000.00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच–रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: **गायत्री पब्लिकेशन्स**
रीवा- 486001 (म.प्र.)

लेजर कम्पोजिंग: **अरविन्द कुमार व्यास**
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

एस.एस.डी.-4, 'गोकुल', विन्ध्य विहार कालोनी, ए.जी. कॉलेज रोड, दुर्गा मंदिर के सामने, रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

सेंटर फॉर रिसर्च स्टडीज के मुख्य रिसर्च जर्नल आफ सोशल एंड लाइफ साइंसेस के प्रकाशन के 12 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। इन 12 वर्षो में इस जर्नल के अंग्रेजी/ हिंदी संस्करण के 24 छमाही अंक आप सब के सहयोग से प्रकाशित हो चुके हैं। 13 वें वर्ष इस जनरल का प्रकाशन अब छमाही के स्थान पर तिमाही किए जाने का निर्णय लिया गया है। अब यह जर्नल प्रत्येक वर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर अंक के रूप में प्रकाशित होगा। 13वें वर्ष का प्रथम तिमाही अंक सितंबर 2018 का प्रकाशित किया जा रहा है। इसके भी अंग्रेजी व हिंदी संस्करण पूर्वत प्रकाशित किए गए हैं। यह उपलब्धि परम पिता परमेश्वर, भारत सरकार के प्रतिष्ठित संस्थानों– विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, निस्केयर, केंद्र एवं राज्यों के विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों तथा देश के उच्च शिक्षा संस्थानों, शोध केंद्रों के विद्वान शिक्षाशास्त्रियों, आचार्यो, प्राध्यापकों एवं शोधार्थियों के सहयोग से ही प्राप्त हो सकी है। यह हमारे लिए बड़े गौरव की बात है कि देश के सभी प्रांतों, केंद्र शासित क्षेत्रों के विद्वानों के शोध पत्र प्रकाशित करने का अवसर हमें विगत 12 वर्षो से प्राप्त हो रहा है। समसामयिक ज्वलंत विषयों से संबंधित शोध पत्र सदैव इस रिसर्च जर्नल में प्रकाशित हुए हैं। वर्तमान समय में भारतीय राजनीति के संदर्भ में कई विषयों पर शोध चिंतन की आवश्यकता है।

केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान मंडलो, लोकसभा एवं प्रांतीय विधानसभाओं के निर्वाचन एक साथ एक समय पर हों, जैसा कि प्रारंभ में होता रहा है, इससे निर्वाचनो में होने वाले व्यय में कमी आएगी, साथ ही सरकारों की कार्य अवधि भी एक समान होगी, इस संबंध में निर्वाचन आयोग, भारतीय संसद, विभिन्न जन मंचों पर यह विचार विमर्श हो रहा है और इसकी आवश्यकता भी है। इसी तरह व्यवस्थापिका सदनों की कार्यवाही ठीक से ना चलने देना, विपक्ष की भूमिका बन गया है और इससे यह स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या व्यवस्थापिका सदनों के स्थान पर मीडिया और अन्य वाह्य स्थानों पर राजनीतिक प्रश्नों पर विचार विमर्श बेहतर तरीके से होने का समय अनुकूल है और यदि ऐसा है तो भारत में संसदीय शासन प्रणाली के स्थान पर अध्यक्षात्मक प्रणाली की क्या आवश्यकता उत्पन्न हो गई है ? व्यवस्थापिका सदनों में जिस तरह गंभीर अपराधों के आरोपी सदस्य निर्वाचित हो रहे क्या भारतीय लोकतंत्र के लिए ठीक है ? यह कहा जा सकता है कि इस पर रोंक लगनी चाहिए, यह कार्य निर्वाचन आयोग, संसद व जनता को करना है और इसके लिए जागरुकता और विचार–विमर्श की आवश्यकता है। इसी तरह देश के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय एवं दिशा निर्देशों का पालन सरकारों को करना चाहिए।

केंद्र सरकार द्वारा अभी हाल ही में उच्चतम न्यायालय के एक महत्वपूर्ण निर्णय को अर्थहीन बनाने में जल्दबाजी में उठाया गया कदम कहॉ तक उचित है ? यह विचारणीय प्रश्न है। कोई भी ऐसे निर्णय लेने के पूर्व जनता के बीच तथा संसद में इस पर बहस होनी चाहिए और तभी कुछ कदम उठाया जाना चाहिए। आरक्षण का प्रश्न भी विचारणीय हो

गया है, जातिगत आरक्षण कब तक ? कहां तक ? क्या धार्मिक आरक्षण (जैसा कि कुछ राजनीतिक दल चाहते हैं) उचित होगा ? नियुक्ति के बाद पदोन्नति में भी आरक्षण क्या उचित है ? लोकसेवा राजनेताओं की निजी मिल्कियत नहीं है, उत्कृष्टता की अवहेलना कब तक जारी रहेगी ? इन प्रश्नों पर गंभीर विचार-विमर्श एवं चिंतन होना चाहिए। संविधान निर्माताओं की मूल भावना के अनुरूप आरक्षण उचित है किंतु तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए उठाए गए कदम क्या ठीक है ? अब समय आ गया है कि हम सामाजिक समस्याओं के निदान हेतु बनाए गए नियमों, विधियों पर पुनर्विचार करें और उचित संशोधन करें। आशा है, आगामी अंको में हमें इन विषयों पर शोध पत्र प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त होगा हमें आपका सहयोग एवं मार्गदर्शन हमेशा की भांति प्राप्त होता रहेगा।

हम आपको विश्वास दिलाते है कि भारत सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दिशानिर्देशों के अनुसार हम आपके स्तरीय शोध पत्रों का प्रकाशन आगामी अंको में करते रहेगें।

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

रीवा, गाँधी जयंती, 02 अक्टूबर, 2018

अनुक्रमणिका

1. गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में प्रचलित संस्कारगीतों (मांगलगीतों) में निहित पर्यावरणीय तत्व — 09
सम्पत्ति नेगी
डी. पी. सकलानी

2. बाल्मीकियों में सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण — 20
विपिन कुमार

3. भारत में बाल अपचार (रीवा नगर के संदर्भ में) — 23
अखिलेश शुक्ल
श्रृद्धा पयासी

4. जनजातीय जीवन की परम्परा एवं संस्कृति का संवाहक :महुआ (एक अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के गोंड़ जनजाति के विशेष संदर्भ में) — 29
अशोक कुमार नाग

5. गोंड़ जनजाति एवं परिवार — 38
विराज दुबे

6. कौटिल्यीय अन्तर्राज्य–सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता — 41
दिवांशु कुमार

7. औपनिवेशवाद के परिप्रेक्ष्य में : माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर — 46
देवेन्द्र सिंह राणा
हितेन्द्र सिंह

8. कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का विवेचनात्मक अध्ययन — 55
संयोगिता दुबे

9. भारत में राष्ट्रवाद : इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ — 60
ब्रज किशोर सिंह

10. वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे सम्पत्ति के अधिकार की संवैधानिक परिप्रेक्ष्य — 68
अमृता कुमारी

11. कृषि क्षेत्र की वित्तीय समस्याएं और समाधान हेतु सुझाव (विशेषकर खरगोन जिले के संदर्भ में) — 73
अशोक कोचले

12. छत्तीसगढ़ राज्य के सीमेन्ट उद्योग में कार्यरत अकुशल श्रमिकों की रोजगार के प्रति संतुष्टि का अध्ययन (बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में) — 77
जितेन्द्र कुमार
आर. पाण्डेय

13. मेवाड़ के मध्यकालीन दरबारी जीवन की विशिष्ट प्रथाऐं 84
अंजना बारठ
14. मलिका किश्वर साहिबा ''जनाव ऑलिया''
अवध की एक उर्जावान बेंगम की कहानी 88
नरेन्द्र सिंह
15. आधुनिक कामकाजी महिलायें : उनका मनोशारीरिक स्वास्थ्य 94
ज्योति बाला चौबे
रूपम अजीत यादव
16. महात्मा गांधी का शिक्षा–दर्शन 97
नवीन कुमार श्रीवास्तव
17. रीवा जिले में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन
सम्बन्धी जन–जागरूकता 113
रियंका सिंह
18. प्रेमचन्द एवं हितेश डेका के उपन्यास में किसान 118
नुरजाहान रहमातुल्लाह
19. बच्चन और समाज
('क्या भूलूं क्या याद करू, 'नीड़ का निर्माण फिर' के विशेष संदर्भ में) 122
मीनाक्षी देवी
20. मनोहरश्याम जोशी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त
विषाक्त साम्प्रदायिकता 126
अनिका सिंह
मृदुल जोशी
21. मंगलेश डबराल की कविताओं में यथार्थ और संवेदना 130
गिरजाशंकर गौतम
रामेश्वरी दास
22. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना 137
कंचनलता यादव
23. असमीया उपन्यासकार रजनीकांत बरदलै के उपन्यास के नारी पात्र 143
चयनिका शइकीया

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में प्रचलित संस्कारगीतों (मांगलगीतों) में निहित पर्यावरणीय तत्व

* सम्पत्ति नेगी
** डी. पी. सकलानी

सारांश– *प्राचीन काल से ही गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन का प्रकृति एवं पर्यावरणीय तत्वों से आत्मीय संबंध रहा है। प्रकृति और मानव की एकसूत्रता व्यक्त करने वाला यह सहचर–भाव गढ़वाल हिमालय की उपत्यकाओं में विशेष रूप से विकसित हुआ, क्योंकि यहां मनुष्य का जीवन मूलतः प्रकृति का जीवन है जिसमें मानव और प्रकृति के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं उभर पाई है। यहां के लोकजीवन के लिए प्रकृति केवल वर्ण्य विषय ही नहीं अपितु अनुभूति की वस्तु भी रही है, जिसके कारण दोनों के बीच भावात्मक समरूपता और पारस्परिक सापेक्षता के दर्शन होते हैं। इसी भावना के फलस्वरूप गढ़वाल हिमालय के लोक–जीवन में अनेक ऐसी सामाजिक एवं धार्मिक परंपराओं ने जन्म लिया, जो प्रकृति और मानव के संबंध–सूत्रों का परिचय देती हैं। लोकजीवन में स्थापित प्रकृति और मानव के संबंध–सूत्रों को यहां के लोकजीवन में सम्पन्न होने वाले संस्कारों के मांगलिक पक्ष अर्थात् मांगलगीतों में निहित पर्यावरणीय तत्वों के समावेश एवं महत्व के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जनसामान्य में पर्यावरण के प्रति सजगता, संवेदनशीलता एवं चेतना का बीजारोपण इन मांगलगीतों के माध्यम से करने का लोकसंस्कृति का यह अनूठा उदाहरण है। मांगलगीत जीवन को मांगलिक, कल्याणकारी एवं शुभ बनाने के लिए गाये जाते हैं। गढ़वाल हिमालय के लोगों की प्रतिछाया समझे जाने वाले मांगलगीत जनमानस की प्राकृतिक तत्वों के प्रति आस्था और विश्वासों का ज्ञान कराते है। लोकजीवन की प्राकृतिक तत्वों में आस्था को इसी बात से समझा जा सकता है कि किसी भी मांगलिक कार्य को शुरू करने से पहले यह लोग भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश का आह्वान करते हैं और इन पर्यावरणीय तत्वों को देवता के रूप में पूजते हैं। साथ ही इनकी पूजा किये बिना कोई भी मांगलिक कार्य पूर्ण नही समझा जाता। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से इसी पहलू को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है।*

मुख्य शब्द– मानव और प्रकृति, लोक संस्कृति, संस्कार, सप्तपदी।

शोध विषय– मानव और प्रकृति के मध्य संबंधों को यदि भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो वैदिक काल से ही भारतीय मनीषियों द्वारा प्रकृति और

* शोध छात्रा, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि., श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
** आचार्य, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि., श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

पर्यावरण के प्रति सतत् कृतज्ञता ज्ञापन और प्रतिदान को सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का प्रमुख अंग माना है। इन अनुष्ठानों की परम्परा से ही सांस्कृतिक परम्पराएं बनीं। कृतज्ञता का यह भाव पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायक बना। प्रकृति के अधिकाधिक निकट रहने के कारण ही वैदिककालीन मनीषियों द्वारा अनेक ऐसी सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं का निर्माण किया गया जिनका पर्यावरण से सीधा संबंध था। जनसमुदाय प्रकृति को संरक्षित रखते हुए जीवन और प्रकृति को अक्षुण्ण बनाए रखे, इसके लिए जनसामान्य में प्रकृति के प्रति चेतना का संचार होना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु वैदिक मनीषियों एवं शास्त्रकारों के द्वारा भारतीय जीवन को संस्कारों की श्रृंखला में गूँथकर पूर्ण, सार्थक एवं पवित्र बनाने की चेष्टा की गई। भारतीय जीवन को परिष्कृत करने के लिए 40 संस्कारों का प्रमाण मिलता है,[1] किन्तु कालान्तर में 16 संस्कार संपन्न करना जीवन की पूर्णता का द्यौतक बन गया। इन संस्कारों के संपादन की प्रक्रिया में मंत्रोचार आधारबिन्दु का कार्य करते हैं मंत्र न केवल प्रक्रिया के संचालन के लिए आवश्यक हैं, अपितु संस्कारों की आवश्यकता एवं सार्थकता के लिए भी आवश्यक हैं। मंत्रोचारण जीवन को मंगलमय बनाने के साथ ही जीवन की मांगलिकता के सूत्रधार भी हैं। मंत्रों में अन्य महत्वपूर्ण पक्षों के साथ ही प्रकृति एवं पर्यावरणीय तत्वों का समावेश जीवन में पर्यावरण की महत्ता को उजागर करते है।

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में भी वेद, शास्त्र ग्रन्थों में वर्णित संस्कारों एवं लोकसंस्कृति का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। लोकविश्वासानुसार संस्कार किये बिना बच्चा शुद्ध नही हो सकता, उपनयन किए बिना विवाह का रास्ता नहीं खुलता और विवाह संस्कार किए बिना पत्नी अर्धांगनी नहीं बन सकती और अन्त्येष्टि के बिना मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।[2] गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में संस्कारों को सम्पादित करने एवं अपनी सांस्कृतिक भावनाओं को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति करने की एक समृद्ध परम्परा रही है, जो आज भी मौखिक परंपरा के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित है। पुत्रजन्म, छठी, नामकरण, यज्ञोपवीत तथा विवाहादि संस्कारों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा सम्मिलित रूप से गाए जाने वाले गीत संस्कारों के लोकाचार पक्ष से संबंध रखते है। इन संस्कार गीतों को गढ़वाल हिमालय में 'मांगलगीत'[3] कहा जाता है और इन गीतों को गाने वाली महिलाएँ 'मंगल्यारिन'[4] कहलाती हैं। किन्तु धीरे-धीरे अन्य संस्कारों के गीत विलुप्त होते गए और 'मांगल' शब्द केवल विवाह गीतों के लिए ही प्रयुक्त होने लगा और विवाह संबंधी गीत ही 'मांगलगीत' कहलाने लगे। मांगल गीत सिर्फ अनुष्ठानों के विविध पक्षों को ही उजागर नहीं करते वरन् उनके भावात्मक स्वरूप, श्रृंगार, हास्य तथा करूण रस का पुट भी क्रमानुसार देखने को मिलता है, जिनके माध्यम से लोकजीवन से जुड़े धार्मिक एवं सामाजिक तथ्यों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म मार्मिक अभिव्यक्ति होती है।

गढ़वाल हिमालय के अतिरिक्त कुमाऊं क्षेत्र, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान एवं अरूणांचल प्रदेश इत्यादि क्षेत्रों में भी जीवन के प्रत्येक संस्कारोत्सवों को प्रारम्भ करने से पहले प्रकृति एवं पर्यावरणीय तत्वों को देवी-देवताओं का रूप देकर इनकी पूजा-स्तुति संबंधी मांगलगीत गाये जाने की परंपरा प्रचलित रही है।[6] गढ़वाल हिमालय एवं भारतवर्ष के अन्य प्रांतों में मांगलगीत गाने की परम्परा कब से चली आ रही है? इनका रचयिता कौन है? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता और न ही अभी तक इसका

कोई भी स्पष्ट प्रमाण मिला है। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मंगलगान संभवतः सबसे प्राचीन गायन परंपरा है, जो प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है, किन्तु वास्तविक रूप से मांगलगीतों का अस्तित्व वैदिक-युग में ही उभरा। वेदों में पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत, विवाहादि शुभ-अवसरों पर सरस गायन का उल्लेख मिलता है।[7]

वैदिक संस्कृति के अनुरूप ही गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में प्रचलित संस्कारगीतों (पुत्रजन्म, नामकरण, मुण्ड़न, यज्ञोपवीत, विवाह व मृत्यु) में इनकी अपनी प्राचीन परम्पराओं के प्रति आस्था दिखाई देती है। लोकजीवन में पर्यावरणीय तत्वों जैसे- कूर्म देवता, धरती माता, भूमिपाल, ग्रहों- नक्षत्रों, पीपल वृक्ष, जल, अग्नि तथा पंच देवों (सूर्य, गणेश, देवी, शिव और विष्णु) की पूजा-स्तुति ही नहीं की जाती, बल्कि इन तत्वों से शुभ कार्य की सफलता के लिए समृद्धि और यश की कामना भी की जाती है। इन प्राकृतिक शक्तियों की पूजा-स्तुति द्वारा यहां के लोकजीवन में प्राकृतिक शक्तियों के प्रति चेतना का संचार कर यह स्मरण कराने का प्रयास है कि प्रकृति हमें केवल जीवन ही नहीं देती वरन् हमारे कार्यों को भी सफल बनाती हैं, अतः हम इनके ऋणी है। इस प्रकार के अनुष्ठान और गीत वैदिक संस्कृति के समरूप दिखाई देते हैं।[8] इसी परंपरा के अनुरूप गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में पुत्र जन्म के अवसर पर औजी-वाद्यी द्वारा गाये जाने वाले एक मांगल गीत में नवजात पुत्र को 'देवताओं का जाया' कहा गया है।[9]

लोकजीवन में शिशु के जन्म संबंधी मांगलगीत मुख्यतः आदिम मानव की भाव-प्रवणता, विस्मय, चिंता और उल्लास-भावना को भी अभिव्यक्त करते हैं। आदिम मानव के लिए एक ओर जहाँ शिशु-जन्म उल्लास और विस्मय का कारण था, वहीं शिशु और उसकी माता की सुरक्षा की दृष्टि से भय और आशंका उसकी अनुभूति का मुख्य विषय भी था। इसी परंपरा के अनुरूप गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में शिशु का जन्म जहाँ एक ओर उल्लास का कारण रहा है, वहीं जच्चे-बच्चे की सुरक्षा की चिंता, भय और आशंका का हेतु भी रहा है। अनिष्टकारणी शक्तियों के भय से ही प्रसव के अवसर पर इष्ट, कुल देवी-देवता तथा पितृ देव आदि से मन्नतें मांगी जाती हैं और पृथक कक्ष में रखी गयी प्रसूतिका के कमरे के दरवाजे पर दरांती (थमाली) व बिच्छू घास (कंडाली) कवच के रूप में रखे जाते हैं व भूत-प्रेत के आक्रमण से बचने के लिए प्राचीन परंपरा के अनुरूप ही कमरे के अन्दर अग्नि चौबीस घंटे प्रज्वलित होती रहती है।[10] ब्रह्मांडपुराण[11] में अग्नि को शिव शरीर से उत्पन्न माना गया है और स्कन्दपुराण[12] में इसे ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न माना गया है।[13] अग्नि के आह्वान संबंधी मांगलगीतों से हमें अग्नि के आविष्कार, प्रसार और उपयोगिता-बोध का पता चलता है, और इन गीतों के माध्यम से मांगलिक कार्यों में अग्नि का आह्वान कर उसके बिना किसी भी कार्य की अपूर्णता दर्शायी गयी है।[14] वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत अग्नि एक प्रमुख देवता था। ऋग्वेद में अग्नि को कल्याण की कामना के लिए,[15] अतिथि रूप में,[16] भोजन के लिए निमंत्रक का कार्य करने वाला व अन्नदात्री बताया गया है।[17] साथ ही ऋग्वेद में अग्नि को पापहन्ता माना गया है, और उसे अज्ञान से किए गये पापों को भी क्षमा करने वाला कहा गया है।

लोकजीवन में शास्त्रीय संस्कृति के अनुरूप ही पुत्र जन्म पुत्री के जन्म से अधिक उत्साह का हेतु रहा है। लोकमान्यतानुसार इससे माता को मातृत्व की पूर्णता मिलती है व परिवार को लड़का होने पर कुल का सूरज व वंश को आगे बढ़ाने वाला बेटा मिल जाता

हैं। लोकविश्वासानुसार पुत्र प्राप्ति के बिना माता-पिता को स्वर्ग का आश्रय नही मिल पाता क्योंकि उनके क्रिया-कर्म, तर्पण पुत्र द्वारा ही सम्पन्न किये जाते है।[18] लोकजीवन की इस धारणा एवं मान्यता में मनु के सिद्धान्तों, पौराणिक कथनों एवं नियमों का गहरा प्रभाव रहा है।[19] अतः पुरूष समाज में यह तो सुस्पष्ट ही है कि पुत्र का महत्व लोक में कुल का नष्ट न होना ही मानते है। इसी भाव से ओतप्रोत होकर पति-पत्नी दोनों पुत्र प्राप्ति की कामना करते हैं। उसके लिये अनेक धार्मिक, आध्यात्मिक एवं तांत्रिक उपायों का भी यहां के लोकजीवन में प्रचलन मिलता है।[20] गढ़वाल हिमालय में पुत्र प्राप्ति का भाव इतना प्रबल दिखाई देता है कि अगर किसी स्त्री के पुत्र नहीं जन्मता तो वह अपनी कटु शत्रु माने जाने वाली 'सौत' (पति की दूसरी पत्नी) के बेटे को सौत से द्वेष होने पर भी उसको महत्व देकर उसकी परवरिश करती है। लोकजीवन में एक स्त्री के लिए पुत्र को जन्म देना मैदान जीतने के समान बताया गया है। एक मांगलगीत में पुत्र जन्म के उत्साह से अभिभूत प्रसूता स्त्री भौरें से कहती है कि वह उसके मातृ-पक्ष को यह संदेश पहुंचा दे कि उनकी बेटी ने पुत्र को जन्म देकर उनका मान बढ़ाया है और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।[21]

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में शिशु के नामकरण संस्कार के अवसर पर उसे पहली बार घर के बाहर ले जाकर सूर्य दर्शन और भूमि स्पर्श कराया जाता है, लोकमान्यता है कि यह प्राकृतिक शक्तियां ही जीवन देती है और पालन करती है। भूमि स्पर्श के समय पृथ्वी से प्रार्थना की जाती है कि विष्णु द्वारा धारण की हुई हे पृथ्वी देवी, जिस प्रकार तुम देवता को धारण करती हो, उसी प्रकार मुझे भी धारण करो और इस आसन को पवित्र करो।[22] इसी प्रकार शिशु को सूर्य दर्शन कराने से पूर्व पिता द्वारा सूर्य की स्तुति करके उससे विनती की जाती है कि तुम्हारा प्रथम दर्शन करने वाला यह शिशु सौ वर्षों तक यह दर्शन करता रहे, सौ वर्षों तक सुन सके एवं बोल सके।[23] उक्त स्तुति से लोकजीवन में प्रचलित आस्था के अनुसार सौ वर्षों तक सभी इन्द्रियों की पूर्णता के साथ जीने की शक्ति सूर्य की कृपा के बिना असंभव बतायी गयी है।

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में मुण्ड़न संस्कार के अवसर पर गणेश, कुलदेवी-देवताओं, पितृदेवों आदि का स्मरण एवं पूजन कर पिता द्वारा बालक की पांच शिखाएं बनायी जाती है। प्रत्येक शिखा पर पीले कपड़े की एक छोटी-सी पोटली में राड़ू (पीली सरसों), सुपारी तथा पैसे का सिक्का बाँध दिया जाता है। ये पाँच पोटलियां शरीर के उन पाँचों तत्वों (हवा, पानी, अग्नि, आकाश और पृथ्वी) के संकेत हैं जिनसे हिन्दू धर्म-दर्शनशास्त्र के अनुसार मानव शरीर निर्मित माना गया है। मुण्ड़न के अवसर पर बालक के कटे हुए बाल माता काँसे की दूध भरी थाली में इकट्ठे करती है और पिता द्वारा उनको मकान के बगल में स्थित खेत या बगीचे में किसी अभेद्य शुद्ध स्थान पर दबा दिये जाते है या नदी में बहा दिये जाते है। कुछ लोग इन बालों को तीर्थ स्थानों पर ले जाकर शुद्ध स्थान पर दबा देते हैं और कुछ लोग बहा देते हैं।[24] ऐसा संभवतः बालक के बालों का दुरूपयोग होने से रोकने के लिए किया जाता है। इसके पीछे लोकमान्यता है कि बालों, नाखूनों आदि का डायनों तथा जादू-टोना करने वालों द्वारा प्रयोग किया जाता है और यह बच्चे को नुकसान पहुँचा सकते है।[25] अतः इसी भय से लोग बच्चे के बालों को एकान्त में छुपकर दबा या बहा देते हैं। इस तरह की मान्यताएं शास्त्रीय ग्रन्थों में भी

दिखाई देती हैं। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र के अनुसार परिवार के किसी नजदीकी रिश्तेदार बालों को इकट्ठे करके गोशाला या केले के पेड़ के नीचे अथवा दूब घास के पुंज के नीचे दबा देता है।[26]

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में प्रकृति और मानव के आत्मीय संबंधों का सबसे अधिक नजदीकी दर्शन विवाह संबंधी मांगलगीतों के माध्यम से होता है। लोकजीवन के विवाह संबंधी मांगलगीतों में पर्यावरणीय तत्वों को वैवाहिक कार्य के उपयोग में लाने के लिये आंमत्रण से लेकर उनकी पूजा-स्तुति और उनका विवाह को सम्पन्न कराने में योगदान व उन्हें धन्यवाद तक का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। विवाह के प्रारम्भिक अनुष्ठान की शुरूआत ही पर्यावरणीय तत्वों के आह्वान गीत से होती है,[27] जिसमें धरती माता, कूर्म देवता, भूमिपाल तथा पांच देवों- सूर्य, गणेश, देवी, शिव और विष्णु से शुभकार्य की सफलता के लिए समृद्धि और यश की कामना की जाती है। विवाह अनुष्ठान में सम्मिलित होने के लिये सर्वप्रथम वर-वधू के घर के मुखिया द्वारा सभी अतिथियों को निमंत्रण दिये जाते हैं, इसी भावना से कौवे को हरे वृक्ष पर बैठकर शकुन बोलने के लिए आंमत्रित किया जाता है और बदले में उसकी चोंच सोने से मढ़वाने का प्रलोभन दिया जाता है,[28] क्योंकि कौवे को भू-लोक और स्वर्ग लोक के बीच का माध्यम, पितरों का प्रतीक एवं भविष्य के रहस्य को जानने की क्षमता से युक्त माना गया है।[29] लोकजीवन में यह भी विश्वास है कि श्राद्धों में पितर कौवे का रूप धारण कर जीमने आते है।[30] इसी तरह तोते (सुवा) को भी अपनी मीठी बोली बोलने के कारण मांगलगीतों के जरिए वैवाहिक मंगलकार्य में अपने प्रियमित्रों, बेटियों- दामादों को निमंत्रण देने के लिए भेजा जाता है।[31] इन मांगलगीतों से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति की गोद में विकसित पर्वतीय संस्कृति का पशु-पक्षियों के साथ कितना प्रगाढ़ संबंध रहा है। विवाह में सम्मिलित होने का यह निमंत्रण देवताओं और मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् कन्या और वर का पिता हल्दी की बाड़ियों, पैयां पात व मालू की पातियों, फूल व धान की क्यारियों और गाय को भी निमंत्रित करता हैं।[32]

वैवाहिक अनुष्ठान की शुरूआत सर्वप्रथम गणेश पूजन के साथ होती है। गाय के गोबर से गणेश की प्रतिमा का निर्माण किया जाता है और उनसे यह निवेदन किया जाता है कि वह विवाह के विधि-विधानों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने का आशीर्वाद दे, क्योंकि गणपति के स्वरूप को नर और गज का सम्मिश्रण माना जाता है। यह प्रतीयमान तत्पदार्थ और त्वं पदार्थ के अभेद को सूचित करता है। तत्पदार्थ सर्वजगत्कारण, सर्वशक्तिमान् परमात्मा होता है एवं त्वं पदार्थ अल्पज्ञ अल्प शक्तिमान जीव होता है। इन दोनों का मिश्रण होने के कारण ही गणपति को विघ्नहर्त्ता माना जाता है।[33] गणेश पूजन की प्रक्रिया जहां पुरोहित शास्त्रानुसार करते हैं वहीं लोकाचार में मांगलगीत से इसका आरंभ होता है।[34] गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में गणेश को भूत-भैरू तथा अतृप्त आत्माओं से रक्षा करने वाला माना जाता है, इसीलिये मांगलगीतों में उनका विघ्न-विनाशक, गणपति के रूप में सर्वप्रथम आह्वान किया गया है।[35]

गणेश पूजन के पश्चात् 'हल्दी हाथ' अथवा 'बांद'[36] की रस्म सम्पन्न की जाती है। हल्दी को उसके धार्मिक तथा आरोग्यकारी गुणों के कारण लोकजीवन में विशेष महत्व दिया जाता है। स्थानीय समुदाय में इस रस्म का यह महात्म्य रहा है कि हल्दी हाथ

के लिये बनाये गये उबटन को लगाने से वर-कन्या की अनेक बीमारियों से रक्षा होने के साथ-साथ उनके शारीरिक सौन्दर्य में भी निखार आता है। हल्दी हाथ की रस्म में हल्दी व अन्य स्थानीय जड़ी- बूटियों को उखल में कूटकर इसका उबटन दही और तेल के साथ मिलाकर वर-कन्या के शरीर पर दूब के गुच्छे से लगाया जाता है। हल्दी को रोगनाशी होने के साथ ही सौंदर्यवर्धक, दही को शीतल और शान्तिकारक और तेल को कांतिप्रद माना जाता हैं। हरी दूब को स्वच्छ एवं स्मृति शक्तिप्रद और नेत्र ज्योतिवर्धक माना गया है। दूब की जड़ें मजबूत ही नहीं होतीं वरन् कठिन परिस्थितियों में भी यह फैलती रहती हैं और इनका वंश कभी नष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त दूब गणेश पूजन में गाय के गोबर से बनाये गये गणेश के सिर पर लगायी जाती है और शुद्धीकरण के लिए गोमूत्र तथा गंगाजल आदि दूब से ही छिड़का जाता है।[37] तेल में संयुक्त करने से उसके गुण तेल में आ जाते हैं। इस तरह यह उबटन रोमछिद्रों में प्रवेश कर खुश्की, ताप व त्वचा संबंधी सभी दोषों के लिए औषधि का कार्य करता है।

पर्यावरणीय तत्वों के साथ लोकजीवन का कितना अधिक भावात्मक जुड़ाव है इसका पता विवाह वेदी निर्मित करते समय गाये जाने वाले मांगल गीत में पिता-पुत्री के बीच हुए मार्मिक संवाद से होता है जिसमें कन्या अपने पिता से पूछती है कि आप मेरे लिये किस तरह की वेदी बना रहे हैं। इसके उत्तर में पिता अपनी कन्या से कहता है कि मैं देवलोकी विधि (सोने, चांदी और गजमुक्ताओं से युक्त) से वेदी का निर्माण कर रहा हूँ, किन्तु कन्या अपने पिता से आग्रह करती कि वह सोने, चांदी व गजमुक्ताओं के प्रयोग की जगह केला, चीड़ (कुलैं), मिट्टी, पत्थर, जौ तथा तिल इत्यादि से वेदी बनाये, और फिर पत्थर, मिट्टी से वेदी का निर्माण किया जाता है। केला व चीड़ के पेड़ से स्तम्भ बनाये जाते हैं। सूत के धागे से चीड़ के पत्ते बांधे जाते हैं। गाय के गोबर से वेदी की लिपाई की जाती है।[38] इस तरह जहां एक ओर यह मांगलगीत यहां के लोगों की सामाजिक सादगी का सजीव चित्रण करता है, वहीं दूसरी ओर भौतिक संसाधनों की जगह पर्यावरणीय तत्वों को अपने संस्कारों में महत्व दिये जाने पर भी प्रकाश डालता है।

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में फलों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। स्थानीय समाज में इसी से संबंधित एक महत्वपूर्ण रस्म 'छोलका बटाई' अथवा 'वरडाली' सम्पन्न की जाती है जिसमें कन्या के आंचल में फलों से भरी थाल और श्रीफल रखा जाता है। लोकमान्यता है कि इससे वधू के सौभाग्यवती, पुत्रवती और धनधान्य से भरपूर होने की कामना की जाती है, व उससे संतानवती होने की आशा की जाती है। अतः फलों की उपयोगिता को इस रस्म के समय गाये जाने वाले मांगलगीत के माध्यम से देखा जा सकता है।[39] इस तरह के कृत्यों का उल्लेख व निर्धारण मानव (1.14.8), शंखायन (1.16.8), आपस्तंब (2.6.11) गृह्सूत्रों में भी किया गया है।[40] कन्यादान करते समय कन्या के माता-पिता गाय के दूध का महासंकल्प लेते हुये कन्या का हाथ वर के हाथ में देते हैं, क्योंकि गाय के दूध को पवित्रता का चिह्न माना जाता है, इसीलिए कन्या के माता-पिता भी महासंकल्प लेते हुए वर को यह बताने का प्रयास करते हैं कि हमारी कन्या भी गाय के दूध के समान ही पवित्र है।[41] हिन्दू धर्म की मान्यतानुसार गाय में तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का वास माना जाता है और प्राचीन समय से ही गाय मनुष्य की प्रमुख सहचरी रही है। इसी महत्व को देखते हुये गढ़वाल हिमालय में वैवाहिक अनुष्ठान की

प्रत्येक रस्म में गाय के दूध, घी, दही, गोबर एवं गोमूत्र की आवश्यकता होती है। लोकविश्वास है कि गौमाता में दैवीय शक्तियां होने के कारण उसके गोबर तथा गोमूत्र से रोग, ब्याधि तथा अनिष्टकारिणी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं और जहां गाय का निवास होता है वहां भूत-प्रेतादि प्रवेश नहीं कर सकते। इसी उद्देश्य से गाय को मातृलोक में आने का मांगलगीत गाया जाता हैं।[42] इसी उद्देश्य से शिशु के जन्म के अवसर पर प्रसूता स्त्री द्वारा और अन्त्येष्टि संस्कार के समय क्रियाकर्म करके लौटे व्यक्तियों द्वारा गोमूत्रपान किया जाता है। गायदान को पुराणों में भी महत्व दिया गया है, और गढ़वाल हिमालय में भी 'गायदान'[43] की एक महत्वपूर्ण रस्म सम्पन्न की जाती है। विवाह संस्कार में गायदान के बिना संस्कार अपूर्ण और असफल माना जाता है। लोकमान्यतानुसार गाय को वैतरणी की संज्ञा भी दी गई है और माना जाता है कि मृत व्यक्ति की आत्मा को गाय ही वैतरणी में पार उतारती है और उसे स्वर्ग का रास्ता दिखाती है।[44]

गढ़वाल हिमालय में वैदिक परम्परानुसार सप्तपदी की रस्म में अग्नि के सात फेरे लगाने आवश्यक होते हैं, तभी विवाह सम्पन्न माना जाता है। ऐसा न करने पर लोकविश्वासानुसार वैवाहिक जीवन असफल रहता है तथा वर व वधू दोनों को जीवन में परेशानियां झेलनी पड़ती हैं।[45] लोकजीवन में सप्तपदी के अवसर पर अग्नि, वेदी के चारों कोनों में लगे कुलांई (चीड़) के पौधे, पैयां की टहनियां, चन्दोल्या (पीले कपड़े का टुकड़ा जिसे पतली रस्सियों से चारों स्तंभों पर बांधकर बीच में लटकाया जाता है) तथा एक कोने पर गढ़े केले के फलभरे पेड़ वर-कन्या के इस विवाह संस्कार बंधन में बधने के साक्षात् गवाह होते हैं।[46] गढ़वाल हिमालय के एक अन्य मांगलगीत में कन्या (वधू) को फूलों की संज्ञा देकर कन्या की माँ के मुंह से अपनी कन्या के ससुर से विनती करते हुए दिखाया गया है कि उनकी फूल जैसी बेटी का वह हमेशा ध्यान रखें और वह हमेशा उसे अपनी बेटी की तरह समझें।[47] लोकजीवन की पर्यावरण के साथ सहयोगात्मक भावना का ही प्रतिफल है कि विवाह पूर्ण हो जाने पर कन्या का पिता देवी-देवताओं को ही धन्यवाद नहीं देता वरन् मालू वृक्ष को भी उन पत्तों के लिए धन्यवाद देता है, जिन्होंने बारात को जिमाया।[48] मालू पात में खाना खाना जहाँ स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है वहीं जैविक खाद के रूप में इसका प्रयोग पर्यावरण संरक्षण की महत्वपूर्ण शिक्षा भी प्रदान करता है।

समीक्षा– स्मृतियों और शास्त्रों के समान ही गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में भी संस्कार व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की दिशा में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं और इनका मानव शरीर तथा आत्मा पर रहस्यात्मक प्रभाव स्वीकारा गया है। लोकजीवन में संस्कारों का अर्थ एवं उद्देश्य सिर्फ आध्यात्मिक और धार्मिक शुद्धीकरण करना ही नहीं बल्कि लोकजीवन में बहुस्तरीय सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक और मनोरंजक व आनन्दपूर्ण वातावरण का विकास करना भी है। लोकजीवन द्वारा संस्कारों के माध्यम से जीवन को संचालित करने के पीछे यह मान्यता रही है कि हमारे यह संस्कार हमें प्रकृति के सानिध्य में ले जाते हैं और हमें प्रकृति और अपने अस्तित्व की जड़ों से जोड़ते हैं और आज भी हमें आदिम स्मृति तक ले जाते हैं। ऋग्वेद में भी प्राकृतिक शक्तियों के प्रति इसी प्रकार कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया गया है। यह भारतीय संस्कृति के मूल संस्कार हैं। अपने पर्यावरण को इस प्रकार अपने सहायक, मित्र और देवता

मानकर स्मरण करने वाला प्राणी उसके अनावश्यक दोहन अथवा उसे किसी भी प्रकार की हानि पहुंचाने की वृत्ति नही रख सकता। इसीलिए पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश रूप पंच तत्वों का प्रतिदिन स्मरण करना उनको नैवेद्य चढ़ाकर तथा अन्य प्राणियों के भाग अथवा बलि का अन्न निकालकर ही भोजन करना एवं कोई भी भोज्य पदार्थ पकाकर पहले उसका अंश अग्नि को चढ़ाकर फिर स्वयं ग्रहण करने की वैदिक परम्परा गढ़वाल हिमालय में आज तक विद्यमान है।

किन्तु वर्तमान समय में जन साधारण संस्कारों के सामाजिक और धार्मिक महत्व को भूल गया है। आधुनिक समय में गढ़वाली लोकसंस्कृति में सूचना तन्त्र व प्रौद्योगिकी का नकारात्मक प्रभाव पड़ने के कारण वैदिक मांगलगान की परम्परा समाप्त होती जा रही है। अब लोग मांगलगीतों की जगह आधुनिक गीत-संगीत के यंत्रों और नृत्य गीतों को ज्यादा महत्व दे रहें है जिसके कारण लोकसंस्कृति का ह्रास होने के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण में भी वृद्धि हो रही है। संस्कारगीत एक परम्परा मात्र रह गए हैं और इनमें गतिशीलता नहीं रही। समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन नहीं किए गए। अतः इनमें मानव को सुसंस्कृत बनाने की शक्ति न रही और यह नित्य-चर्या से संबंधित धार्मिक कृत्य मात्र रह गए हैं। इनका जीवन पर प्रभाव लेशमात्र भी नहीं दिखाई देता। अब लोकजीवन उन अतिमानव शक्तियों में विश्वास नहीं करता जिनके अशुभ प्रभाव को दूर करने के लिए संस्कार किये जाते थे। किन्तु मानव जीवन का स्त्रोत अब भी एक रहस्य है, अतः लोकजीवन अब भी संस्कारों के द्वारा अपने जीवन को पवित्र कर सकता है और संस्कारों के मूल उद्देश्य में छुपे पर्यावरण संरक्षण की भावना को बनाये रख सकता है, साथ ही प्रकृति के सानिध्य में रहकर मानव और प्रकृति के संबंधों को भावात्मक रूप देकर मानव जीवन को विनाश से बचा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि यहां के स्थानीय लोगों को यदि आधुनिक समय में पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त होना है तो उन्हें अपनी लोकसंस्कृति और मांगलगीतों के तहत अपने संस्कारों को सम्पन्न करने पर ध्यान देना होगा।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. गौतम धर्मसूत्र -8.14.24., द्वारा उद्धृत प्रकाश, ओम., तृतीय संशोधित संस्करण. 1986, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 139.
2. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., 2005, अप्रकाशित शोधग्रंथ : टिहरी बांध के डूब क्षेत्र के लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, श्रीनगर गढ़वाल वि.वि. पुस्तकालय, श्रीनगर गढ़वाल, पृ. 171.
3. नौटियाल, कुसुम., 1982, गढ़वाली नारीः एक लोकगीतात्मक पहचान, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 82.
4. यह 'मांगलगीत' वधू की सहेलियों, गाँव की बहू-बेटियों या औजी-वादकों की कुल लक्ष्मियों द्वारा गाये जाते हैं, जिन्हें 'मंगल्यानी' कहकर पुकारा जाता हैं।
6. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 208.
7. ऋग्वेद 8.11.14. ''अग्निभोडिष्वावसे गाथाभिः-शरि शोचितम्ः''। द्वारा उद्धृत नौटियाल, कुसुम., वही, पृ. 82.
8. वैदिक साहित्य में भी प्राकृतिक शक्तियों के प्रति इसी प्रकार कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया

गया है और मानव शरीर को पंचतत्वों (जल, हवा, पानी, आकाश और पृथ्वी) से निर्मित बताया गया हैं।

9. चातक, गोविन्द., 2003, भारतीय लोक संस्कृति संदर्भः मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 104.
पैले उपजी धरती, फिर उपजे आकाश, तब उपजे पौण पाणी!
महादेव घर बेटा उपजे, सूरज का घर उपजे कर्ण राजा।
नंदू का घर नारैण जनमें, बालक जनमें देवतौं को जायो!
10. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 192.
11. ब्रह्माडपुराण, 25.26, 27.86., द्वारा उद्धृत् भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 192.
12. स्कन्दपुराण, 5.3.22.2., द्वारा उद्धृत् भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 192.
13. भट्ट, रामप्रसाद., एवं हरिमोहन. वही, पृ. 192.
14. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु'. तोताराम., 2004, गढ़वाली मांगलगीत, बिन्सर पब्लिकेशन, पृ. 51.
ऐ जा अगनि मेरा मातु लोक, त्वैं बिना अगनि ब्रह्म भूखो रैंद।
त्वै मेरि अगनि न्यूती बुलौलु, न्यूती बुलौंलु पूजी पठ्यौलु।
गाई घियाल आहुति द्यूंला, चन्दना लकड़ी ल पूजा करला।
15. ऋग्वेद, 1.35.1, ह्याम्यग्निं प्रथमं स्वसतये, चातक, गोविन्द द्वारा उद्धृत्, पृ. 50.
16. ऋग्वेद, 5.1.9, द्वारा उद्धृत् चातक, गोविन्द., वही, पृ. 50.
17. ऋग्वेद, 5.6.5, द्वारा उद्धृत् चातक, गोविन्द., वही, पृ. 50.
18. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 192.
19. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 192.
20. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 105.
तू होलो मेरा तपस्या को जायो!
तेरी जिया ब्वैन खटु कैन कर्म। तेरी जिया ब्वैन नीम लैन धर्म!
तेरी जिया ब्वैन तीर्थू का नौं छुबडुल्यों नहेंणे, देवतौं का नौं वींन धारू ढ़गी पूजीन!
तू होलो बाला डांडो कू उद्यौऊं, तू बणलो बाला कुल की जोत!
21. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 105.
जा धौं भौंरा मांजी का पास हमारी, जा धौं भौंरा कुशल-मंगल बोल आई!
जा धौं भौंरा बाबा जी का पास हमारा, कल्याण बोल आई, कुशल-मंगल सुणाई!
धियांण तुमारी मैं बोलणी भौंरा, जा धौं भौंरा भाई का पास तू मेरा।
जा धौं भौंरा कुशल-मंगल सुणाई! बैण तुमारी मैं बोलणी भौंरा।
जा धौं भौंरा माजी बोल आई- धियाण तुमारी मांजी जाल तोड्यो।
धियान तुमारी मांजी रण जीत्यो! जा धौं भौंरा मांजी का पास हमारी।
22. पृथ्वी त्वया धृता लोके दवेत्व विष्णुमा धृतम्।
त्वं च धार्य मां देवि पवित्रं कुरू आसनम्।
द्वारा उद्धृत् भट्ट, दिवा., शोधपत्र : पर्यावरण संरक्षण कुमाऊं की सांस्कृतिक परम्परा, शोधपुस्तिकाः पर्यावरण संस्कृति प्रदूषण एवं संरक्षण, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, पृ. 69.
23. भट्ट, दिवा., वही, पृ. 70.
24. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 198.
25. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 199.
26. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., वही, पृ. 199.
27. बाबुलकर. मोहनलाल., गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964, पृ. 29.
जौ जस देन धरती माता, जौ जस देन कूर्म देवता।
जौ जस देन भूमि को भूम्याल, जौ जस देन पंचनाम देवता।

28. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 14.
बैठि जा कागा हरिया बिरछ, बोल कागा चौदिशू सगुनो।
सगुनो ब्वालीलो बिघन टलिलो, बोल मेरा कागा सगुनो वचन।
त्वै द्यूंला कागा सोना ठुंटणी, त्वै द्यूंला कागा दूद, भात, पूड़ी।
29. चातक, गोविन्द, वही, पृ. 124.
30. चातक, गोविन्द, वही, पृ. 124.
आओ पितरो ये मृत्यु लोक, जाओ भौंरा माथी का लोक, पितरू न्यूती लावा।
का होलो पितरू को लोक? जा चंद्र सुरीज बादल रेखा।
वीं मा होलो सोना की पैड़ी, वां होलो पितरू को लोक।
31. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 135.
पिंजरी का सुआ, कटारी का सुआ, सुन पंछी सुआ, लाल पंछी सुआ।
देआ सुआ तू, सुहागणियों न्यूतों।
ब्रह्म जी घर होली सावित्री देवी, वे घर वीं देवी तुम न्यूती आवा।
32. ढ़ौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 15-17.
आज न्यूती बुलावा हलदा की बाड़ी, आज चैंद पितजी हलदी कारिया।
आज न्यूती बुलावा पैयाँ की पाती, आज चैंद पितजी हलदी कारिया।
न्यूता मांजी दुबला की बाड़ी, आज चैंद मांजी दुबला कारिया।
न्यूता मांजी जुंडि पुंडि गाई, आज चैंद मांजी गाई कारिया।
न्यूता मांजी मजेठी की बाड़ी, आज चैंद मांजी मजेठी कारिया।
न्यूता मांजी फूलूं की डाली, आज चैंद मांजी फूलूं कारिया।
न्यूता मांजी सट्यूं की बाड़ी, आज चैंद मांजी मोत्यूं कारिया।
33. शास्त्री, माधवाचार्य., क्यों? धर्मदिग्दर्शन पूर्वार्द्ध, माधव पुस्तकालय पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 358.
34. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 19.
के केल बरमा जी गणेश बण्यूं च, गाई गोबर को गणेश बण्यूं च।
के केल बरमा जी गणेश पुर्यूं च, पिसियूं पीठा ल गणेश पुर्यूं च।
के केल बरमा जी गणेश पूजला, फूल धूपू ल गणेशा की पूजा।
करा बरमा जी भूमि की पूजा, सूरिया की पूजा, चन्द्रमा की पूजा।
35. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 66.
36. मंगलस्नान से पहले सुहागिन नारियों, अविवाहित लड़कियों के द्वारा पुरोहित द्वारा तैयार किये गये आटे के गणेश के सामने कुशघास या दूब के गुच्छे को हल्दी हाथ की सामग्री(हल्दी, तेल, आटा, गोमूत्र, गंगाजल इत्यादि का मिश्रण) में डूबोकर वर व कन्या के पैरों, घुटनों, कन्धों और सिर को छूकर पूजा की जाती है और उन्हें इस अवसर पर सदा सुहागिन बने रहने तथा लम्बे जीवन का आशीर्वाद दिया जाता है। सुहागिन नारियों द्वारा 'बांद' दिया जाना संस्कार की सिद्धि तथा उनके भी सदा सुहागिन रहने तथा भावी दांपत्य जीवन में सुख-सम्पन्नता और वंश वृद्धि की कामना के संकेत है।
37. प्रसूता स्त्री को भी शिशु के जन्म से 21 दिनों तक गोमूत्र व गंगाजल का पान कराया जाता है। साथ ही सारे घर में गोमूत्र और गंगाजल का छिड़काव किया जाता है, क्योंकि यह रोगनाशी माने जाते है।
38. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 48.
चौखुंटी ढुंग्योंन मैं वेदी बणौलो, गारा- माटा की बेदी बणैलो।
आटा पीठा ल बेदी भ्वरींचा, केला कुलैं का असतंभ घैंटोलो।
सूता धागूं ल कुलायूं बंधीला, नीटा-पाटा का सूत्र सरौलो।
माटा कमेड़ान बेदी लिपौलो, जौ तिल्लूंन चौक पुरौलो।

39. नौटियाल, कुसुम., वही, पृ. 109.
छोलियां दे बामण, छोलियां दे बामण, केला छोलंग बिजौरा सिरीफल।
धक दालिम मोत्यों भरी थाल, छोलियां दे बामण, छोलियां दे बामण।
40. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 117-118.
41. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 48.
के के को द्यूंला महासंकल्प, गाई दूधा को महासंकल्प।
सौदा जला ल महासंकल्प, सात साक्यूंका नउ पीढ्यू का।
पितरलोक टकमको लाला, टकमको लाला भौत खुश द्याला।
42. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., पूर्वोक्त, पृ. 48.
ऐजा गाई मैं मातुलोक, त्वै बिना गाई कारिय नि हून्दो........।
त्वै मेरि गाई न्यूती बुलौंलु, न्यूती बुलौंलु पूजी पठ्यौंलु, त्ये द्यूंलू गाई रूपा खुरड़ी।
रूपा खुरड़ी सोना सिंगुड़ी, त्वे द्यूंलू गाई मिट्ठु भोजन।
मुमजी की गाई दिदी की कनियां, गाई गोदान स्वरग समान।
43. लोकजीवन में गायदान की रस्म के द्वारा गाय को कन्या के साथ ससुराल पक्ष को दान करने की मान्यता है। क्योंकि यहां के लोकजीवन की यह मान्यता है कि गाय माता के रूप में हमेशा उनकी कन्या के दुख-सुख में साथ रहेगी।
44. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., पूर्वोक्त, पृ. 170.
45. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., पूर्वोक्त, पृ. 181.
46. भट्ट, रामप्रसाद. एवं हरिमोहन., पूर्वोक्त, पृ. 229.
47. ढौंड़ियाल 'जिज्ञासु', तोताराम., वही, पृ. 59.
छवटा बटि क बड़ि बणाई पालि पोसि की, ये फूल थै रख्यॉ समद्यो समालि की।
आज तोड़ि याल मिल फूलूं की क्यारी, नौंनी ई समज्या समद्यो बेटि हमारी।
48. चातक, गोविन्द., वही, पृ. 135.
धनी, धनी मालू डाली, धनी तेरा नौं, सौ साठ पौणों त्वैन पातुली पुगाए।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

बाल्मीकियों में सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

* विपिन कुमार

सारांश- *भारतीय समाज जटिल, गतिशील एवं परम्परावादी प्रकृति का माना जाता है, जहां विभिन्न प्रथाओं परम्पराओं के साथ साथ जातीय मान्यताएं लोगों के दिल दिमाग में बसी हुई है। जातीय संस्तरण में निम्न से निम्नतम स्थान पर जिस जातीय समूह को रखा गया है उसे देश के विभिन्न क्षेत्रों में मेहतर, जमादार, भंगी, धानुक, डोम, चाण्डाल, स्वच्छक, बाल्मीकि जैसे विभिन्न नामों से सम्बोन्धित किया जाता है तथा जातीय एवं धार्मिक दृष्टि से यह विश्वास किया जाता है कि इनका जन्म ही गन्दगी साफ करने के लिए हुआ है। यही कारण है कि ये लोग मलिन बस्तियों में रहने तथा मल-मूत्र गन्दगी की सफाई करने को आज भी विवश होकर समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग है। गरीबी अशिक्षा, मलिनता, पिछड़ापन, सेवाभाव इनकी मानों नियति बन गई है। इनके जीवन से सम्बंधित विविध पक्षों के जो समाज वैज्ञानिक अध्ययन भी किये गये पर वे अन्य क्षेत्रों में किये गये अध्ययनों की तुलना में न के बराबर प्रतीत होते है। साहित्य का गहन अवलोकन करने पर भी पर्याप्त मात्रा में क्रमबद्ध तरीके से किये गये अध्ययन शुलभ नहीं हो सके। इस सन्दर्भ किये गये अध्ययनों में महन्त (1948), श्याम लाल (1981,1984 एवं 1992), मालकानी (1966), रामरतन (1960), राय वर्मन (1961), दास जे, (1968) आदि प्रमुख आधार अध्ययन प्रतीत होते है।*

मुख्य शब्द- मलिन बस्ती, रूढ़िवादिता, नारकीय, धार्मिक विश्वास, पिछड़ापन।

प्रस्तावना- परिवर्तनों की विभिन्न प्रतिक्रियाओं का प्रभावों एवं परिणामो से भारतीय समाज अपने पुरातन परिदृश्य को परिवर्तित, परिमार्जित व परिवर्द्धित कर अद्यतन स्वरूप को ग्रहण करता आ रहा है। अतः यह जानना आवश्यक है बाल्मीकियों के पारिवारिक एवं वैवाहिक सन्दर्भो की स्थितियों, मान्यताएं एवं जातीय रीति रिवाज किस स्वरूप को ग्रहण कर रहे है। इनकी जीवन विधि, जीवन गाथा एवं विकास की दशा एवं दिशा का कौन सा स्वरूप अस्तित्व में आता जा रहा है। क्या इससे इन्हें अपने पुरातन जीवन से मुक्त हो अद्युनातन बनने में सहायता मिल रहीं है। जैसे कई प्रश्नों को वैज्ञानिक उत्तर खोजने की जिज्ञासा से मैने प्रस्तुत अध्ययन विषय का चयन किया है जो मेरी अल्प बुद्धि से समसामाजिक, प्रासंगिक एवं विषय सम्बर्द्धन की दृष्टि से प्रतीत होता है।

ज्ञान की दशा- बाल्मीकि लोग मूलतः हिन्दू ही है। जातीय संस्तरण की कई निर्योग्यताओं को थोपे जाने के दुष्परिणाम इनको सबसे निम्न स्थान प्राप्त हुआ। ये लोग

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, श्रीराम आदर्श पी.जी. कॉलेज, पनवारी आगरा (उ.प्र.)

न केवल अस्पृश्य रहे है, प्रत्युत अशिक्षा, अन्धविश्वास, रूढिवादिता, भाग्यवादिता आदि से आवृत्त अनेकानेक समस्याओं का शिकार रहे है। स्वयं दूसरों को साफ सुथरा वातावरण देकर नारकीय एवं गरीबी का जीवन जीने हेतु विवश रहे हैं, परिणामतः ये लोग अपने आपको समाज की मुख्य धारा से न जोड़ सके। इनके वैवाहिक रीति रिवाजों एवं वैवाहिक निषेधो से सम्बद्ध विविध पक्षों की जानकारी करने के लिए हमें हिन्दू समाज में अस्तित्व पाने वाली विवाह संस्था का उल्लेख करना होगा क्योंकि बाल्मीकि लोग भी हिन्दुओं (सवर्णो) की वैवाहिक व्यवस्था का अनुकरण करते पाये जाते है। परिवार के संगठन की आधारशिला के रूप में विवाह की संस्था आदिकाल से विवाहित युग्म में एक दूसरे के सम्बन्धों उनके नातेदारों उनकी सन्तानों तथा समाज की व्यवस्था तथा नियन्त्रण करती रही है। विवाह की संस्था वह आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा मानव का अस्तित्व बना रहता है। समिष्ट की निरन्तरता सन्तानों पर निर्भर करती है। सन्तानों की उत्पत्ति जन्म पर आधारित होती है और जन्म के लिए किसी न किसी रूप में स्त्रियों और पुरूषों का लैंगिक सम्बन्ध आवश्यक है। लैंगिक सम्बन्धों को व्यवस्थित करने के लिए विवाह की संस्था का प्रादुर्भाव हुआ स्पष्ट है कि विवाह की संस्था सन्तानों को जन्म देकर समष्टि का ताना बाना तैयार करती है। वर्गेस (1963) के शब्दों में- विवाह स्त्री और पुरूष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करवाने की एक संस्था है। हिन्दू विवाह के उद्देश्यों को बताते हुए डा0 कपाडिया[2] लिखते है- ''हिन्दू विवाह के उद्देश्य धर्म, प्रजा (सन्तान) और रति (आनन्द) बतलायें गये है।

1. **धर्म या धार्मिक कार्यो की पूर्ति**– हिन्दू विवाह में धर्म व धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। धार्मिक कार्यो की पूर्ति के लिए पत्नी का होना अनिवार्य है अन्यथा वे अपूर्ण ही माने जायेगें। प्रत्येक गृहस्थ से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ एवं नृयज्ञ आदि पांच महायज्ञ करे। यज्ञ में पति एवम् पत्नी दोनों का होना आवश्यक है।

2. **प्रज्ञा अथवा पुत्र प्राप्ति**– विवाह का दूसरा उद्देश्य सन्तान उत्पत्ति माना गया है। हिन्दुओं में पुत्र का विशेष स्थान है। वही पिता के लिए तर्पण और पिण्डदान करता है। उसे मोक्ष दिलाता है। मनुसंहिता और महाभारत में पुत्र शब्द व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है - पुत्र वह है जो पिता को पुत् अर्थात नरक से बचायें।

3. **रति आनन्द**– हिन्दू विवाह का तीसरा उद्देश्य यौन सन्तुष्टि है। वात्स्यायन ने रति आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द से की है। इस प्रकार धर्मशास्त्रों में यौन इच्छाओं की पूर्ति को आवश्यक माना गया है किन्तु वह मनमाने ढंग से नही वरन् समाज द्वारा स्वीकृत तरीके से होनी चाहिए। विवाह के द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरूषार्थो की पूर्ति होती है। विवाह में रति आनन्द को तीसरा स्थान दिया गया है और इसका उद्देश्य उत्तम धार्मिक सन्तानों की प्राप्ति है।

बाल्मीकियों की आर्थिक स्थिति– परम्परानुसार भारतीय समाज में घर गृहस्थी के बाहर के कार्यो का सम्पादन एवं विभाजन पुरूषों द्वारा ही होता रहा है लेकिन बाल्मीकि परिवारों के घर के बाहर के कार्यो का विभाजन एवं निष्पादन महिला पुरूष (दोनों के) द्वारा किया जाता रहा है। अधिकांश परिवारों में गृहस्थी के बाहर के कार्यो का विभाजन सभी की आम राय से किया जाता है क्योंकि बाल्मीकियों में प्रायः नर नारी एवं बड़े बच्चे

सभी रोटी कमाने के लिए घर से बाहर जाते है। यह उनकी परम्परा का अंग है। जैसा कि विदित है कि घर के बाहर के कार्यो का निष्पादन पुरूष वर्ग ही करता रहा है लेकिन अब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलायें भी पुरूषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर कार्य करने लगी है। आधुनिकीकरण की प्रतिक्रिया के प्रभाव से बाल्मीकियों के पारिवारिक जीवन में भी परिवर्तन लक्षित होने लगे है।

1. आज महिलाओं को घर के सभी कार्यो तक सीमित नहीं है बल्कि उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किये जाते है।
2. पति पत्नी के बीच के सम्बन्धों में परिवर्तन दिखाई पड़ता है कि आज पत्नी पति के साथ भोजन करने लगे है और एक साथ घूमने जाते है जब कि पहले ऐसा नही था।
3. सास -ससुर एवं बहू के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आये है। आज बहू अपने ससुर से कम पर्दा करती है और बातचीत भी करती है।
4. आज बाल्मीकियों के अधिकांश बच्चे विभिन्न प्रकार का शिक्षण संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त कर रहे है। जो अपने परिवार को उस परम्परावादी परिवार एवं जीवनशैली से अलग आधुनिक मूल्यों वाले परिवार के रूप में प्रतिस्थापित करना चाहते है जिसमें वे धीरे धीरे समाज की मुख्य धारा से जुड सकें।

बाल्मीकियों का सांस्कृतिक जीवन– व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति ने केवल वैचारिक प्रत्युत उसके क्रियात्मक पक्ष से आंकी जाती है। संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही होती है। संस्कृति के द्वारा व्यक्ति संस्कारित होकर पशु अवस्था से मानव अवस्था और मानव अवस्था से देवत्व की ओर आकर्षित होता हैं संस्कृति को किसी भी समाज का प्राण और चेतन तत्व माना जाता है। अधिकांश बाल्मीकि परिवारों में प्रमुख त्यौहार आज भी मनाये जाते है। बाल्मीकि लोग होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, भाई दूज, धनतेरस, विजय दशमी, हरियाली तीज, बसंत पंचमी, मकर संक्रान्ति, देवोत्थान आदि त्यौहार बड़ी धूम धाम से मनाते है और बाल्मीकि जयंती बडी धूम-धाम से मनायी जाती है। इन लोगों में अलग कोई अलग से त्यौहार नही मनाया जाता है। बाल्मीकियों के सांस्कृतिक जीवन में आधुनिकीकरण का प्रभाव देखा जा सकता हैं। ये लोग आपने सांस्कृतिक क्रियाकलापों में परिवर्तन ला रहे है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Wester Mark, E.A. (1894): History of Human Marriage. Oxford university press, London
2. Kapadia, K.M. (1966): Marriage and family in India Oxford University Press, Bombay.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

भारत में बाल अपचार (रीवा नगर के संदर्भ में)

* अखिलेश शुक्ल
** श्रृद्धा पयासी

सारांश– *परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं ने नगरीय जीवन में जो विषम समस्यायें उत्पन्न की उनमें बाल–अपचार एक प्रमुख समस्या है। औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पश्चिमी संस्कृति ने जिन नये सामाजिक मूल्यों को जन्म दिया, उनके प्रभाव से बच्चों में व्यवहार के अनेक ऐसे प्रतिमान विकसित होने लगे जो समाज द्वारा मान्य नहीं हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोंण से एक बाल अपचारी वह है जिसके कार्य को समूह गिरा हुआ समझा जाता है तथा जिसके कार्य समाज के लिए हानिकारक होने के कारण निषिद्ध होते हैं। अपराध सृजनात्मक मानव शक्ति का नकारात्मक प्रवाह है, जिससे समाज के विकास की गति बाधित होती है। बाल अपचार का सम्बंध सामाजिक पर्यावरण से है। यह सामाजिक परिवेश से उत्पन्न है। एक ओर अत्यधिक जनसंख्यात्मक दबाव और आजीविका के संसाधनों का असमान वितरण, निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा आदि समस्याओं को बढ़ावा देता है।*

मुख्य शब्द– अपचार, परिवार, बाल अपचार , अनैतिकता, अशिक्षा, निर्धनता।

प्रस्तावना– अपराध की तरह बाल अपचार भी एक गंभीर समस्या है। जिस तरह अपराध सार्वभौमिक है उसी तरह बाल अपचार भी सार्वभौमिक है। यह एक ऐसी समस्या है जो मूलतः पारिवारिक एवं सामुदायिक विघटन की देन है। बाल अपचार सामान्य लक्षणों की भाँति ही है। यह भी समाज विरोधी कार्य है और इसमें भी कानूनों का उल्लंघन होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल अपचार के लिये आयु को अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि व्यक्ति की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता सदा ही आयु से प्रभावित नहीं होती, अतः कुछ विद्वान, बालक द्वारा प्रकट व्यवहार प्रवृति को बाल अपचार के लिए आधार मानते हैं, जैसे आवारागर्दी करना, स्कूल से अनुपस्थित रहना, माता-पिता एवं संरक्षकों की आज्ञा न मानना, अश्लील भाषा का प्रयोग करना, चरित्रहीन व्यक्तियों से संपर्क रखना आदि। किन्तु जब तक कोई वैध तरीका सर्वसम्मिति से स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक आयु को ही बाल अपचार का निर्धारक आधार माना जायेगा। गिलिन एवं गिलिन के अनुसार समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक बाल अपचारी

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय टी.आर.एस. उत्कृष्ट महाविद्यालय एवं शोध केन्द्र, रीवा (म.प्र.)
** एम.फिल., समाजशास्त्र, शासकीय टी.आर.एस. उत्कृष्ट महाविद्यालय एवं शोध केन्द्र, रीवा।

वह व्यक्ति है जिसके व्यवहार को समाज अपने लिए हानिकारक समझता है और इसलिए वह उसके द्वारा निषिद्ध होता है। इस प्रकार बाल अपचार में बालको के असामाजिक व्यवहारों को लिया जाता है अथवा बालकों के ऐसे व्यवहारो का जो लोक कल्याण की दृष्टि से अहितकर होते हैं, ऐसे कार्यों को करने वाला बाल अपचारी कहलाता है। रॉबिन्सन के अनुसार आवारागर्दी, भीख माँगना, निरूद्देश्य इधर-उदर घूमना, उदण्डता बाल अपचारी के लक्षण है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कानून की अवज्ञा करने वाला एवं समाज विरोधी आचरण करने वाला बालक बाल अपचारी होता है जैसा कि न्यूमेयर का कहना है कि बाल अपचारी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है जिसने समाज विराधी कार्य किया है तथा जिसका दुर्व्यवहार कानून को तोड़ने वाला है।

साधारणतः बालक का अपराध बाल अपचार कहा जाता है अर्थात् एक निश्चित आयु से कम आयु के बच्चों का अपराधपूर्ण कार्य बाल अपचार समझा जाता है। किन्तु प्रश्न उठता है कि बालक किसे कहा जाए? इसके लिए कम या अधिकतम आयु सीमा क्या है? इस सम्बंध में यह लिखना अनुचित नहीं प्रतीत होता है कि विभिन्न राज्यों या राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न आयु के बच्चे को बाल अपचारी माना गया है। भारत वर्ष में किसी बच्चे को बाल अपचारी घोषित करने की अधिकतम आयु 18 वर्ष है। इसी तरह मिश्र में यह आयु क्रमशः 7 वर्ष से 15 वर्ष, ब्रिटेन में 11 से 16 वर्ष तथा ईरान में 11 से 18 वर्ष है। अतः बाल अपचारियों के निम्नतम तथा अधिकतम आयु के सम्बंध में कोई सार्वभौमिक धारणा प्रचलित नहीं है। एक निश्चित आयु तक के बालकों के अपचार को बाल अपचार कहा जाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य-

(1) एकाकी परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के अपचारों के प्रकार ज्ञात करना।

(2) संयुक्त परिवार के अपचारी बालकों एवं बालिकाओं के अपचारों के प्रकार को ज्ञात करना।

(3) एकाकी परिवार के अपचारी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर के मध्य में अंतर ज्ञात करना।

(4) एकाकी परिवार के अपचारी बालकों एवं बालिकाओं की बृद्धि के मध्य में अंतर ज्ञात करना।

(5) एकाकी परिवार के अपचारी बालकों एवं बालिकाओं का समायोजन के मध्य अंतर ज्ञात करना।

(6) एकाकी परिवार के 6 से 12 वर्षीय अपचारी बालकों एवं बालिकाओं का समायोजन के मध्य अंतर को ज्ञात करना।

अध्ययन पद्धति- प्रस्तुत शोध विधि में दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा 50 बाल अपचारियों के परिवार का अध्ययन किया गया है। तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्राथमिक एवं द्वैतीयक स्त्रोतों का सहारा लिया गया है, जिससे वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त हो सके। प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। साथ ही अवलोकन विधि का भी प्रयोग करते हुए सूचनादाताओं के विचारों, अनुभवों व

समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त की गई। द्वैतीयक स्त्रोतों से प्राप्त आँकड़ों, लेखों एवं अभिलेखों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन कर आवश्यक सामग्रियों का संकलन किया गया है। इंटरनेट का उपयोग भी सूचना के स्त्रोत के रूप में आवश्यकतानुसार किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र– यह शोध पत्र मध्यप्रदेश के रीवा नगर में बाल अपचार से सम्बंधित है। अपनी भौगालिक स्थिति के कारण मध्यप्रदेश में रीवा जिले का एक विशिष्ट स्थान है। जिले के पूर्व से पश्चिम की लंबाई 155 कि.मी. है तथा उससे दक्षिण की चौढ़ाई 95 कि.मी. है। जिले का कुल क्षेत्रफल 6240 वर्ग कि.मी. है। वर्तमान समय में रीवा जिले में 07 तहसीलें और 09 विकासखण्ड तथा रीवा नगर में 45 वार्ड हैं। जिसमें मैंने कुल रीवा नगर के 5 वार्डों का अध्ययन किया है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा–

पिक्यूरो[1] (2005) शोध अध्ययन यह बताता है कि जेंडर बाल अपचार से मुख्य रूप से सम्बंधित है।

डॉ शुक्ल अखिलेश[2] (2006) शोध अध्ययन में रीवा, सीधी, शहडोल के बाल अपचार की स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

रिचर्ड[3] (2006) ने किशोर अपचार के मार्ग में युवाओं के प्रवेश पर ड्रग की भागीदारी का अध्ययन किया है। शोध अध्ययन के परिणाम यह बताते हैं कि किशोरों के जीवन में ड्रग की सार्थक भूमिका है। इसके साथ ही ड्रग जीवन के कई क्षेत्रों में कई समस्याओं को जन्म देते हैं।

प्रिंस डी.[4] (2012) ने किशोर अपचार के बीच शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक चरों पर योग के प्रभावों के विभिन्न संकुलों के प्रभाव का अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक चरों पर योग का प्रभावों के विभिन्न संकुलों के प्रभाव का अध्ययन करना था। इसके किशोर न्यायालय चेन्नई के विभिन्न पुर्नवास गृहों के 90 किशोरों का चयन किया गया था। इस अध्ययन के शोध परिणाम यह बताते हैं कि योग की क्रियाओं के फलस्वरूप किशोरों में लचीलापन, माँसपेशियों में धीरजता, चिंता एवं आक्रमकता कम तथा आत्म विश्वास में सुधार देखा गया।

ली.जे.[5] (2013) ने शैक्षणिक उपलब्धि एवं कोरियाई किशोरों में अपचार के बीच सम्बंधों पर गंभीर अध्ययन किया है। इनका अवलोकन इस बात की पुष्टि करता है।

पिछले शोध अध्ययनों में शैक्षणिक उपलब्धि एवं बाल अपचार के मध्य गहरा सम्बंध था। इस अध्ययन में बाल अपचार एवं शैक्षणिक उपलब्धि के बीच पारस्परिक कारणों के सम्बंधों की जाँच की। शैक्षणिक उपलब्धि पर बाल अपचार का कोई प्रभाव नहीं है। बाल अपचार नकारात्मक कम शैक्षणिक उपलब्धि से प्रभावित था।

उपकल्पना– उपकल्पना वह पूर्ण विचार है जो किसी समस्या के सम्बंध में बना लिया जाता है और जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी प्राप्त तथ्यों से होना बांकी है। प्रस्तुत शोध की उपकल्पना निम्नलिखित है-

(1) बाल अपचारी भग्न परिवारों से आते हैं।

(2) बाल अपचारियों के परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है।

(3) बाल अपचारियों का जीवन स्तर अत्यंत निम्न होता है।

(4) निवास गन्दी बस्तियों में होता है।

(5) बाल अपचारियों के परिवार की अपचारिक पृष्ठभूमि होती है।

(6) बाल अपचारियों के परिवार में नशीले पदार्थों का सेवन होता है।

तथ्यों का विश्लेषण–

क्र.	मनोवैज्ञानिक	मनोविश्लेषकों का	सामाजिक वर्गीकरण
1	क्षणिक बाल अपचारी	असमान्य अपचार	आयु का आधार
2	स्वभावगत बाल अपराधी	आयु सम्मोही अपचारी	व्यवहार का आधार
3	मनोकाइक	बहिर्मुखी अपचारी	क्रियाओं का आधार
4	विक्षिप्त बाल अपचारी	–	लिंगीय आधार
5	चरित्र विकार बाल अपचारी	–	–

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण–

सारणी क्र. 1.1

परिवार की प्रवृत्ति के आधार पर बाल अपचारी परिवार की स्थिति

क्र.	परिवार का प्रकार	बाल अपचारी परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	एकाकी परिवार	26	64
2	संयुक्त परिवार	24	36
	योग	**50**	**100**

तालिका संख्या 1.1 में उत्तरदाता से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि 64 प्रतिशत बाल अपचार एकाकी परिवारों से एवं 36 प्रतिशत बाल अपचार संयुक्त परिवारों से हैं। संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकाकी परिवारों में बाल अपचारियों की दर लगभग दो गुनी है। एकाकी परिवारों में माता-पिता दोनों या पिता दिन का अधिकतर समय घर से बाहर कार्यस्थल पर रहते हैं और माता-पिता घरेलू कार्यों में व्यस्त रहते हैं जिसके कारण बच्चों की देख-रेख पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। बच्चे परम्परागत सामाजिक मूल्यों को सीखने में कहीं न कहीं पिछड़ जाते हैं, जबकि संयुक्त परिवार में कोई न कोई बुजुर्ग हमेशा बच्चों की देख-रेख के लिए मौजूद रहता है।

सारणी क्र. 1.2

परिवार की प्रवृत्ति के आधार पर बाल अपचारी परिवारों का विवरण

क्र.	परिवार की प्रवृत्ति	बाल अपचारी परिवार की संख्या	प्रतिशत
1	सामान्य परिवार	14	28
2	भग्न परिवार	36	72
	योग	**50**	**100**

तालिका संख्या 1.2 के अनुसार 28 प्रतिशत बाल अपचारी सामान्य परिवार से तथा 72 प्रतिशत बाल अपचारी भग्न परिवारों से सम्बंधित हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त सूचना के आधार पर यह निष्कर्ष पाया कि अधिकांश बाल अपचारी भग्न परिवारों से थे। प्रस्तुत अध्ययन में 28 प्रतिशत बाल अपचारी सामान्य परिवारों से सम्बंधित थे। यह निष्कर्ष परिवार के केवल संरचनात्मक पक्ष के अध्ययन पर आधारित है, जहाँ माता-पिता तथा उनके जीवित बच्चों को सम्मिलित किया गया है। भग्न परिवारों की अपेक्षा संरचनात्मक रूप से पूर्ण परिवारों में बाल अपचारियों की अधिक संख्या होना अनुसंधान की

उपकल्पना को असत्य सिद्ध करता है।

सारणी क्र. 1.3

बाल अपचारी परिवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि

क्र.	परिवार की पृष्ठभूमि	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	अपचारी	31	62
2	अनापचारी	19	38
	योग	**50**	**100**

उपरोक्त सारणी से स्पस्ट होता है कि 31 प्रतिशत परिवारों में वयस्क सदस्य अपराधी कार्यों में संलिप्त रहे हैं। जबकि 19 प्रतिशत परिवार अपराधी पृष्ठभूमि के नहीं हैं। अर्थात् 19 प्रतिशत बाल अपचारी ऐसे हैं जिनके परिवारों में कोई भी अपराधी नहीं रहा। मात्र 31 प्रतिशत बाल अपचारी ऐसे हैं जिन्हें परिवार के अन्दर से अपचारी कार्यों की प्रेरणा मिलने की सम्भावना है।

सारणी क्र. 1.4

बाल अपराधी परिवारों में नशीले द्रव्य सेवन की स्थिति

क्र.	परिवार में नशे के प्रकार	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	केवल धूम्रपान	02	05
2	केवल गुटखा या खैनी	06	10
3	धूम्रपान व गुटखा	04	07
4	धुम्रपान गुटखा मद्यपान	29	68
5	कोई नशा नहीं	09	10
	योग	**50**	**100**

तालिका 1.4 से स्पष्ट होता है कि 04 प्रतिशत परिवारों में धूम्रपान व किसी न किसी रूप में तम्बाकू का सेवन किया जाता है। 68 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जहाँ धूम्रपान, गुटखा आदि के साथ-साथ मद्यपान व अन्य उद्दीपक द्रव्य लिये जाते हैं। नशीले पदार्थ एक ओर आय के हिस्से का उपयोग करते हैं तो दूसरी ओर समाज के स्वीकृत व्यवहारों का उल्लंघन करते हैं, जिसका सीधा प्रभाव बच्चों की मनोवृत्तियों पर पड़ता है। गोपनीयता के अभाव में बच्चा नशे में वयस्क व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहारों का अवलोकन करता है। वयस्क सदस्यों के अनुसरण की प्रक्रिया बच्चों को बाल अपचार की ओर ले जाती है। बच्चे आरम्भ में बड़ों की नकल के रूप में इन आदतों का अनुसरण करते हैं, जो बाद में लत का रूप ले लेती है। परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है। यदि पाठशाला में अनैतिकता विद्यमान है तो बच्चा भी अनैतिकता की ओर प्रवृत्त हो जाता है। नशे की पूर्ति के लिए समाज अस्वीकृत साधनों से आय प्राप्त करने की कोशिश करता है, जो अपचारी गतिविधियों में लिप्त हो जाता है। साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य व भविष्य के लिए प्रशिक्षित होने से वंचित रह जाता है। परिवार सामाजिक, आर्थिक स्थिति में अवरोही गति की ओर उन्मुख रहता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव– बाल अपचार आज के समाज में एक गम्भीर समस्या को जन्म दे रहा है। तथ्यों के आधार पर मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषकों एवं सामाजिक

वर्गीकरण करके हम यह देखते हैं कि किस प्रकार के समाज में बाल अपचार व्याप्त है। परिवारों का अध्ययन करके यह बता सकते हैं कि कितने प्रतिशत बाल अपराधी सामान्य तथा भग्न परिवारों से आए हैं तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर हम यह बता सकते हैं कि कितने प्रतिशत परिवारों की संख्या में बाल अपचार पाए गए हैं।

वयस्कों की तुलना में बालकों को आसानी से समझाया जा सकता है। समय-समय पर उससे परामर्श करना चाहिये तथा उसकी समस्याओं का निवारण करना भी लाभकारी रहता है। बाल अपचार एक गम्भीर समस्या है, जिसका उपचार करना अनिवार्य है। उपचार में निम्नांकित सामाजिक इकाइयाँ अथवा सुविधाएँ सहायक हो सकती हैं।

बाल अपचार को रोकने में विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न सुझाव दिये हैं- डॉ. सेथना[6] का कथन है कि बाल अपचार निरोध में पारिवारिक संगठन का विशेष महत्व है। वास्तव में बाल अपचार रोकने के लिए परिवार का बड़ा योगदान है। यदि परिवार बच्चे की उचित देख-रेख करे, बच्चे का सामाजीकरण भी उचित प्रकार से करे तथा माता-पिता का नियंत्रण रहे तो बाल अपचार रोका जा सकता है। मुख्य रूप से निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं-

(1) परिवार में माता-पिता सुशिक्षित होने चाहिए।

(2) बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए जिससे के उसकी भावनाएँ कुण्ठित न हो।

(3) बालक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाए जिससे कि माता-पिता को उसकी इच्छाओं के अनुकूल वातावरण बनाने में सहायता मिल सके।

(4) परिवार में बालक की इच्छाओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। अन्यथा वह चोरी या अनुचित साधनों से अपनी इच्छाओं की पूर्ति का उपाय खोजेगा।

(5) परिवार की आर्थिक दशा अच्छी होनी चाहिए, जिससे कि बालक को स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन साधन भी उपलब्ध होते रहें।

(6) बालक की रूचि सत्संग की ओर लगानी चाहिए।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. शर्मा नरेन्द्र कुमार (2012), 'भारत में बाल अपचार', ओमेगा पब्लिकेशंस, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. डॉ. शुक्ल अखिलेश (2006), बाल अपचार, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा (म.प्र.)
3. त्रिपाठी विनायक (2013), 'किशोर अपचारिता', ओमेगा पब्लिकेशंस, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. डॉ. सिंह निशांत (2008), 'भारत में अपराध : एक विश्लेषण', ओमेगा पब्लिकेशंस, दरियागंज, नई दिल्ली।
5. आहूजा राम, 'अपराध शास्त्र', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृ. 198
6. शुक्ल अखिलेश क्लासिकल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

जनजातीय जीवन की परम्परा एवं संस्कृति का संवाहक :महुआ
(एक अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के गोंड़ जनजाति के विशेष संदर्भ में)

* अशोक कुमार नाग

सारांश- *जनजातीय जीवन की सम्पूर्ण दिशाधारा प्रकृति पर ही केन्द्रित है। वे अपने जीवन में प्रकृति के इस उपकार को कभी नहीं भुला सकते। शायद यही कारण है कि वे हमेशा से प्रकृति की इसी अलौकिक एवं असाधारण शक्ति तथा सामर्थ्य के समक्ष नतमस्तक होकर, इनमें अपने देवी-देवताओं का वास मानते हैं और समय-समय पर अपनी इन्ही उदात्त भावनाओं को वे जन्म, विवाह और मृत्यु के समय किये जाने विविध संस्कारों, पर्वो एवं उत्सवों के समय किये जाने वाले नीति-नियमों के माध्यम से प्रकट करते हैं। भौगोलिक एवं क्षेत्रीय विविधता के कारण इनके पूजन के तरीके भी भिन्न भिन्न होते गये और इन्हीं विभिन्नताओं के साथ ही जनजातियों ने अपनी भिन्न-भिन्न संस्कृति को जन्म दिया और उनका विकास किया। जनजातीय समाज में संस्कृति उनके उठने-बैठने, बोलने-चालने, तथा पहनने-ओढ़ने के तरीके आदि में दिखाई देती है और यही संस्कृति जनजातीय जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, बौद्धिक, साहित्यिक और कलात्मक किया कलापों के माध्यम से व्यक्त होती है।*

मुख्य शब्दः पंचतत्व, प्रकृति, सहचर, पर्यावरण, महुआ, बाड़ा, दाइयां, महुये की शराब, चट्टी, पेण्डूल, दोना, टोरी।

प्रस्तावना- सृष्टि में मानव समाज की उत्पत्ति से लेकर अब तक प्रकृति और मानव के मध्य एक अटूट रिश्ता रहा है। जीवन के आधारभूत पंचतत्वों (जल, अग्नि, धरती, आकाश, वायु) और उनसे संबंधित मूर्त-अमूर्त, स्थावर, जंगम, शक्तियां मिलकर प्रकृति को परिभाषित करती है। पेड़ लता, लता युग्मो, वनों-झीलों, पहाड़-पर्वतों, नदी-नालों, निर्झर बहते झरने और जीव जन्तु से संश्लेषित शब्द को प्रकृति की संज्ञा दी जाती है। वन्य जातियां हमेशा से प्रकृति पुजारक रहीं है। वे सदैव से कुदरत की संताने, उनके सहचर और अनुगामी रहे हैं। ममतामयी करूणामयी प्रकृति रूपी मां के आंचल में ही उनके जीवन की सारी गतिविधियां संचालित होती हैं, जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक जनजातीय समाज का जीवन प्रकृति के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। अन्न, जल, वस्त्र, अग्नि, आवास, एवं जीवन जीने से सारोअंजाम सभी कुछ इस प्रकृति की के छांव तले ही प्राप्त करते हैं। प्रकृति ना केवल मानव समुदाय अपितु विश्व वसुधा के समस्त जीवों को अपने प्राणदायनी वायु आक्सीजन से पोषित एवं संरक्षित रखती है अपितु कार्बनडाइआक्साइड तथा अन्य जहरीली गैसों को पीकर धरती के तापमान को नियन्त्रित रखकर और पर्यावरण के

* शोधार्थी, समाजशास्त्र, बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)

संतुलन में अपनी महती भूमिका निभाता है।

अनादि काल से ही गोंड जनजातीय समुदाय प्रकृति का पुजारक रहा है, इसी के नीचे बैठकर ही ऋषियों एवं तपस्वियों ने अपनी कामना सिद्धि की तथा विद्या एवं ज्ञान प्राप्त किया है। इसके फूल पत्तों एवं लकड़ियों की उपयोग यज्ञीय कार्य के रूप में प्रयोग कर पर्यावरण की शुद्धि का प्रयास किया जाता रहा है। मानव जीवन के तीन महत्वपूर्ण पड़ाव हैं जन्म, मृत्यु और विवाह इन्हीं तीन अवस्थाओं में गोंड जनजातीय समाज में महुए की उपयोगिता निभाता है। गोंड जनजातीय समुदाय में महुए के पेड़ की उनके जीवन के विविध क्षेत्रो में उपयोगिता को जानने एवं दस्तावेजीकरण करने का एक प्रयास इस शोध के माध्यम से किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य–

इस शोध कार्य का उद्देश्य हैं गोड़ जनजाति जीवन में महुआ पेड़ की सामाजिक सांस्कृतिक भूमिका का अध्ययन करना। उनके जीवन संस्कार एवं वर्ष भर चलने वाले प्रमुख पर्व एवं उत्सवों में महुए की महत्ता का अध्ययन करना। महुए की धार्मिक, आर्थिक, व्यवसायिक, औषधि रूपक उपयोगिता का अध्ययन करना। महुए की धार्मिक, आर्थिक, व्यवसायिक, औषधि रूपक उपयोगिता का अध्ययन करना। महुए के रस से बने शराब से बढ़ते नशे की प्रवृत्ति के कारण से उनके जीवन में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना, महुए के प्रति गैर जनजातीय समाज की नकारात्मक प्रवृत्ति का अध्ययन।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय–

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु छत्तीसगढ़ राज्य का चयन किया गया है। प्रदेश के जनजाति परिदृश्य के संदर्भ में यहां गोंड जनजातीय समुदाय की बहुलता हैं, जिनके आय के प्रमुख स्त्रोतों में से एक साधन महुए के पेड़ के माध्यम से वनोपज संकलन करना है, अतः गोड़ जनजाति समुदाय का चयन अध्ययन हेतु किया गया।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत शोध कार्य की प्रकृति एवं उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस अध्ययन हेतु सूचनाओं का एकत्र करने हेतु द्वितीयक स्त्रोतों के रूप में प्रकाशित, अप्रकाशित शोध पत्र, पत्रिकाएं, जरनल, समाचार पत्र तथा इन्टरनेट की सहायता ली गई है। समस्त स्त्रोतों से प्राप्त सूचना तथा आंकड़ों का चयन विषय वस्तु को ध्यान में रखकर किया गया है।

महुए के फूल की रासायनिक प्रकृति–

महुए में अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों का समावेशन होता है, जिसकी प्रकृति के बारे जनजातीय समुदाय अनभिज्ञ रहते हुए भी अपनी परम्परागत ज्ञान के माध्यम से इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधियों के माध्यम से लगातार करता आ रहा है महुए की रासायनिक प्रकृति इस प्रकार है–

क्रमांक	रासायनिक तत्व	मात्रा (प्रतिशत में)
1	नमी	18.6
2	प्रोटीन	4.4
3	वसा	0.5
4	शर्करा	72.9
5	सेल्यूलोज (रेशा)	1.7
6	राख	2.7

वैज्ञानिकों के मातानुसार इसके फूल में आवर्त शर्करा 52.6, इक्षु शर्करा 2.2 प्रतिशत, सेल्यूलाज 2.4 प्रतिशत, अल्युमिनाईड 2.2 प्रतिशत, शेष पानी एवं राख होती है। जिसमें अल्प मात्रा में कैल्शियम, लौह, पोटाश एन्जाइम, अम्ल भी पाये जाते हैं। इसकी बीजों में तेल का प्रतिशत 50-55 तक होता है।[1]

गोंड जनजातीय जीवन मे महुए के पेड़ की उपयोगिता-

प्रदेश में महुए का पेड़ बहुतायत मात्रा में मिलता है। वनोपज संकलन यहां की गोंड जनजातीय जीवन के आय के प्रमुख स्त्रोतों में से एक है। इनका संपूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक जीवन इन्हीं वृक्षों एवं वनस्पतियों पर ही आश्रित रहा है। जनजातियों की कोई भी रीति-रिवाज महुए की उपस्थिति के बिना असंभव एवं अपूर्ण है। अनादि काल से ही गोंड जनजातीय समुदाय प्रकृति का पुजारक रहा है, इसी के नीचे बैठकर ही ऋषियों एवं तपस्वियों ने अपनी कामना सिद्धि की तथा विद्या एवं ज्ञान प्राप्त किया है। इसके फूल पत्तों एवं लकड़ियों की उपयोग यज्ञीय कार्य के रूप में प्रयोग कर पर्यावरण की शुद्धि का प्रयास किया जाता रहा है। मानव जीवन के तीन महत्वपूर्ण पड़ाव हैं जन्म, मृत्यु और विवाह इन्हीं तीन अवस्थाओं में गोंड जनजातीय समाज में महुए की उपयोगिता इस प्रकार है-

प्रसव- गोंड जनजातीय समुदाय में बच्चे का जन्म स्थान या तो बरामदे में, या पशुओं के बाड़े में होता है। यद्यपि शासन द्वारा गर्भवती माता एवं शिशु के सुरक्षित प्रसव हेतु अनेक योजनाएं चलायीं जा रही हैं इसी का असर है कुछ जनजातीय लोगों द्वारा चिकित्सालयों में प्रसव कराने को प्राथमिकता दी जाती है। बावजूद इसके आज भी अधिकांश प्रसव घर पर ही कराये जाते है। बच्चे के जन्म हेतु रसोई घर एवं पूर्वजों के घड़ेवाले कमरों को वर्जित माना जाता है, प्रशिक्षित दाईयां नहीं होतीं और घर की स्त्रियां ही प्रसव में मदद करती हैं। प्रसव वेदना की अधिकता मे प्रसूता को दर्द कम करने के लिए महुए की शराब पिलाई जाती है।[2] बच्चे की नाल पर संक्रमण से बचाव हेतु महुआ से बने शराब को लगाया जाता है।

जन्म- गोंड समुदाय जीवन संस्कार कड़ी में सबसे पहली जन्म संस्कार मनाया जाता है जिसे शिशु जन्म के छः दिन बाद संपन्न किया जाता है जिसे गोंड जनजातियों की बोली में 'चट्टी' कहा जाता है जो 'छठी' शब्द का ही अपभ्रंश है। इसमें प्रसूता महिला को महुआ, मुनगा, ईमली, साजा एवं बबूल पांच प्रकार के पेड़ों की छाल को उबालकर स्त्रियों द्वारा पिलाया जाता है। इसके पीछे गोंड समुदाय की यह मान्यता है कि इससे माता में पोषणीय शक्ति का विकास होगा, शिशु को पिलाने हेतु पर्याप्त मात्रा में दूध बनेगा तथा गर्भधान के दौरान माता के शरीर मे स्थित गंदा रक्त शरीर से बाहर आ जायेगा। जन्म संस्कार की अगली कड़ी में बच्चे को महुआ का रस चटाया जाता है।[3] इसके मूल में यह तत्वभाव है कि बच्चे में भी महुए के समान मधुर एवं मीठे स्वभाव के संस्कार जागृत होंगे।

विवाह- गोंड जनजातीय जीवन का अगला महत्वपूर्ण पड़ाव है। विवाह जिसे गोंडी में 'पेण्डूल' कहा जाता है। सर्वप्रथम शादी हेतु लड़के के घर वाले रिश्ता तय करने हेतु लड़की के घर जाते हैं। लड़के के माता-पिता लड़की के घर 2-3 बार जाते हैं। पहली बार घर से बाहर निकलते समय लड़के का पिता महुआ पत्तों के दोने में अपने पूर्वजों को

महुए से बनी मदिरा भेंट करता है-एक दोना लड़के के लिए एक दोना लड़की के लिए और एक पूर्वजों के लिए। इसके पीछे यह मान्यता है कि यदि कुछ समयान्तराल बाद एक भी पत्ता मुड़ जाए, तो अपशकुन है फिर वे अपनी यात्रा निरस्त कर देते हैं। यदि शगुन शुभ होता है तो लड़के का पिता अपने साथ दो तीन रिश्तेदारों को लेकर शुद्ध महुए की शराब के कई बोतलें लेकर वधू के घर जाने को निकल पड़ता है। मंडप तैयार करने, नृत्य के दौरान मरनोरंजन में, विदाई के समय, गोंड जनजातियों की विवाह की ये रस्में क्षेत्र-स्थान एवं समय के अनुसार पृथक हो सकती हैं परन्तु महुए के साथ विवाह संस्कार की रीति नीति एवं योग इन्हें एकसूत्र में बांधता है तथा प्रकृति के साथ अपने रिश्ते अटूट संबंध को प्रकट करता है।[4]

मृत्यु– गोंड जनजातीय समाज में परिवार के बड़े बुजुर्गों के साथ ही छोटे बच्चे, अविवाहित,विवाहित महिलाओं एवं चेचक के रोगी को दफनाते हैं बाकी सबका दाह संस्कार करते हैं। मृत्यु के समय मृतक को अमृत के प्रतीक रूप में महुआ का रस उसके मुंह में डालते हैं। आमतौर पर मृतक को महुआ के पेड़ के नीचे रखा जाता है। गांव का 'गांयता' घर का बड़ा भाई या मुखिया कुछ महुआ की शराब शव के सिर पर यह कहते हुए डालता है कि 'आज इसे हमारे हाथों से ग्रहण करो, आज के बाद ये तुम्हें कहां मिलेगी? इसके बाद काफी कपड़े हटाकर एक कपड़ा महुआ के पेड़ से बांध दिया जाता। यदि शव को दफनाना हो तो कब्र के लिए पांच फीट गहरे गड्ढे में रखकर गायता द्वारा शराब की बूंदे इस भाव के साथ गिराई जाती है कि इस महुआ रूपी अमृत के द्वारा तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

पर्व एवं धार्मिक उत्सव में महुए की भूमिका–

यूं तो कोई भी एक निश्चित समय सारिणी गोंड जनजाति के पर्व एवं धार्मिक आयोजन की देना एक कठिन कार्य है लेकिन यदि एक इनका एक सूचीकरण किया जाय तो यह अंग्रेजी कलैण्डर के अनुसार इस प्रकार का अंदाजा लगाया जा सकता हैं-

जनवरी:भीमापंडुम, पुपुल कोरटा तिंदानद और कारिस्ता, जटा पंडुम। फरवरी:कारे पंडुम। मार्चः इडू पंडुम। अप्रैल:बीजा पंडुम, ।जुलाईः 'आमूंस त्योहार'। अगस्त:कुरूम पंडुम या कोरसा तिंदानद। सितम्बर:माह के अंत मे जब पहली बार नया चावल, लौकी, और खीरे खाए जाते है तब यह त्यौहार मनाते हैं। अक्टूबर:नुका पंडुम दिसंबरः जटा पंडुम इसी माह में मनाया जाता है।[5]

इन सभी पर्वों तथा उत्सवों को मनाने का एक ही उद्देश्य एवं भाव है कि 'हे पूर्वजों एवं देवी-देवता हमारे इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करें एवं भरपूर धन-धान्य प्रदान करें, हमारे परिजन एवं कुटुम्ब परिवार के लोग सुखकर पूर्वक जीवन व्यतीत करें तथा अनिष्टों सें हमें छुड़ायें और हम पर अपनी आशीष और कृपा बनाये रखें।

सामाजिक न्याय में महुए की उपयोगिता–

गोंड जनजाति अपनी सामाजिक न्याय व्यवस्था के प्रति काफी कट्टर एवं वफादार होते हैं। समाज द्वारा लिये गये फैसले पत्थर की लकीर होते हैं। और समाज प्रमुख द्वारा लिये गये फैसले सभी को मान्य होते हैं। जनजातीय समाज में विवाद का कारण प्रमुख रूप से जर, जोरू और जमीन संबंधी मामले होते हैं, जिन्हें वे पुलिस कचहरी एवं न्यायालय के दहलीज पर ले जाने की अपेक्षा अपने सामाजिक पंचायतों की शरण में

जाना उचित मानते हैं। किसी भी विवाद की स्थिति में समाज प्रमुखों द्वारा किये गये फैसले दोनों पक्षों को स्वीकार करने होते हैं। फैसले की अस्वीकृति की स्थिति में उन्हें समाज के कोप का भाजन पड़ता है जो कि संबंधित पक्ष को जाति, समाज एवं गांव से बहिष्कृत भी हो सकता है। न्याय व्यवस्था में दण्ड का तरीका भी काफी सरल-सहज होता है जो सामान्यतः समझौते, माफी, अत्यल्प आर्थिक दण्ड और महुए के शराब की कुछ बोतलें होती हैं, जो कि समाज द्वारा ग्राह्य होते हैं। इसी संदर्भ में अर्जुन सिंह नाग एवं मध ु रामनाथ[6] के अनुसार 'ग्राम-न्याय से संबंधित आदिवासियों की कानूनी कहानी' के माध यम से बताया है कि किस तरह अनेक प्रकार के जटिल से जटिल मुद्दे इसी तरह से महुए के माध्यम से सामाजिक न्याय व्यवस्था द्वारा सामान्य एवं साधारण रूप से निपटाये जाते हैं जो कोर्ट-कचहरी एवं पुलिस व्यवस्था के अत्याधिक समय, श्रम एवं खर्चों युक्त न्याय व्यवस्था से बचत का मिसाल साबित करती है।

क्षेत्रीय मेलों, जातरा एवं देव पूजन में महुए की भूमिका-

क्षेत्र के विभिन्न अंचलों में होने वाले विभिन्न मेलों एवं मंडई में लोक-संस्कृति की चरमावस्था की झलक देखी जा सकती है वैसे तो संपूर्ण छत्तीसगढ़ अपने विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले मेलों को लेकर विख्यात है, उसी प्रकार गोंड जनजातीय जीवन में मेलों का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक उपयोगिता देखी जा सकती है। आयोजन में क्षेत्र के युवक-युवतियां सारी रात महुए की मादकता भरे वातारण में नृत्य एवं संगीत के साथ झूमते हैं। मेले के प्रारंभ से लेकर का समापन तक उनकी रस्म निभायी जाती है। शराब वितरित करके सभी क्षेत्र के देवी-देवताओं की भाव-भरी प्रार्थना इस आशय के साथ की जाती है कि संपूर्ण क्षेत्र के चराचर जीवों का कल्याण हो, क्षेत्र में सदैव सुख-शांति कायम रहे। प्रकृति द्वारा प्रदत्त भरपूर धन-धान्य को पाकर गोंड जनजातीय समुदाय के लोग क्षेत्र के समस्त देवी-देवताओं को उनकी इस अहैतुकी कृपा के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। इसी उदात्त भावना का प्रकटीकरण वे क्षेत्रीय मेलों के माध्यम से करते हैं, जो कि महुआ के रस के बगैर पूर्णतः अधूरी है।

महुए की औषधिपरक उपयोगिता-

ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र, नई दिल्ली मे कार्यरत प्रोफेसर डॉ. एस.एन. नायक ने महुए की अनेक औषधीय गुणों का पता लगाया है। महुआ का रस त्वचा रोग तथा सिरदर्द में प्रयोग किया जाता है। स्यानु की परेशानी, डायरिया, पेचिश, निर्जलीकरण, अस्थमा, ज्वर, मासिक चक्र के दौरान अत्याधिक रक्तस्त्राव सहित कई बीमारियों के इलाज में इसकी उपयोगिता आयुर्वेद में वर्णित है।[7]

अवकाश प्राप्त आयुर्वेद चिकित्सा अधिकारी डॉ.मूलचन्द पाण्डेय का कहना है कि महुआ बसंत ऋतु का अमृत फल है। यह वातनाशक और पौष्टिक तत्व वाला होता है। यदि जोड़ों पर इसका लेपन किया जाय तो सूजन कम होती है और दर्द कम हो जाता है। इससे पेट की बीमारियों से भली मुक्ति मिलती है।[8]

महुआ छाल का उपयोग कुष्ठ रोगों का इलाज करने और घावों को ठीक करने के लिए किया जाता है। फूलों का उपयोग खांसी और हृदय से संबंधित रोगों के इलाज के लिए किया जाता है। फलों का उपयोग रक्त संबंधी रोगों में किया जाता है। इसका फूल चीनी, प्रोटीन, विटामिन और खनिजों के समृद्ध स्त्रोत होते हैं।[9]

बैगा जनजाति के लोग सदियों से वैद्य का कार्य करते आ रहे हैं। ये असाध्य रोगों का उपचार अपने वनों में पाये जाने वाली जड़ी-बूटियों से करते आ रहे हैं। इन्हीं में से महुए का उपयोग वे परिवार नियोजन के रूप में करते हैं। महुए की शराब या गुड़ के साथ गहला ककोरा कांदा को खिलाने से संतानोत्पत्ति बंद हो जाती है। गर्भपात कराने के लिए महुआ के प्रथम आसवित शराब को एक गिलास गर्भवती महिला को दी जाय तो गर्भपात हो जाता है।[10]

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) तथा सूचना एवं प्राद्योगिकी जे.पी. विश्वविद्यालय (जे.यू.आई.टी.) सोलन द्वारा संयुक्त रूप से एक शोध के द्वारा महुआ फूलों से पौष्टिक पेय का उत्पादन महुआ के अर्क के साथ अमरूद मिलाकर महुआ की शराब तैयार की जाती है। विकसित शराब में रोग प्रतिरोधक क्षमता पायी गयी है। इसका वैद्यीकरण, पेटेन्ट एवं बाजार परीक्षण जारी है।[11]

महुआ की और भी अनेकों प्रकार की औषधीय उपयोगिता गोंड जनजातीयों द्वारा रोजमर्रा की जीवन में देखने को मिलती है। यह जनजातीय समाज के औषधीय ज्ञान का एक दुखद पहलू भी है कि उनके सदियों से संग्रहित एवं पोषित पारम्परिक ज्ञान को कुछ स्वार्थी लोग एवं दवाई कम्पनियां उनका पेटेंट करा लेती हैं और मुनाफा कमाती हैं। जिसमें आदिवासियों का कोई हिस्सा नहीं होता।

महुए की आर्थिक एवं व्यवसायिक उपयोगिता-

गोंड जनजाति जीवन में महुआ के फूलों की तुलना स्वर्ण मुद्रा से की जाती है। इसकी बहुमुखी व्यवसायिक उपयोगिता इस प्रकार है-

लकड़ी- महुए की लकड़ी को चिरस्थायी एवं मजबूत मानकर दरवाजे, खिड़की में इसका प्रयोग किया जाता है। जलाऊ लकड़ी के रूप में भी कभी-कभी इसका प्रयोग किया जाता है। लकड़ी का धार्मिक महत्व होने के कारण इसे यज्ञीय कार्य में एवं मांगलिक कार्यों में भी इसकी आवश्यकता होती। पत्ते-दोने-पत्तल बनाकर इसका उपयोग शादी जन्म या अन्य सामाजिक कार्यों में भोजन परोसने हेतु थाली के विकल्प के रूप एवं अन्य कार्य के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

फल- टोरी का तेल काफी उपयोगी होता है जिसका उपयोग दीपक जलाने, रिफाईंड आयल, वेसलीन, साबुन, डिटर्जेंट, आदि दैनिक उपयोग की वस्तुएं बनाई जाती हैं। टोरी के तेल को 70 प्रतिशत ग्रामीण बिक्री कर अच्छी आमदनी प्राप्त करते हैं।[12] प्रो. डॉ.एस. एन. नायक ने महुआ से कई पौष्टिक खाद्य पदार्थ तैयार किए हैं ऐसा पहली बार हुआ है। कि इस तकनीकी का पेटेंट भी करा लिया गया है। इनके अनुसार इन वस्तुओं को तैयार करने में एक से डेढ़ लाख की लागत आती है। महुए से निर्मित खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता को विशेषज्ञों द्वारा परखा भी गया है। इस तकनीकी को छत्तीसगढ़ के अन्य जिलों एवं गांव-गांव तक पहुचाने का कार्य स्वयं सेवी संस्थान वनवासी कल्याण केन्द्र कर रही है। कई ग्रामीण जनजातीय लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। संगठन के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष सह पूर्व सांसद मोरेन सिंह पूर्ति के अनुसार 'महुआ अब आदिवासियों के अभिशाप नहीं, वरदान है।'[13]

हेडिंग जनजातीयों द्वारा महुए का फूल शराब, खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग के साथ ही राज्य में बड़े पैमाने पर महुआ का उत्पादन होता है और राज्य में वनोपज से होने

वाली 1700 करोड़ रूपये की आय में इसकी महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है। प्रति वर्ष राज्य में करीब 25 लाख क्विंटल महुआ का उपयोग अब तक शराब बनाने के लिए होता रहा है। नवीन प्रयोग के रूप में छत्तीसगढ़ सरकार अब महुआ से एथेनॉल बनाकर इसके माध्यम से पेट्रोल डीजल का विकल्प तैयार कर रही है। वैज्ञानिकों की राय में डीजल में महुआ के तेल के इस तरह के मिलावट से इंजन की दबाव क्षमता 16:1 से बढ़कर 20:1 तक हो जाती है जिसे वैज्ञानिक एक अच्छा संकेत मानते हैं। शैलेन्द्र कुमार उर्जा प्राधिकरण के अधिकारी के अनुसार 'राज्य में अगर महुआ का इस्तेमाल बायोडीजल के रूप में हो, तो आने वाले कुछ ही सालों में हम बायोडीजल के मामले में आत्मनिर्भर हो सकते हैं।' कृषि वैज्ञानिक पंकज अवधिया का मानना है कि 'रतनजोत की तुलना में महुआ से बायोडीजल बनाना बेहतर होगा'। इसी संदर्भ में प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ संकेत ठाकुर कहते हैं कि 'महुआ से बायोडीजल बनाने की योजना को सामाजिक और सांस्कृतिक पहलु से भी जोड़ कर देखने की जरूरत है।[14]

भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ मर्यादित (ट्राईफेड) द्वारा महुए की गुणवत्ता को समझकर इस दिशा में कई पहल शोध एवं अनुसंधान किये जा रहे हैं। साथ ही जनजातीय जीवन की आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु इसका बाजार में वैद्यीकरण एवं पेटेन्ट कराया जा रहा है जिससे कि जनजातीयो के आय एवं जीवन स्तर में वृद्धि हो सके। वन विभाग की भी इस संदर्भ में यह योजना है कि बीड़ी पत्ते की तरह ही महुआ का भी मूल्य निर्धारण हो और उसकी नीलामी हो ताकि गोंड जनजातीय लोगों को महुआ के फल, फूल के विक्रय का उचित दाम मिल सके और उन्हें दलालों तथा बैचोलिए की चंगुल से छुड़ाया जा सके।[15]

महुआ एवं विदेशी मदिरापान–

गोंड जनजातीय जीवन में मदिरापान करना हमेशा से उनकी संस्कृति का एक अटूट हिस्सा रहा है। अंग्रेजी हुकूमत के आगमन के साथ ही इनकी स्वतन्त्रता तथा मानसिक शांति भंग हो गयी। अंग्रेजों द्वारा आबकारी नीति बनायी गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य जनजातियों के मध्य विदेशी शराब के विक्रय के माध्यम से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना था, जो कि ठेकेदारी प्रथा के माध्यम से संचालित की जा रही थी। इस नीति के फलस्वरूप जनजातियों की पुरानी परंपरा पर रोक लगाई जिसके फलस्वरूप जनजातियों की दशा खराब हुई। बम्बई प्रेसीडेन्सी (1985) के दौरान डी सिग्मेंट के सर्वेक्षण के अनुसार 'अंग्रेजी सरकार द्वारा मदिरा विक्रय को बढ़ाकर राजस्व कमाने की नीति ने जनजातीय समाज के लोागों पर बुरा तथा हानिकारक प्रभाव डाला है।''[16]

ज्ञात हो कि अविभाजित बस्तर जिले के संदर्भ में प्रत्येक जनजातीय व्यक्ति को अपने निजी उपयोग हेतु 5 लीटर महुए की शराब रखने की छूट शासन से मिली हुई है। सभी राज्य सरकारें जनजातीय विकास की सभी योजनाओं में शोषण की समाप्ति को पहली प्राथमिकता के तौर पर स्वीकार करती है। दुर्भाग्यवश विदेशी मदिरा विक्रय जनजातियों के शोषण का प्रबल माध्यम बन गया। धेबर कमीशन के रिपोर्ट के अनुसार 'हम इस प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप को समाप्त नहीं कर सके। विशेषतया तब जबकि जनजातियों के पास अपनी बनायी मदिरा पर्याप्त मात्रा में है तथा इसे ये लोग सामाजिक रूप से मान्यता एवं सम्मान भी देते हैं।' प्रो. एम. के. बोस (1970-71) ने भी इन मदिरा

विक्रेताओं को जनजातीय क्षेत्रों में ''शोषण का माध्यम'' बताया है। धेबर कमीशन द्वारा इस प्रकार के मदिरा की बिक्री पर रोक लगाने का सुझाव दिया है।[17]

योजना एवं सुझाव–

1. प्रयास यह किये जाने चाहिए कि गोंड जनजातियों को अपने जल,जंगल एवं जमीन पर विचरण एवं उनके दोहन का पूर्णाधिकार दिया जाना चाहिए। ताकि उनकी अनमोल संस्कृति का संवर्द्धन एवं संरक्षण हो सके
2. वन विभाग को अन्य विभाग के साथ मिलकर गोंड जनजातियों को महुआ पेड़ की व्यावसायिक खेती हेतु प्रेरित, प्रशिक्षित, एवं जागरूक किये जायें। महुए के संबंध में उनके औषधीय उपयोग की पारंपरिक ज्ञान का संकलन किये जायें, महुए के उत्पादन संकलन एवं प्रसंस्करण हेतु शोध एवं अनुसंधान किये जावे। महुए के फूल, फल एवं बीजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करके इसके खरीदी हेतु प्रयत्न किये जावें। जिससे उन्हें महुए के संग्रहण का उचित मूल्य मिल सके और वे स्थानीय बेचौलिओं एवं दलालों से बच सके।
3. उर्जा के नवीनीकरण स्त्रोत एवं पेट्रोल डीजल के विकल्प के रूप में इसके उपयोग किए जाने हेतु विशेष परीक्षण एवं अनुसंधान हेतु प्रयास किये जावें।
4. आबकारी नीति में यथासंभव संशोधन एवं सुधार करते हुए मदिरा विक्रय की ठेकेदारी प्रथा पर अंकुश एवं नियन्त्रण लगाने हेतु विशेष निगरानी दल का गठन किया जाये। जिससे गोंड जनजातीय समुदाय के लोग विदेशी मदिरा के प्रभाव से बच सकें।
5. नशा उन्मूलन संबंधी कार्यक्रमों के संचालन एवं क्रियान्वयन में जनजातीय लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करनी चाहिए और इसके लिए उन्हें जागरूक करने हेतु शिविर, सभा एवं उनके मध्य जाकर प्रयास करने होंगे।
6. एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय जो उनके बोली-भाषा, संस्कृति, परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों को सहेजकर रख सके ताकि उनकी विलुप्त तथा नष्ट होती संस्कृतियों का संरक्षण एवं अभिवर्द्धन हो सके।

निष्कर्ष–

गोंड जनजातियों का संपूर्ण जीवन प्रकृति पर ही आश्रित एवं निर्भर है। वे प्रकृति के मध्य उन्मुक्त एवं स्वतंत्र रूप से बिना किसी हस्तक्षेप में रहते हैं। उन्हें अपनी संस्कार, संस्कृति, प्रकृति एवं रीति-नीति से अटूट प्यार है। महुआ उनके जीवन जीने का तरीका है, उनकी जीवन शैली है महुआ से उनका वजूद और पहचान है। संपूर्ण जीवन काल में खाद्य पदार्थ के रूप में, देव-पूजन, अतिथि सत्कार, जन्म, मरण, विवाह हर्ष -उल्लास जीवन के हर कम पर इसकी महती आवश्यकता है। जितना कठिन मानव को प्रकृति को अलग करना है उतना ही दूष्कर कार्य होगा गोंड जनजातीय जीवन और उनकी संस्कृति से महुए को अलग करना। प्रकृति के वास्तविक संरक्षक को तो यही लोग हैं। जंगल माफिया या अन्य गैर तरीके से वर्तमान समय मे। महुए के वृक्ष की अवैध कटाई कर उसका उपयोग क्षेत्र में ईंट भट्टे तथा जलाऊ लकड़ी के रूप में किया जा रहा है। परिणाम स्वरूप महुए के वृक्षों की संख्या लगातार घटती जा रही है, जो कि शोचनीय एवं चिन्तनीय विषय है। गैर जनजातीयकरण, पर-संस्कृति ग्रहण, नगरीकरण, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण एवं

विकास की नयी विचारधाराओं तथा योजनाओं के प्रभाव से उनकी संस्कृति में काफी परिवर्तन एवं प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जो कि सकारात्मक कम एवं नकरात्मक परिणाम अधिक प्रस्तुत कर रहें हैं जिससे उनके जीवन में अनेक समस्याएं जन्म ले रहीं हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. http://healthdiseasegenetics.blogspot.in
2. http://healthdiseasegenetics.blogspot.in
3. अशोक कुमार सिंग, न्यूज ब्यूरो JNI News 15.04.2011
4. एल्विन, वेरियर (2008) मुरिया और उनका घोटुल, प्रकाश परिहार एवं कविता वशिष्ट द्वारा अनुदित, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, भाग-1. पृष्ठ 126-191
5. पूर्ववत पृष्ठ 159-60.
6. नाग, अर्जुन सिंह एवं मधु रामनाथ(2008) ग्राम-न्याय, बस्तर (छत्तीसगढ़) के आदिवासी की कानूनी कहानियां, कूनूर प्रिटिंग प्रेस, तमिलनाडू, पृष्ठ 15.
7. Apna Rcm,Tuseday 18 March 2014 http://rcm4us.blogspot.in/2014/03/blog-post_2192.html
8. http://www.jagran.com/uttar-pradesh/jaunpur-9115197.html
9. http://www.jnkvv-aromedicinalplants.in/front/Plant_Details_h/index.php?pid=6
10. http://www.bhartiyapaksha.com/2011/05/02
11. http://tribesindia.com/index.php? option=com_ content&view=article&id=97&Itemid=91&lang=hn
12. http://satishpandey-deshpath.blogspot.in/2010/03/blog-post_24.html
13. http://www.bbc.co.uk/hindi/regionalnews/story/2006/01
14. http://www.bbc.co.uk/hindi/regionalnews/story/2006/01/060129_biofuel_mahua.shtm
15. http://satishpandey-deshpath.blogspot.in/2010/03/blog-post_24.html
16. हसनैन, नदीम (2004) जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, पृष्ठ 172-175

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

गोंड़ जनजाति एवं परिवार

* विराज दुबे

सारांश– *मानव समाज की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार आधार भूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। मानव के आत्म–संरक्षण, वंशवर्धन और जीवन की निरन्तरता बनाये रखने का परिवार महत्वपूर्ण साधन है। मानव समाज की सास्ंकृतिक समृद्धि इसी परिवार ने प्रदान की है। सभ्य और आदिम सभी समाजों में परिवार पाया जाता रहा है।गोंड जनजाति में भी परिवार एक प्रमुख संस्था के रूप में पाया जाता हैं। गोंड परिवार की सरंचना पति–पत्नी और उनकी मान्यता प्राप्त सन्तानों से होती है।*

मुख्य शब्द– मानव समाज, वंशवर्धन, सांस्कृतिक समृद्धि, परिवार, जनजाति पीढ़ी

परिवार समाज की महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार का अस्तित्व सभी समाजों में सभी स्थानों पर सदैव रहा है। समय के साथ-साथ इसके आकार, प्रकार एवं विशेषताओं में न्यूनाधिक परिवर्तन हमेशा होते रहे है पर इसका अस्तित्व बना रहा है। यह सामाजिक संगठन की महत्वपूर्ण इकाई है। बच्चों का जन्म, पालन पोषण तथा सामाजीकरण का उत्तरदायित्व परिवार ही वहन करता है। व्यक्ति परिवार में जन्म लेता है तथा जीवन पर्यन्त परिवार का सदस्य बना रहता है। संस्कृति के विकास के प्रत्येक चरण में परिवार का अस्तित्व देखने को मिलता हैं। मानव समाज का विकास परिवारों से ही संभव है। व्यक्ति और समाज दोंनो की दृष्टि से परिवार मौलिक सस्था रही है। सामाजिक सरंचना में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। गोंड जनजाति वृहद हिन्दू समाज का महत्वपूर्ण अंग है। गोंड जनजाति में भी परिवार उनके सगंठन की महत्वपूर्ण इकाई है।

अध्ययन क्षेत्र– प्रस्तुत अध्ययन मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले में विकासरत गोंड जनजाति का अध्ययन है। 2001 की जनगणनानुसार जिले में 34.68 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति की जनसख्ंया निवास करती है। जिसमें गोंड जनजाति शीर्ष स्थान पर है। इस अध्ययन में मुख्य सड़क पर स्थित गाँवो माण्डई तथा करन पिपरिया में निवासरत 100 गोंड परिवारों का चयन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन छिन्दवाड़ा जिले के जुन्नारदेव विकासखंड के गोंड जनजाति बाहुल्य वाले ग्रामों का है। गोंड जनजाति में पाये जाने वाले परिवारों का स्वरूप कैसा है। परिवार में निर्णय लेने में किसको अधिक महत्व दिया जाता है, परिवार के निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता क्या है, यह सब जानने का प्रयास इस शोध में किया गया है। जनजाति परिवारों पर नवीन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा है यह जानना भी इस अध्ययन का उद्देश्य है।

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल

तथ्यों का विश्लेषण–

गोंड जनजाति में साधारणतया संयुक्त एवं एकाकी प्रकृति के परिवार पाये जाते हैं। संयुक्त परिवार में तीन या उससें अधिक पीढ़ी के निकट रक्त संबधी सम्मिलित रहते हैं। ये सामान्य सम्पति, सामान्य रूचियों एवं स्थानों की समानता के प्रतीक होते हैं। एकाकी परिवारों के अंतर्गत पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे होते हैं। गोंड जनजाति में परिवारों की प्रकृति क्या है यह जानने का यह अध्ययन एक प्रयास है। यह भी जानने का प्रयत्न इस अध्ययन में किया जा रहा है कि जनजाति संरचना पर आधारित परिवार परिवर्तन की नवीन परिस्थितियों में किस स्वरूप को विकसित कर रहे हैं।

तालिका कमांक-1

परिवार का स्वरूप

स.क्र.	परिवार का स्वरूप	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	संयुक्त	37	37%
2	एकांकी	67	63%
	योग	**100.00**	**100.00%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 37 प्रतिशत परिवार संयुक्त पाये गये तथा एकाकी परिवारों का प्रतिशत 63 रहा है। विकसित गांवों में संयुक्त परिवार कम होते है। जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति और सामाजिक प्रथाओं के अनुरूप अध्ययन क्षेत्र के गोंड आदिवासी विवाह के पश्चात् एकाकी परिवारों का निर्माण कर रहे है। परिवार में लिये जाने वाले महत्वपूर्ण निर्णयों के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका कमांक-2

परिवार में लिये जाने वाले महत्वपूर्ण निर्णय

स.क्र.	निर्णय	संख्या	प्रतिशत
1	बुजुर्गो द्वारा	18	18
2	मुखिया कर्ता द्वारा	35	35
3	समस्त सदस्यों द्वारा मिल जुलकर	47	47
	योग	**100**	**100**

तालिका कमांक 02 स्पष्ट करती है कि 18 प्रतिशत परिवारों में महत्वपूर्ण निर्णय बुजुर्गो द्वारा लिये जाते है। 35 प्रतिशत परिवारों में महत्वपूर्ण निर्णय मुखिया द्वारा लिये जाते है, तथा 47 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि महत्वपूर्ण निर्णय परिवार के सभी सदस्यों द्वारा आपसी विचार विमर्श कर लिये जाते है। स्पष्ट है कि गोंड परिवारों में बुजुर्गो की संख्या कम होती जा रही है। परिवार में कर्ता की भूमिका प्रभावशाली हो गई है। पारिवारिक निर्णयों में परिवार के अन्य योग्य सदस्यों की सहभागिता भी बढ़ी है।

गोंड जनजाति पुरूष प्रधान जनजाति है। इनके परिवार पितृसत्तात्मक तथा पितृवंशीय होते है परन्तु इनमें स्त्रियॉ महत्वपूर्ण सदस्य मानी जाती है। इन परिवारों में स्त्रियां परिवार की समस्त सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों की धुरी भी होती है। कृषि, मजदूरी तथा वनोपज संग्रह में स्त्रियां पुरूष के साथ मिलकर काम करती है।

तालिका क्रमांक-3

पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता

स.क्र.	महिलाओं की सहभागिता	संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	84	84
2	नहीं	16	16
	कुल	**100**	**100**

उक्त तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि 84 प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवारों में पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता होती है तथा 16 प्रतिशत परिवारों में पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता नहीं होती है।

स्पष्ट है कि अधिकांश परिवारों के पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता होती है पर उनके निर्णय को अंतिम नहीं माना जाता है। पुरूष जब निर्णय लेता है तो वह अपनी पत्नी से विचार विमर्श अवश्य करता है। बहुत कम परिवार ऐसे होते है जहॉ पारिवारिक निर्णयों में महिलाओ की सहभागिता नहीं होती है। पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता परिवार के अस्तित्व को बनाये रखने का मुख्य आधार है। पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं की यह सहभागिता पारिवारिक गतिविधियों में महिलाओं की सक्रियता, प्रस्थिति, परिवर्तन तथा पुरूषों के समकक्ष महिलाओं का स्थान सुनिश्चित होने की स्थिति स्पष्ट करता है परन्तु यह स्थितिपूर्ण रूप से कायम नहीं हो पायी है।

निष्कर्ष– यह अध्ययन निम्न निष्कर्षो को स्पष्ट करता है-

1. जनजातियों पर भी व्यक्तिवादिता, आर्थिक स्वतंत्रता तथा पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव पड़ रहा है तथा इसी कारण वे भी एकाकी परिवारों की ओर आकृष्ट हो रही हैं।
2. पारिवारिक निर्णयों में बुजुर्गों की सता का ह्रास हो रहा है।
3. पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है।
4. गोंड़ जनजाति में आर्थिक कार्यो में भी स्त्रियॉ पुरूषों के साथ सहयोग करती है।

सुझाव–

1. जनजातीय समस्याओं की पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर योजनायें बनायी जाना चाहियें।
2. पिछड़े जनजाति ग्रामों को मुख्य मार्ग से जोड़ा जाना चाहियें।
3. आदिवासी विकास योजनाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिये।
4. जनजातीय शिक्षा में जनजातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को भी शामिल किया जाना चाहियें।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. अग्रवाल, रामभरोसे, (1988) गोंड जाति का सामाजिक अध्ययन, गोंडी पब्लिक ट्रस्ट, मंडला
2. अटल, योगेश, (1965) आदिवासी भारत, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. तिवारी, शिवकुमार, (1995) दि राजगोंड्स, आगमकला प्रकाशन नई दिल्ली।
4. गुलाब, शेख, (1995) गोंड, मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्, भोपाल।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

कौटिल्यीय अन्तर्राज्य-सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता

* दिवांशु कुमार

सारांश- *भारत के प्राचीनकालीन ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन काल में हिन्दू शासकों ने न केवल राज्य की विधि-व्यवस्था को सुदृढ़ और सशक्त बनाने का प्रयास किया था, बल्कि दूसरे राज्यों के साथ उत्तम एवं मित्रवत् सम्बन्ध बनाये रखने की नीति भी अपनाई। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में विभिन्न राज्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से मंडल सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार युद्ध की अपेक्षा कूटनीति के द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।*

मुख्य शब्द- मंडल सिद्धान्त, षाड़गुण्य नीति, शक्ति संतुलन, राष्ट्रीय हित, कूटनीति।

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए साम, दाम और दण्ड तीनों प्रकार की पद्धतियों को अपनाना चाहिए। प्रो. आर. के. चौधरी के शब्दों में ''कौटिल्य का गतिशील मंडल सिद्धांत भारतीय कूटनीति के सिद्धांत में एक अनुपम और महत्त्वपूर्ण देन है।''[1] कौटिल्य के मंडल सिद्धांत के अन्तर्गत राज्यों को चार श्रेणियों में रखा गया है। (1) शत्रु (2) मित्र (3) मध्यम और (4) उदासीन। इन राज्यों में से प्रत्येक राज्य का एक मंडल होता है, जिसमें राजा का शत्रु राज्य, राजा का मित्र राज्य और राजा का उदासीन राज्य सम्मिलित होते हैं। कौटिल्य का मंडल राज्यों का वृत्त है। (1) विजिगीषु (2) अरि (3) मित्र (4) अरिमित्र (5) मित्र-मित्र (6) अरिमित्र-मित्र (7) पार्ष्णिग्रह (8) आक्रंद (9) पर्ष्णिग्राहा (10) आक्रंदसार (11) मध्यम (12) उदासीन।

''राजा आत्मद्रव्यप्रकृति सम्पन्नो नयस्याचिष्ठानं विजिगीषुः।।[2]

तस्य समन्ततो मन्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः। तथैव भूम्येकान्तरा मिश्रप्रकृतिः।।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र वस्तुतः राजनीति का विश्वकोष है, जिसके अन्तर्गत राजनीति के विभिन्न पक्षों और पहलुओं का वर्णन अर्थशास्त्र में किया गया है। कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि राज्य की सम्पन्नता के लिए विदेशों के साथ उसका उत्तम सम्बन्ध होना नितान्त आवश्यक है। अन्य प्राचीन चिन्तकों की तरह कौटिल्य की भी यह मान्यता रही है कि विभिन्न राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के दो मुख्य आधार हैं - (1) युद्ध और (2) संधि। इन्हीं आधारों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन चिन्तकों ने षाड्गुण्य की चर्चा की है। कौटिल्य ने भी विदेशों के साथ संबंध स्थापित करने के लिए षाड्गुण्य नीति का उल्लेख किया है।

========================

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, नंदलाल सिंह कॉलेज, जैतपुर, दाउदपुर, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

कौटिल्य की विदेशनीति को षाड्गुण्य नीति कहा जाता है। षाडगुण्य नीति के अन्तर्गत कौटिल्य ने छः गुणों की चर्चा की है। (1) संधि (2) विग्रह (3) आसन (4) यान (5) संश्रय (6) द्वैधीभाव।

कौटिल्य ने अपनी षाड्गुण्य नीति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल होना संधि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, आत्मसमर्पण करना संश्रय तथा संधि, विग्रह दोनों से काम लेना ही द्वैधीभाव कहलाता है।

''तत्र पणबन्धः संधिः अपकारो विग्रहः उर्पेक्षसामासनम्, अभ्युच्चयो यानं,
परार्पण संक्षय संधि, विग्रहोपादान द्वैधीभाव इति षड्गुणः।।''[3]

आधुनिक राज्यों की तरह प्राचीन काल में भी प्रायः सभी देशों में दूत व्यवस्था थी। कौटिल्य के अनुसार दूत रूपी मुख के जरिये ही राजा परस्पर वार्ता करते हैं। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया हैं -

''इतमुखा वं राजानस्त्वं चान्ये च।''[4]

कौटिल्यीय अन्तर्राज्य सम्बन्धों की ''आधुनिक राजनीति में प्रासांगिकता'' विषय पर विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि उक्त विषयक आचार्य कौटिल्य के कुल विचार जहाँ आधुनिक राजनीति में पूरी तरह प्रासांगिक बने हुये हैं वहीं उनके कुछ विचार इक्कीसवीं सदी की आधुनिक राजनीति के लिये अप्रासांगिक भी हो चुके हैं, अतः 'नीर-क्षीर विवेकी' निष्पक्ष प्रयास के माध्यम से इसपर विचार करना अपेक्षित है।

आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित यह मत आज भी प्रासांगिक है कि किसी देश के विजिगीषु शासक को 'मन्त्रशक्ति' (ज्ञानबल), प्रभुशक्ति (कोशदण्ड बल) तथा उत्साहशक्ति (विक्रमबल) से सम्पन्न होना चाहिये। उक्त तीनों शक्तियों में भी 'मंत्रशक्ति' (ज्ञान बल) को आचार्य कौटिल्य सर्वोपरि मानते हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह मत यहाँ पर उल्लेखनीय है कि 'एक धनुर्धारी के धनुष से छोड़ा गया बाण तो संभव है किसी एक ही व्यक्ति को मारे अथवा निशाना चूकने पर संभव है वह एक भी व्यक्ति को न मारे, किन्तु एक ज्ञानशील व्यक्ति के द्वारा किया गया बुद्धि-प्रयोग तो गर्भस्थ प्राणियों को भी नष्ट कर देता है।

एकं ध्यान्न .... हन्याद गर्भगतानपि।[5]

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि एक विजगीषु शासक को साम, दाम, भेद और दण्ड इन चार उपायों के द्वारा मित्रों और शत्रुओं को वश में करना चाहिये। यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कौटिल्य ने 'दण्ड' उपाय को वरीयता क्रम में सबसे अन्त में रखा है क्योंकि इसका प्रयोग करने में पर्याप्त जन-धन की क्षति होती है। इसलिये आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि 'दण्ड' का प्रयोग करने से पहले साम, 'दाम' और 'भेद' उपायों का प्रयोग करना चाहिए। जब इन तीनों उपायों का प्रयोग करने पर भी लक्ष्य-प्राप्ति में सफलता न मिले तभी 'दण्ड' का प्रयोग केवल अन्तिम विकल्प के रूप में करना चाहिये। आज भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उक्त उपायों का भरपूर प्रयोग हो रहा है।

यद्यपि कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित मंडल सिद्धांत को वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में यथावत् लागू करना असम्भव है क्योंकि राज्यों के परस्पर सम्बन्ध परिवर्तनशील होने के कारण शत्रु या मित्र राज्यों की स्थिति को एक स्थिर रूप देना कठिन है, फिर भी

कूटनीतिक दृष्टिकोण से इस सिद्धांत का आधुनिक युग में पर्याप्त महत्त्व है।

आज दुनिया के अधिकांश राज्य शांति की बात करते हैं परंतु उनमें परस्पर सम्बन्ध प्रतिद्वन्द्विता का है। यदि कोई दो राष्ट्र शक्ति में लगभग समान हैं तो उनमें किसी न किसी बात को लेकर विवाद चलता ही रहता है। वे परस्पर घनिष्ठ मित्र कम ही होते हैं। यह एक व्यावहारिक तथ्य है, जिसे भारत-पाकिस्तान तथा इंग्लैण्ड-फ्रांस जैसे देशों के राजनीतिक इतिहास से भलीभाँति समझा जा सकता है।

मंडल सिद्धांत विभिन्न राज्यों के मध्य परस्पर गुट बनने के समान है, जिससें राज्यों का अस्तित्व अधिक सुरक्षित हो जाता है। एक दुर्बल राज्य पर हमले की स्थिति में उसके सभी मित्र राज्य उसकी सहायता करते हैं। यह एक प्रकार की सुरक्षा सन्धि पर आधारित है जिसकी तुलना हम द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका द्वारा निर्मित सैनिक संधि NATO, SEATO, CENTO और रूस के वार्सा पैक्ट से कर सकते हैं। अतः कौटिल्य के मंडल सिद्धांत को आधुनिक राज्यों हेतु संकट काल के लिए उपयोगी माना जा सकता है।

शत्रु और मित्र राज्यों के पृथक्-पृथक् गठबंधन बन जाने से शक्ति-संतुलन का सिद्धांत स्थापित होता है जिससे एक पक्ष दूसरे पक्ष पर आक्रमण करने से भय खाता है एवं युद्ध की सम्भावना कम हो जाती है।

मंडल सिद्धांत राज्यों की विदेशनीति के निर्धारण में सहायक होता है। यह निर्णय लेना आसान हो जाता है कि किन राज्यों के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखना अपने राष्ट्रीय हित के लिये जरूरी है।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट 'षाड्गुण्य सिद्धांत' आज भी प्रासांगिक है। उसके सभी छह गुणों- सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव के विवेकसम्मत प्रयोग से किसी राष्ट्र की रक्षा, सुरक्षा, उन्नति और विस्तार में अभीष्ट सफलता मिल सकती है। वर्तमान में विभिन्न राष्ट्रों के बीच आये दिन हो रहे सन्धि समझौते कौटिल्य के 'षाड्गुण्य सिद्धांत' की प्रासांगिकता को प्रमाणित कर रहे हैं।

यहाँ ध्यातव्य है कि संस्कृत वाङ्मय के एक प्रख्यात नाटक में 'कौटिल्यीय षाड्गुण्य नीति' की तुलना एक ऐसी विजयशालिनी रस्सी से की गई है जो शत्रु को वश में करने के लिए सदैव उद्यत रहती है, शत्रु को बाँधने के लिए जिसमें चारों उपायों (साम, दाम, भेद, दण्ड) से निर्मित पाशरूपी मुख (गोल फन्दा) बना हुआ है तथा जो रस्सी 'षाड्गुण्य' रूपी छह गुणों (लड़ियों) में मँजी होने के कारण अत्यधिक मजबूत है।

''षड्गुणसंयोगदृढा ...... रिपुसंयमनोद्यता जयति।''[6]

इसी नाटक के अंतिम अंक में उपलब्ध सम्राट चन्द्रगुप्त का यह कथन भी इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ''गुरूवर चाणक्य तथा महामात्य राक्षस के षाड्गुण्य चिन्तन के प्रति जागरूक रहने पर संसार में मैंने आज क्या नहीं जीत लिया है? (अर्थात् सभी कुछ तो जीत लिया है।)

''जातः किं न विजितं .... चाथें च जाग्रति।''[7]

आचार्य कौटिल्य का यह मत आज भी प्रासांगिक है कि एक विजिगीषु शासक को अपनी विदेश नीति की सफलता के लिये योग्य दूतों एवं गुप्तचरों को नियुक्त करना चाहिए। वर्तमान राजनीति में देखा जा रहा है कि जिस देश की दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था जितनी सृदृढ़ है उसकी विदेशनीति उतनी ही सफल है।

'विजिगीषु राजा को तीन प्रकार की शक्तियों - प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति से सम्पन्न होना चाहिये। कौटिल्य का यह मत आधुनिक राजनीति की इस अवधारणा के अनुकूल है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा विदेशनीति के निर्धारण में 'शक्ति' आज भी बुनियादी तत्व है। इन शक्तियों से युक्त राज्य का अस्तित्व हमेशा सुरक्षित रहता है।

वर्त्तमान में किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति का निर्धारण उसके राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। वस्तुतः राष्ट्रीय हित किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति का प्राणतत्व होते हैं। सफल विदेशनीति वही मानी जाती है जो अपने राष्ट्रीय हितों की समुचित सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने में सफल होती है।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में विजिगीषु राजा के द्वारा अपने शत्रु राजा को वश में करने के लिये जो अनेकानेक कूटनीतिक उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं उन्हें 'कूटनीति' नामक प्रथम साधन के अन्तर्गत प्रासांगिक माना जा सकता है।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के 'उपजाप' नामक अध्याय में शत्रु देश की प्रजा को तरह-तरह के कुप्रचार एवं दुष्प्रचार के द्वारा बहला-फुसलाकर शत्रु राजा के विरूद्ध करने के जो अद्भुत उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं, उन्हें 'प्रचार' नामक द्वितीय साधन के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि का तीसरा महत्वपूर्ण साधन है राजनीतिक युद्ध। राजनीतिक युद्ध एक ऐसा युद्ध है जिसका रणक्षेत्र कोई भौतिक स्थल नहीं अपितु मनुष्य का मस्तिष्क होता है।

राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि हेतु आयात-निर्यात होनेवाली वस्तुओं पर विभिन्न प्रकार के आयात-निर्यात एवं सीमाशुल्क लगाना, विभिन्न राष्ट्रों के साथ अनेक प्रकार के आर्थिक एवं व्यापारिक सन्धि-समझौते करना आदि, 'आर्थिक साधन' कहलाते हैं।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में उपर्युक्त 'आर्थिक साधनों' का भरपूर प्रयोग हुआ है जो आधुनिक काल में प्रासांगिक ही नहीं, व्यहवहार में भी विभिन्न देशों द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है।

राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि का अन्तिम साधन माना जाता है- युद्ध। प्राचीन भारत में युद्ध को अपरिहार्य माना गया। वैसे युद्ध देखने सुनने में कभी भी अच्छे नहीं लगते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है कि युद्ध सदैव बुरे और हानिकारक होते हैं। प्राचीन युग में लंका-युद्ध तथा कुरूक्षेत्र युद्ध से तथा आधुनिक युग में अमरीकी गृहयुद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध से संबंधित राष्ट्रों सहित समूचे विश्व को अनेक लाभ हुये हैं।

विश्व शांति की कामना वाले आधुनिक विश्व में भी जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान अन्य साधनों से नहीं हो पाता है तो संबंधित राष्ट्र इसी अन्तिम साधन 'युद्ध' का ही प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट पाँच प्रकार के युद्ध (1) प्रकाश युद्ध (2) कूट युद्ध (3) तूष्णी युद्ध (4) व्यायाम युद्ध तथा (5) मन्त्र युद्ध, आवश्यकतानुसार आज भी प्रासांगिक माने जा सकते हैं।

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे...... तूष्णीयुद्धस्य लक्षणम्।[8]

प्रार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु ....इत्याचार्याः।[9]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से एक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होता है कि यद्यपि कौटिल्य काल तक राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास नहीं हो सका था तथापि उसके

बीजांकुर कौटिल्य चिन्तन में प्रस्फुटित हो रहे थे। अतः कौटिल्य द्वारा उद्घाटित अन्तर्राज्य संबंध के अनेक गूढ़ तत्वों को वर्त्तमान काल में प्रासांगिक बनाकर मानवजाति के लाभ के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है एवं राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने में तथा राष्ट्रीय हित के संवर्द्धन में परमावश्यक है।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. R. K. Choudhary (1991) : Kaytilya's Political Ideas and Institutions, Varanasi, p. 305.
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र - अधिकरण 6, अध्याय 2
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र - अधिकरण 7, अध्याय 4
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र - अधिकरण 1, अध्याय 16
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र - अधिकरण 10/ 158-59.
6. मुद्राराक्षस नाटक - विशाखदत्त - 6/4
7. मुद्रांराक्षस नाटक - विशाखदत्त, 7/3
8. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, -7/111/6
9. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, - 7/117/13

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

औपनिवेशवाद के परिप्रेक्ष्य में : माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

* देवेन्द्र सिंह राणा
** हितेन्द्र सिंह

सारांश- *माधवराव सदाशिव गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघ चालक थे। 1940-1973 तक ये संघ के सरसंघचालक (सुप्रीम लीडर) रहे, इसलिए इस कार्याविधि में संघ के जितने भी कार्य हुए उनमें गोलवलकर के विचारों व कृत्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। प्रस्तुत शोध पत्र माधवराव के औपनिवेशिकवाद के परिप्रेक्ष्य में किये गये कार्य व उनका विश्लेषण है। गोलवलकर प्रखर राष्ट्रवादी व्यक्ति थे, वे औपनिवेशिकवाद के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने स्वयं व अपनी संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा औपनिवेशिक शक्तियों का प्रबल प्रतिकार किया। जब 1942 में "भारत छोड़ों आन्दोलन शुरू हुआ तो उसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं ने सक्रिय भाग लिया था। इसके अतिरिक्त चाहे भारत विभाजन हो, कश्मीर समस्या हो, दादर नागर हवेली गोवा मुक्ति आन्दोलन हो इसमें सक्रिय भूमिका अपने संगठन के माध्यम से उन्होंने अदा की थी। अंग्रेजों को भारत की शिक्षा व्यवस्था को नुकसान पहुचाना था। गोलवलकर ने शिक्षा में भारतीयकरण व उसे सुसंस्कारित करने के लिए सरस्वती शिशु मन्दिर की स्थापना की, जो आज शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। माधवरात सदाशिवराव गोलवलकर ने अपनी नीतियों में हमेशा औपनिवेशिकवाद का प्रतिरोध किया।*

मुख्य शब्द– हिन्दू संस्कृति, औपनिवेशिक, देश, एकीकरण, देशी राज्य, नरेश, भारतीय करण।

प्रस्तावना– माधवराव सदाशिवराव को श्री गुरूजी के नाम से भी जाना जाता है। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक (सुप्रीम लीडर) थे, इनका जन्म 19 फरवरी 1906 को नागपुर, महाराष्ट्र में हुआ था। वे 1940-1973 यानी 33 सालो तक संघ के सरसंघ चालक रहे तथा इन्होंने राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ को अखिल भारतीय स्वरूप दिया, 5 जून, 1973 को माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर की मृत्यु हो गयी।

माधवराव सदाशिवराव हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे। वे भारत को हिन्दू संस्कृति के केन्द्र के रूप में देखते है, उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व व पश्चात अपने जीवन प्रयत्न इस हेतु सघन प्रयास किये, वे भारत में आयी उन सभी विदेशी शक्ति के प्रबल आलोचक थे, जो भारत पर अपनी औपनिवशिक मानसिकता से थोपना चाहते थे। इस

* अतिथि शिक्षक, हे0न0ब0 केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल
** अतिथि शिक्षक, हे0न0ब0 केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल

हेतु उन्होंने स्वयं व अपने संगठन के माध्यम से अनेक आन्दोलन, कार्यक्रम, संस्थाओं का नेतृत्व किया। प्रस्तुत शोध पत्र में माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर के औपनिवेशिक वाद को भारत से उखाड़ने में किये गये प्रयासों का अध्ययन व विश्लेषण करना है। किस प्रकार से उन्होंने भारत में हुए स्वतन्त्रता से पूर्व व उसके बाद के आन्दोलनों, घटनाओं व सुधार कार्यो, संस्थाओं के नेतृत्व के अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जिससे, भारत से औपनिवेशिकवाद निशानों को मिटाया जा सके। माधवराव सदाशिवराव 1940 में संघ के सरसंघचालक का दायित्व ग्रहण किया था तब उन्होंने 1942 भारत छोड़ो आन्दोलन, भारत विभाजन व कश्मीर, दादर, नागर हवेली, गोवा के भारत में विलय के आन्दोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत के अन्दर से अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रभाव को कम करने के लिये शिशु भारती व विद्या भारती जैसी शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना व मार्गदर्शन कर भारत से अंग्रेजों की औपनिवेशिक सोच को कही न कहीं अपने प्रयास से विफल तथा कमजोर करने का कार्य किया।

उद्देश्य– इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर जी के औपनिवेशिक वाद को भारत से उखाड़ने में किये गये प्रयासों का अध्ययन व विश्लेषण करना है, जिससे कि समाज को इसकी सही जानकारी हो सके।

ब्रिटिश सरकार की गुलामी से मुक्ति आन्दोलन में भूमिका– माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर 1940 में संघ के सर्वोच्च पद का कार्यभार ग्रहण करने के बाद औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध प्रबलता से खड़े हुए उनके कार्यकाल की प्रथम महत्वपूर्ण घटना 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन था, जिसमें उन्होंने सक्रिय रूप से संघ में स्वयंसेवकों को भाग लेने के लिए निर्देशित किया था, उस आन्दोलन की अनेक घटनाओ से उसकी पुष्टि होती है। ''बयालीस की बिजली'' कहकर अरूणा आसफ अली जी का आन्दोलन की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर बड़ा गौरव और सम्मान किया गया। दिल्ली के हिन्दी दैनिक हिन्दुस्तान में अगस्त 1967 में छपी एक भेटवार्ता में वे कहती है, कि जब 1942 के आन्दोलन में वे भूमिगत थी, तब उनको दिल्ली के प्रान्त संघ चालक लाला हंसराज जी ने अपने घर में दस-पन्द्रह दिन आश्रय दिया और उनकी सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया और में उनके आवास पर हूँ किसी को पता नही चलने दिया। अन्त में भूमिगत कार्यकर्ता को इतने दिन एक ही स्थान पर नहीं रहना चाहिये, इसी दृष्टि से मैं जरीवाला घाघरा और चुनरी ओढ़कर एक बारात में भंगड़ा करते-करते वहां से निकल आई। वह वेश लाला हंसराज जी की धर्मपत्नी ने मुझे दिया था। जब मैं जरीवाल घाघरा लौटाने गई तो उन्होंने इसे वापस लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि यह हमारी ओर से शुभकामनाओं के साथ दिया उपहार समझो।[1]

आर0एस0एस0 एण्ड फ्रीडम मूवमेंट सुरूचि प्रकाशन दिल्ली ने एक अंग्रेजी पुस्तिका जिसमें लेखक श्री चितरंजन है, वह बताती है कि ''सुविख्यात वेदमूर्ति पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जब आंध्र के संघचालक थे, तब उन्होंने 'पत्री सहकार' प्रयोग के जनक क्रान्तिवीर भूमिगत नाना पाटिल को कई दिनों तक अपने घर में आश्रय दिया, श्री नाना पाटील के सहयोगी श्री किसनवीर भूमिगत रहकर कार्य करते समय सतारा जिले में वाई नामक स्थान पर वहां के संघचालक जी दन्तोपंथ गोखले के यहां रहे थे। सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता जी अच्युतराव पटवर्धन भूमिगत कार्य की आवश्यकतानुसार अपना

मुकाम बदलते हुए भी अनेक संघ स्वयंसेवकों के घरों में ही रहे थे, यही नहीं संघ से आजीवन उग्र द्वेष रखने वाले गांधीवादी साने गुरूजी भी पुणे संघचालक जी भाऊसाहब देशमुख के घर में गुप्त रूप से रहे थे।[2]

सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में मैं स्वयं सहभागी हुआ था, सोलापुर कांग्रेस समिति में एक प्रमुख कार्यकर्त्ता 12 दिसम्बर 1948 को प्रकाशित अपने निवेदन में कहते हैं, उन दिनों पूंजीपति और किसान वर्ग सरकार से डरा हुआ था, इसलिए हमें उनमें घरों में कभी आश्रय नहीं मिलता था, हमें संघ कार्यकर्त्ताओं के घरों में आश्रय लेते हुए ही भूमिगत कार्य करना पड़ता था, संघ में लोग अत्यन्त हर्ष से भूमिगत रहने में हमारी सहायता करते थे। हमारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करते थे। यही नहीं हममें से कोई बीमार पड़ जाता तो संघ स्वयंसेवक डाक्टर लोग हमारा इलाज भी किया करते थे, जो संघ स्वयंसेवक वकील थी, वे निडर होकर हमारे लिए कानूनी लड़ाई लड़ते थे। इन लोगों की देशभक्ति और मूल्याधिष्ठित जीवन निष्ठा निर्विवाद था।[3]

भारत विभाजन का प्रतिकार– 3 जून 1947 को कांग्रेस के नेताओं ने अचानक ही विभाजन का अप्रत्याशित निर्णय के लिए मान गये, इससे हिन्दू जन व उनसे अधिक स्वयंसेवक स्तब्ध रह गये। अंग्रेज भली भांति संघ का उद्देश्य जानते थे। उस समय के गुप्तचर विभाग के रिकार्ड में गोलवलकर को एक घाघ नेता बताया गया था। नयी दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में उनकी जो रिपोर्ट रखी है, उसमें संघ प्रशिक्षण शिविर में गोलवलकर के एक भाषण का उल्लेख करते हुए कहा गया है- ''गोलवलकर ने उन व्यक्तियों की भर्त्सना की जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए वर्तमान अंग्रेज सरकार की हर सम्भव सहायता करते हैं, उन्होंने घोषणा की संघ ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहने का संकल्प लिया है। भले ही समूचा संसार उससे विमुख क्यों न हो जाये। उन्होंने स्वयसेवकों से आग्रह किया कि वे भारत माता के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए सन्नद्ध रहे।

अंग्रेजों ने उस समय की परिस्थितियों का सही आंकलन हो गया था तथा समय उनमें अनुभूत नहीं था, आजाद हिन्द फौज पर चलाये गये मुकदमों ने सुभाष चन्द्र बोस की विप्लवकारी स्मृतियां पुर्नजीवित कर दी थी। नौ सैनिक की चिंगगारियां उड़कर सुदूरवर्ती छावनियों तक पहुंच गयी थी। उनको वायु सैनिकों तथा स्थल सैनिकों का समर्थन था, इस कारण ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने शीघ्रता से भारत छोड़ने की घोषणा कर दी। उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश जून 1948 के अन्त तक भारत छोड़ देंगे, विभाजन को अन्तिम रूप देने के लिए अन्तिम वाइसराय माउण्ट वेटन ने 15 अगस्त 1947 की तारीख निश्चित की जो पूरे दस मास पूर्व की थी, उनका उद्देश्य था, इससे पूर्व देश में विभाजन के विरूद्ध वास्तव में कोई प्रभावी प्रतिरोध खड़ा हो सके, समस्या का झटपट निपटारा कर डाला जाये।

एक अधिक निर्णायक शक्ति प्रतिशोध में योगदान कर सकती थी, स्पष्टतः वह थी संघ के नेतृत्व से बढ़ती हिन्दू शक्ति, अंग्रेज स्पष्ट रूप से जानते थे कि संघ अखण्ड भारत की पूर्ण स्वाधीनता से प्रतिबद्ध है। उन्हें यह भी मालूम था कि गोलवलकर अपने देशव्यापी दौरों में अखण्ड भारत के प्रेरक दृष्टिकोण का आह्वान कर रहे थे, उन्होंने कहा था, ''देश की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए कोई भी त्याग बहुत बड़ा नहीं है। उन्हें पूरे

देश में इस विषय पर अपार समर्थन मिल रहा था।[4]

भारत के एकीकरण में योगदान– स्वातंत्रोपरान्त भारत के नवनिर्माण के समय औपनिवेशिक भारत के द्वारा विविध समस्याओं का हल ढूंढना भी आवश्यक था। कश्मीर विलय भी उन समस्याओं में प्रमुख थी, 3 जून 1947 की घोषणा में अविभक्त भारत के देशी राज्यों के सभी नरेशों को यह छूट दी गयी थी, कि वे चाहे तो भारत में शामिल हो या चाहे पाकिस्तान में या फिर स्वतंत्र रहे। किन्तु जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरिसिंह गम्भीर दुविधा में पड़ गये, वे देशभक्त धर्मपरायण हिन्दू थे। पाकिस्तान में शामिल होने की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। राज्य में स्पष्ट मुस्लिम बहुमत था, उसे देखते हुए वे सीधे भारत में शामिल होने में भी हिचक रहे थे। जून के तीसरे सप्ताह में माउण्टवेटन विमान द्वारा विशेष रूप से कश्मीर गये और प्रयास किया कि महाराजा को पाकिस्तान में शामिल होने के लिए राजी कर ले, किन्तु महाराजा दबाव में नही आये और उन्होंने अस्थायी व्यवस्था के रूप में पाकिस्तान से यथास्थिति का समझौता कर लिया। भारत से भी वह ऐसा ही सम्बन्ध रखना चाहते थे, पर भारतीय नेता उस प्रस्ताव पर सहमत नही हो रहे थे। उधर राज्य के भीतर मुस्लिम क्रान्फेंस महाराजा पर दबाव डालने लगी कि वे पाकिस्तान का वरण कर ले, किन्तु कश्मीर में तत्कालीन प्रधानमंत्री आर0सी0 काक ने उन्हें स्वतन्त्र रहने का परामर्श दिया।

केन्द्र में भी राजनीतिक स्तर पर संघ ने माह अक्टूबर के निर्णायक काल में कतिपय प्रयास किये, सरदार पटेल महाराजा के मन की बात जानते थे। अतः उन्होंने भी गोलवलकर को उनसे वार्ता करने के लिए भेजा, उन्हें पता था कि गोलवलकर महाराजा के परम विश्वासपत्र थे। 17 अक्टूबर 1947 को जी गोलवलकर विमान द्वारा श्रीनगर पहुंचे, उन्होंने महाराजा को समझा दिया कि कश्मीर को स्वतन्त्र राज्य बनाये रखने का विचार निरर्थक था। उन्होंने महाराजा को सीधे भारत में शामिल हो जाने का परामर्श दिया। अन्ततः महाराजा भारत में विलय के पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए सहमत हो गये। 19 अक्टूबर को गोलवलकर नयी दिल्ली लौट गये और उन्होंने सरदार पटेल को सूचित किया कि महाराजा भारत में विलय के लिए तैयार हो गये हैं।

इसके बाद तो आनन-फानन कई घटनाएं घटी 23 अक्टूबर को पाकिस्तानी कबाइलियों ने कश्मीर पर भारी आक्रमण कर दिया, महाराजा ने दिल्ली को संकट संदेश भेजकर तुरन्त सहायता की गुहार की। महाराजा राज्य का विलय भारत में करने के लिए सहमत हुए और कश्मीर की रक्षा के लिए विमान द्वारा भारतीय सैनिक भेजे गये।[5]

पुर्तगाली औपनिवेशों की मुक्ति आन्दोलन में भूमिका– प्रमुख औपनिवेशिक शक्ति अंग्रेजों के जाने मे बाद भी भारत में दादर और नागर हवेली व गोवा विदेशी शक्तियों के उपनिवेश बने हुए थे। गोलवलकर की इच्छा के अनुसार दिनांक 2 अगस्त 1954 को एक -सौ स्वयं सेवकों ने दादर और नागर ह्वेली की पुर्तगाली वस्तियों पर अचानक आक्रमण कर दिया। इसका नेतृत्व पुणे के संघचालक स्वर्गीय विनायक राव आपटे कर रहे थे। अनेक प्रमुख संघ कार्यकर्ताओं ने इस कार्य में भाग लिया, उन्होंने गुरिल्ला रणनीति अपनाई और सेल्वासा के पुलिस मुख्यालय पर आक्रमण करके वहां के 175 सैनिकों को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। वहां राष्ट्रीय तिरंगा फहराकर उसी दिन वह प्रदेश केन्द्रीय सरकार को सौंप दिया गया। दिनांक 2 अगस्त

1979 को जब इस ऐतिहासिक घटना की रजत जयन्ती मनायी गयी तो सेल्वास की जनता ने 100 स्वतन्त्रता सेनानियों को आमन्त्रित करके उनका अभिनन्दन किया। सन् 1987 में महाराष्ट्र प्रदेश सरकार ने भी उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में मान्यता दी और सम्मान प्रदान किया।[6]

अंग्रेजों के सन् 1947 में भारत छोड़ने के पश्चात् भी पुर्तगाली शासन गोवा में डटे हुए थे, गोवा की पुर्तगालियों के शिंकजे से मुक्त करवाने हेतु पुणे में 'गोवा विमोचन समिति' की स्थापना की गई, केन्द्रीय शासन से आवश्यक अनुरोध करने के उपरान्त 1955 में 'गोवा मुक्ति' आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। जिसमें स्वयंसेवकों ने भाग लिया। राजाभाऊ महंगात नाम का एक स्वयंसेवक पुर्तगालियों द्वारा दागी गोलियों से शहीद हो गया। निर्मम अत्याचारों के बावजूद भी सत्याग्रह चलता रहा। पुर्तगालियों के उपनिवेश के विरोध के स्थान पर भारत सरकार ने सत्याग्रहियों पर ही बन्धन लगाने प्रारम्भ किए, आन्दोलन एवं सरकारी नीति का सूक्ष्मता से अवलोकन कर रहे गोलवलकर ने दि0 20. 08.1955 को मुम्बई से प्रकाशित अपने वक्तव्य में कहा- गोवा में पुलिस कार्यवाही करने और गोवा को मुक्त कराने का इससे ज्यादा अच्छा अवसर कोई नहीं आएगा। इससे हमारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी तथा आस-पास के जो राष्ट्र सदा हमें धमकाते रहते हैं। उन्हें भी पाठ मिल जाएगा। भारत सरकार ने गोवा मुक्ति आन्दोलन का साथ न देने की घोषणा कर मुक्ति-आन्दोलन की पीठ में छुरा मारा है। भारत सरकार को चाहिये कि भारतीय नागरिकों पर हुई इस गोलीबारी का प्रत्युत्तर दे और मातृभूमि का जो भाग अभी तक विदेशियों की दासता में जकड़ा हुआ है, उसे अविलम्ब मुक्त करने के उपाय करें, झूठी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का विचार हृदय से निकालकर कदम आगे बढ़ाना चाहिए। मुम्बई में पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर जो गोली चलाई वह वीरता गोवा की सीमा पर दिखायी जाती तो आठ दिनों में पुर्तगाली गोवा से भाग खड़े होते। घर के लोगों पर ही गोली चलाने में कोई वीरता नही है, प्रदर्शनकारियों को चाहिये कि वे हड़ताल और प्रदर्शन के समय किसी भी अवस्था में शान्ति भंग न होने दे। गोलवलकर गोवा के प्रश्न को विशुद्ध राष्ट्रीय प्रश्न मानते थे वे कहते थे कि यदि पं0 नेहरू स्वयं तिरंगा ध्वज हाथ में लेकर गोवा मुक्ति आन्दोलन का नेतृत्व करते हैं, तो अपेक्षित संख्या में स्वयंसेवकों को सत्याग्रह में भेजने की उनकी तैयारी है। गोवा के बारे में भी ऐसी योजना चल रही थी कि सन् 1962 में सरकार ने ही फौजी कार्यवाही करके गोवा को मुक्त करा लिया, भले ही यह कार्यवाही देर से की गई तो भी देश ने तथा गोलवलकर ने इसका स्वागत किया।[7]

शिक्षा के भारतीयकरण में भूमिका- अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में सर्वप्रथम जो कार्य किया वह था भारतीय शिक्षा के फलते-फूलते वृक्ष का जड़मूल से विनाश, उन्होंने भारत की आत्मा 'आध्यात्मिक संस्कृति' एवं जीवन रचना के स्थान पर पाश्चात्य भौतिकवादी दर्शन जीवन शैली एवं परानुकरण को शिक्षा का अधिष्ठान बना दिया। यह कार्य उन्होंने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए योजनाबद्ध ढंग से किया। दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में उसी शिक्षा प्रणाली को अपना लिया गया, इस दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली की सर्वत्र आलोचना प्रारम्भ हो गई।

भारतीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) ने बल देकर कहा था कि राष्ट्रों का निर्माण उसकी पाठशालाओं में ही होता है, परन्तु इस निर्माण का उत्तरदायित्व निष्ठावान

शिक्षकों के आदर्श आचार-व्यवहार पर निर्भर है। यह कहने का साहस वह नहीं जुटा सके, डॉ0 राधाकृष्णनन ने जब शिक्षण कार्य छोड़कर राजकीय पद स्वीकार किया था, तब आचार्य विनोवा भावे ने इस घटना को भारत के भविष्य के लिये अपशकुन माना था। उन्होंने यह भी याद दिलाया था, कि स्वतन्त्रता संग्राम के समय लोकमान्य और महात्मा गांधी तक दासता से मुक्ति मिलने के बाद स्वयं शिक्षक बन कर देश की सेवा करने की चर्चा किया करते थे। उन्हें तो ईश्वर ने इसका अवसर नहीं प्रदान किया। परन्तु गोलवलकर ने राष्ट्र-निर्माण के इस अवसर का उपयोग बड़े उत्साह के साथ अपनी अन्तिम श्वास तक किया।[8]

अन्धकार को कोसने से अन्धकार दूर नही होता आवश्यकता होती है एक नन्हा सा दीपक जलाने की, 1952 में गोलवलकर की प्रेरणा से कुछ संघ के निष्ठावान लोग शिक्षा के पुनीत कार्य में जुटे। राष्ट्रीय निर्माण के इस कार्य में लगे लोगों ने नवोदित पीढ़ी को सुयोग्य शिक्षा और शिक्षा के साथ संस्कार देने के लिए 'सरस्वती शिशु मन्दिर' की आधार शिला गोरखपुर में रखकर किया। इससे पूर्व इसी शिक्षा पद्धति के विद्यालय नागपुर में नवयुग विद्यालय एवं कुरूक्षेत्र में गीता, विद्यालय की स्थापना 1946 में हो चुकी थी।

प्रथम शिशु मन्दिर की स्थापना के साथ ही उत्तर प्रदेश में शिशु मन्दिरों की संख्या तीव्र गति से बढ़ने लगी। सरस्वती शिशु मन्दिरों को सुशिक्षा एवं सह संस्कारों के केन्द्र के रूप में समाज में प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता प्राप्त होने लगी। उन्हीं की साधना तपस्या परिश्रम व संबल के परिणाम स्वरूप स्थान पर 'सरस्वती शिशु मन्दिर' स्थापित होने लगे। कालान्तर में सरस्वती शिशु मन्दिरों में जुड़े हुए अभिभावकों एवं शिक्षा प्रेमियों द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा कि अपने इस अभिनव संस्कार के प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र के प्रयोग की कक्षा पंचम से आगे बढ़ाया जाय। कक्षा पंचम से आगे कक्षा षष्ठ से द्वादश तक के लिए प्रारम्भ किया गया सरस्वती विद्या मन्दिर।

इनके मार्गदर्शन एवं समुचित विकास के लिए 1958 में 'शिशु शिक्षा प्रबन्ध समिति' नाम से प्रदेश समिति का गठन किया गया। अन्य प्रदेशों में भी जब विद्यालयों की संख्या बढ़ने लगी तो उन प्रदेशों में भी प्रदेश समितियों का गठन हुआ। पंजाब एवं चड़ीगढ़ में सर्वहितकारी शिक्षा समिति हरियाणा में हिन्दू शिक्षा समिति बनी, इसी प्रयन्त 1977 में अखिल भारतीय स्वरूप लिया और विद्या भारती संस्था का प्रादुर्भाव दिल्ली में हुआ। इसके बाद सभी प्रदेश समितियां विद्या भारती से सम्बद्ध हो गई।[9]

आज लक्ष्यद्वीप और मिजोरम को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में 86 प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय समितियां विद्या भारती से संलग्न है। विद्या भारती के अन्तर्गत 30000 शिक्षण संस्थान संचालित होते है। इनमें शिक्षक संस्थाओं में 147634 शिक्षकों के मार्गदर्शन में 34 लाख छात्र-छात्राएं शिक्षा एवं संस्कार ग्रहण कर रहे हैं। इनमें से 49 शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान एवं 5312 प्राथमिक माध्यमिक एवं 923 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, 633 पूर्व प्राथमिक एवं 5312 प्राथमिक,4164 उच्च प्राथमिक एवं 6127 एकल शिक्षक विद्यालय तथा 3679 संस्कार केन्द्र है। आज नगरों और ग्रामों में वनवासी और पर्वतीय क्षेत्रों में झुग्गी-झोपडियों में शिशु वाटिकाएं, शिशु मन्दिर, विद्या मन्दिर, सरस्वती मन्दिरों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

इसके फलस्वरूप शिक्षा के हर क्षेत्र में प्रभाव बढ़ा है आज विद्या भारती ने सबसे बड़े गैर सरकारी शिक्षा संगठन बन गया है। विद्या भारती ने आरम्भ से ही अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु तीन लक्ष्य निर्धारित किये थे-

1. भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण देश में एक सामाजिक दृष्टि से सभी वर्गो में कार्य का विस्तार।
2. विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास की दृष्टि से शैक्षिक गुणवत्ता को उत्कृष्टता की ओर ले जाना।
3. विद्यालयों को सामाजिक चेतना जागरण के केन्द्रों के रूप में विकसित करना।

आज इन तीनों लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से सफलता का विचार करते हैं तो संतोष होता है। आज केवल लक्ष्यद्वीप को छोड़कर देश में सभी प्रदेशों में विद्या भारती के विद्यालयों का जाल फैला हुआ है। सामाजिक दृष्टि से भी नगरों, ग्रामों, जनजातियों (वनवासियों), झुग्गी-झोपड़ियां, गिरि-कन्दराओं में निवास करने वाले समाज के सभी वर्गो के बीच विद्यालय शिक्षा का प्रसार कर रहे हैं। शैक्षिक गुणवत्ता एवं संस्कार पक्ष की दृष्टि से भी विद्या भारती के विद्यालय सबसे आगे है। परिवारों एवं समाज में हिन्दुत्व एवं राष्ट्रीय चेतना के सजग प्रहरी के रूप में इन विद्यालयों को जाना जाता है।[10]

हमारे समाज- जीवन में संस्कार का विशेष महत्व है गीता विद्यालय (हरियाणा) की रजत जयन्ती के अवसर पर अपने सम्बोधन में गोलवलकर कहते है। ''वास्तव में शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा मनुष्य उत्तरोतर अपनी उन्नति करता हुआ जीवन के सर्वेश्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि मनुष्य में अनेक प्रकार के सदगुण हो, संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए गोलवलकर कहते है, कि ये सदगुण सहसा नही आयेगे। इनके लिए प्रयत्न करना होगा। इसीलिए इन गुणों के संस्कार बचपन से ही अपने जीवन में संचित करते रहने की आवश्यकता रहती है। इन सदगुणों का उल्लेख कई बार हमारे समाज जीवन में होता रहता है। सच्चाई से रहना किसी के बारे में अपने अन्तःकरण में द्वेष की घृणा की भावना न रखना, कार्या, वाचा, मनसा, पवित्र रहना, काम-कांचन के सब प्रकार के व्यामोह से दूर रहना, अपने-आप को पूरी तरह काबू में रखना। इस प्रकार अन्तःकरण को विशाल बनाना कि पूरा विश्व ही मेरा परिवार है। इस विशाल मानव-समाज की सेवा में स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर देना। इस समर्पण में भी कोई स्वार्थ मन में न आने देना आदि संस्कार बहुत आवश्यक है। गोलवलकर ने जिन विषयों को वैचारिक आधार प्रदान किया राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने उन विचारों को संगठित और संस्थागत स्वरूप दिया।[11]

उपसंहार- माधवराव सदाशिव राव के औपनिवेशिकवाद के विश्लेषण से ध्यान आता है कि वे विदेशी मानसिकता के प्रबल विरोधी थे। वे भारत के औपनिवेशिक शक्तियों की मानसिकता को समझते थे तथा उसके प्रभाव से देश की रक्षा के लिए एक सबल शक्ति के रूप में खड़े रहते थे। 1942 आन्दोलन के समय माधवराव ने स्वयंसेवकों को प्रेरणा दे कर इस आन्दोलन में उनकी सक्रिय भूमिका तय की थी। इसका वर्णन कई आन्दोलनकारियों ने किया है। 'बयालीस की बिजली' के नाम से जानी जाने वाली अरूणा आफस अली ने आन्दोलन की स्वर्णजयन्ती के अवसर गौरव व सम्मान प्राप्त किया और दिल्ली के हिन्दी दैनिक हिन्दुस्तान के अगस्त 1967 में छपी एक भेटवार्ता मे कहती है 'कि

जब 1942 के आन्दोलन में भूमिगत थे तब दिल्ली के प्रान्त संघ चालक लाला हंसराज जी ने अपने घर में उसे दस-पन्द्रह दिन आश्रय दिया। आर0एस0एस0 एण्ड फ्रीडम मूवमेन्ट सुरूचि प्रकाशन दिल्ली ने एक अंग्रेजी पुस्तक जिसके लेखक श्री चितंरजन है, वह बताती है- सुविख्यात वेदमूर्ति पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जब आन्ध्र के संघचालक थे तब उन्होंने पत्री सहकार प्रयोग' के जनम क्रान्तिवीर भूमिगत नाना पाटिल को कई दिनो तक अपने घर में आश्रय दिया। श्री नाना पाटिल के सहयोगी जी किसनवीर भूमिगत रहकर कार्य करते समय सतारा जिले के वाई नामक स्थान पर वहां के संघचालक जी दन्तोपन्थ गोखले के यहां रहे थे। सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता जी अच्युतराव पटवर्धन भूमिगत कार्य की आवश्यकता अनुसार अपना मुकाम बदलते हुए भी अनेक संघ स्वयंसेवकों के घरों में ही रहे थे। यह नहीं संघ से आजीवन उग्र द्वेष रखने वाले गांधीवादी साने गुरूजी भी पुणे संघचालक श्री भाउसाहब देशमुख के घर में गुप्त रूप से रहे थे। सोलापुर कांग्रेस समिति में एक प्रमख कार्यकर्ता 12 दिसम्बर 1948 को प्रकाशित अपने निवेदन में कहते है कि वे 1942 के आन्दोलन के स्वयं सहभागी था, उस समय किसान व पूंजीपति वर्ग सरकार से डरा था, इसलिए उनके घरों में हमें आश्रय नही मिलता था। हमें संघ कार्यकर्ताओं के घरों के आश्रय लेना पड़ता था। संघ के लोग भूमिगत होने में हमारी सहायता करते थे और हमारी जरूरी आवश्यकतायें पूर्ण करते थे। संघ के जो चिकित्सक होते थे वे बीमारी में हमारी चिकित्सा करते जो संघ स्वयंसेवक वकील थे वे निडर होकर हमारी पैरवी करते थे, इन लोगों के देशभक्ति और मूल्याधिष्ठित जीवन निष्ठा निर्विवाद था।

3 जून 1947 को कांग्रेस के नेताओं ने अचानक ही विभाजन का अप्रत्याशित निर्णय के लिए मान गये। संघ इसके खिलाफ था, वह अंग्रेजों की इस मानसिकता को भलीभांति जानता थे, गोलवलकर ने उन व्यक्तियों की भर्त्सना की जो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए वर्तमान अंग्रेजों की सरकार की हर सम्भव सहायता करते हैं। उस समय के गुप्तचर रिपोर्ट में गोलवलकर को एक घाघ नेता बताया गया था। नयी दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में उनकी जो रिपोर्ट रखी है। अंग्रेज स्पष्ट रूप से जानते थे कि संघ अखण्ड भारत की पूर्ण स्वाधीनता से प्रतिबद्ध है। उन्हें वह भी मालूम था कि गोलवलकर अपने देशव्यापी दौरों में अखण्ड भारत के प्रेरक दृष्टिकोण का आह्वान कर रहे थे। उन्होंने कहा था देश की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए कोई भी त्याग बहुत बड़ा नही है उन्हें पूरे देश में इस विषय पर अपार समर्थन मिल रहा था।

स्वातंत्रोपरान्त भारत के निर्माण के समय औपनिवेशिक भारत के द्वारा उत्पन्न विविध समस्याओं का हल ढूंढना भी आवश्यक था, इसमें अंग्रेजों द्वारा भारत के विघटन की जो नीति पाकिस्तान में शुरू हुई थी। वह अंग्रेजों की औपनिवेशिकवादी सोच फूट-डालो राज करो, को अपनाते हुए भारत के एकीकरण में कई विभाजन के बीज बो दिये थे। सरदार पटेल द्वारा देशी रिसायतों को भारत में विलय किया जा रहा था। इसी हेतु उन्होंने माधवराव सदाशिवराव को कश्मीर में महाराजा हरिसिह से वार्ता करने को भेजा था, जिसमें गोवलवलकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 17 अक्टूबर 1947 को श्री गोलवलकर विमान द्वारा श्रीनगर पहुचे व महाराजा को समझा दिया कि कश्मीर को स्वतंत्र राज्य बनाये रखने का विचार निरर्थक है। उन्होंने महाराजा को सीधे भारत में शामिल हो जाने का परामर्श दिया। अन्ततः महाराजा भारत में विलय के पत्र पर हस्ताक्षर के लिए

सहमत हो गये। प्रमुख औपनिवेशिक शक्ति अंग्रेजों में जाने के बाद भी भारत पुर्तगाली शासक दादर और नागर हवेली व गोवा को अपना उपनिवेश बनाये हुए थे। गोलवलकर की इच्छा के अनुसार स्वंयसेवकों ने इनमें आजादी के लिए सक्रिय आन्दोलन किया। 2 अगस्त 1954 को नागर हवेली व दादर स्वतन्त्र किया व 1955 में 'गोवा मुक्ति' आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिससे 1962 में सरकार ने फौजी कार्यवाही से गोवा को मुक्त किया।

अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में सर्वप्रथम जो कार्य किया वह था भारतीय शिक्षा में फलते-फूलते वृक्ष का जड़मूल विनाश उन्होंने भारत की आत्मा 'आध्यामित्य संस्कृति' एवं जीवन रचना के स्थान पर पश्चात्य भौतिकवादी दर्शन, जीवन शैली एवं परानुकरण को शिक्षा का अधिष्ठान बना दिया, यह कार्य उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये योजनाबद्ध ढंग से किया, दुर्भाग्यवंश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने उसी शिक्षा प्रणाली को अपना लिया था। इस दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली की सर्वत्र आलोचना प्रारम्भ हो गई। अन्धकार को कोसने से अन्धकार दूर नही होता आवश्यकता होती है एक नन्हा सा दीपक जलाने की 1952 में गोलवलकर की प्रेरणा से कुछ संघ के निष्ठावान लोग शिक्षा के पुनीत कार्य में जुट गये। सरस्वती शिशु मन्दिर, की आधार शिला गोरखपुर में रखकर शिक्षा के क्षेत्र में औपनिवेशिक शिक्षा के विरूद्ध मजबूत विकल्प दिया। आज शिक्षा के क्षेत्र में शिशु मन्दिर, विद्यामन्दिर भारतीयों को सुसंस्कारित कर रहे हैं।

माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने औपनिवेशिक मानसिकता के साथ किये कार्य का अपने जीवन भर प्रबल विरोध किया तथा उसके दुष्परिणामों से भारत व भारत की जनता की रक्षा के प्रबल प्रयास किये। वे देश के संस्कृति राष्ट्रवाद व एकता, के प्रबल समर्थक थे।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. राष्ट्रीय नमः मो ग. तपस्वी प्रकात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 85-89
2. वही- पृष्ठ 86
3. वही- पृष्ठ 86-87
4. कृतिरूप संघ दर्शन- हो0वे0 शोषाद्रि- सुरूचि प्रकाशन, केशव कुंज, नयी दिल्ली, पृ0 21-22
5. वही - पृष्ठ 23-24
6. वही- पृष्ठ- 26
7. जी गुरूजी समग्रदर्शन खण्ड-3, भारतीय विन्दार साधना नागपुर, पृ0 -136
8. http://www.golwalkarguruji.org/hindi/thoughts/
9. http://panchjunya.com/arch/2002/7/21/filell.htm
10. वही
11. जी गुरूजी व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सुरूचि प्रकाशन नई दिल्ली, डॉ0 कृष्ण कुमार बवेजा, पृ0 132-133

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का विवेचनात्मक अध्ययन

* संयोगिता दुबे

सारांश– *समाज में साधारण साम्पत्तिक विवादों एवं साहस (फौजदारी) सम्बन्धी विवादों का निर्णय स्थानीय स्तर पर हो जाता था। विवादों के निबटारे के लिए पहले कौटिल्य कालीन भारत में एक परिष्कृत व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी जो समसामयिक एवं वर्तमान संदर्भो में भी सर्वथा उपयुक्त पाई जाती हैं। आचार्य कौटिल्य ने राजा को सर्वोच्च न्यायालय के रूप में मान्यता प्रदान की है। किसी भी राज्य के न्यायालय वहॉं के कानूनों पर आश्रित होते हैं। प्रतिवादी किस प्रकार अपने ऊपर लगाये गये अभियोगों का प्रतिकार करें, इसके लिए भी समाज में विस्तृत नियम प्रचलित थे। अभियोक्ता का स्पष्ट अभियोग न्यायाधिकरण में नहीं चल सकता था। इसके लिए उसे अभियुक्त को देश, जाति, ग्राम, गोत्र, नाम और व्यवसाय आदि का स्पष्ट उल्लेख करना पड़ता था और यह भी कि जब ऋण आदि लिया गया था, कौन–सा महीना एवं ऋतु थी और पक्ष, दिन, स्थान तथा साक्षी आदि कौन थे। पहले अभियोग से ही ये सब विवरण देने पड़ते थे। विशेष परिस्थितियों में ही अभियोग पत्रों में सशोधन करने की सुविधा अभियोक्ता को मिलती थी। इस विस्तृत विवरण से न्यायाधिकरण को विवाद का वास्तविक रुप समझने में सुविधा होती थी। प्रस्तुत अध्ययन में कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का विवेचनात्मक अध्ययन करने का शोधार्थी द्वारा अनन्तिम प्रयास किया गया है।*

मुख्य शब्द: न्यायाधिकरण, न्याय व्यवस्था, राज्य, दण्ड नीति, व्यवहार, धर्मशास्त्र, मध्यस्थ सिद्धान्त

कौटिल्य भारतीय इतिहास में ये पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत के सर्वांगीण विकास हेतु सफल प्रयास किया। इनकी असाधारण कृति 'अर्थशास्त्र' संस्कृत वाङ्मय में अपनी तरह की अनूठी एवं समाज की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धरोहर है। सच तो यह है कि आचार्य कौटिल्य का माहात्म्य पुराण, काव्य, नाटक, कोश आदि सर्वत्र व्याप्त है। कौटिल्य के अनुसार मनुष्य का परम कर्तव्य स्वधर्म-पालन है। स्वधर्म-पालन मनुष्य को इस लोक में सुख और परलोक में अनन्त आनन्द की प्राप्ति कराता है। परन्तु स्वधर्म पालन की योजना को कार्यान्वित करने के लिए न्याय-व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता होती है।

न्याय-कार्य को कौटिल्य ने दो क्षेत्रों में विभाजित किया है। मनुष्य-जीवन का वह अंश, जिसमें नागरिकों का पारस्परिक सम्पर्क होता है, उसके द्वारा उनके मध्य होने वाले कलह के मूल कारणों को खोजकर उनकी विवेचना करना और इस विवेचना के आधार

* थाणे, मुम्बई।

पर दोषी के दोष के अनुसार दण्ड देना तथा निर्दोषी को उसके अधिकार दिलाने की व्यवस्था करना, प्रथम क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। न्याय-कार्य के इस क्षेत्र को कौटिल्य ने 'व्यवहार' की संज्ञा दी है। मनुष्य-जीवन का दूसरा अंश वह है जिसमें उसका सम्पर्क राज्य के कर्मचारियों, व्यापारियों एवं व्यवसायियों तथा कतिपय कोटि के दुष्ट पुरुषों से होता है। न्याय-व्यवस्था के इस क्षेत्र को कौटिल्य ने 'कण्टकशोधन' नाम से सम्बोधित किया है।

तत्कालीन समय में कानून बहुत उलझे हुए नहीं थे और न्यायाधिकरण आमतौर पर जटिलताओं में न फँसकर प्राकृतिक न्याय की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते थे। वह समझा जाता था कि जिस बात में चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र से विरोध हो, वहाँ लोकाचार के मुकाबले धर्मशास्त्र को ही प्रमाण माना जाता था। परन्तु यदि कहीं धर्मशास्त्र एवं राजाज्ञा में विरोध होता था, तो न्यायाधिकरण राजाज्ञा का अनुसरण करते थे।

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम्।
यस्मिन्नर्थ विरुध्येत धर्मेणार्थ विनिर्णयेत।
शास्त्रं विप्रतिपद्येत् धर्मन्यापेन के चित।।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात् तत्र पाठो हिन्श्यति।।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत अध्ययन के लिए ऐतिहासिक पद्धति का उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक शोध पद्धति यह निरुपित करने में सक्षम है कि अतीत में किसी परिस्थिति के क्या परिणाम हुए तथा किसी विशेष परिस्थिति ने सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं को किस प्रकार प्रभावित किया। तात्पर्य यह है कि वर्तमान अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो की तुलना अतीत के परिणामों से करने पर हम किसी स्थिति की वास्तविकता को सरलता से समझ सकते हैं। ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति हमें निर्देशित करती है कि 'अतीत केवल अतीत नहीं है बल्कि वर्तमान को समझने की कुंजी भी है।' ऐतिहासिक विश्लेषण के पश्चात प्राप्त लक्ष्यों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता को भी देखने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण पर आधारित है।

न्यायालय-

राज्य के छोटे और बड़े विभिन्न नगरों में धर्मस्थ और अमात्ययुक्त न्यायालयों की स्थापना हेतु कौटिल्य ने व्यवस्था दी है तथा न्याय-क्षेत्र में कौटिल्य ने मध्यस्थ-सिद्धान्त को मान्यता दी है।[1]

विवाद से सम्बन्धित दोनों दल अथवा व्यक्ति किसी व्यक्ति को मध्यस्थ बनाकर उससे विवादग्रस्त विषय पर निर्णय करा लें, यह निर्णय मान्य समझा जायेगा। मध्यस्थ द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम निर्णय समझना चाहिए। उनका मत है कि ग्रन्थों में न्यायकार्य-सम्पादन ग्राम वृद्धों एवं ग्राम-सामन्तों द्वारा होना चाहिए।[2]

प्राप्त-व्यवहार-

कितनी अवस्था प्राप्त कर लेने के उपरान्त मनुष्य व्यवहार योग्य समझा जाना चाहिए, इस विषय पर भी कौटिल्य ने अपना मत प्रकट किया है। उनकी ऐसी धारणा जान पड़ती है कि पुरुष की अपेक्षा नारी में समझ पहले आ जाती है, इसीलिए उन्होंने नारी जाति के लिए पुरुष की अपेक्षा कम आयु प्राप्त व्यवहार हेतु निर्धारित किया है। कौटिल्य के

मतानुसार बारह वर्ष की स्त्री और सोलह वर्ष का पुरुष प्राप्त व्यवहार माने गये हैं। बाहर वर्ष की उम्र से अधिक स्त्री और सोलह वर्ष से अधिक अवस्था वाला पुरुष, अपराध करने पर दण्ड के भागी समझे जायेंगे।[3]

कण्टकशोधन–

कण्टकशोधन से कौटिल्य का तात्पर्य उस व्यवस्था की स्थापना से है जिसके द्वारा राज्य के व्यवसायियों, राज कर्मचारियों एवं दुष्ट जनों से प्रजा की रक्षा हो सके। इस प्रकार कण्टकशोधन का क्षेत्राधिकार विशाल है।

राज्य के अनेक व्यवसाय होते हैं। यदि उन पर नियंत्रण न रखा जाय तो वह प्रजा का शोषण एवं पीड़न करने लगते हैं। कम तौलना, बिक्री के माल में मिलावट करना, बढ़िया माल के स्थान पर घटिया वस्तु देना, निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य लेना, कच्चे माल पर जितना पक्का माल तैयार हो, उससे कम देना आदि के द्वारा ये व्यवसायी भोली प्रजा को ठग कर उनका शोषण एवं उत्पीड़न करते रहते हैं। इन व्यवसायियों में जो ठग होते हैं, उनसे प्रजा की रक्षा हेतु कौटिल्य उन पर नियंत्रण रखना उचित समझते हैं। इस प्रकार इन व्यवसायियों के दाँव-पेंच से प्रजा की रक्षा की व्यवस्था की है।[4] बढ़िया माल में घटिया माल अथवा उसी प्रकार की दूसरी कम मूल्य की वस्तु का मिश्रण कर के बेचना दण्डनीय घोषित किया गया है।[5] इस प्रकार कौटिल्य ने व्यवसायियों द्वारा किये जाने वाले शोषण एवं पीड़न से प्रजा की रक्षा के उपायों का विधान किया है।

इसी प्रकार दुष्टजनों के कारण राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा भंग होती रहती है और लोग निर्भय होकर सुख से अपना जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। ऐसे दुष्टजनों में चोर, डाकू, व्यभिचारी, वंचक, घातक आदि की गिनती की गई है। ये अपने दाँव-पेंच में फॉस कर प्रजा को निरन्तर पीड़ित करते रहते हैं। इन दुष्टजनों से प्रजा की रक्षा हेतु पुलिस, चर आदि का उपयोग करना कौटिल्य ने उचित समझा है।

कानून एवं दण्ड–

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्याय मूर्ति पी.बी. गजेन्द्रगडकर जैसे विधिवेत्ताओं ने अपनी सम्मति यहाँ तक व्यक्त की है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र जैसे महान ग्रन्थ का लगभग आधा भाग विभिन्न सिद्धान्तों, नियमों, कानूनों, विधि-विधानों तथा अध्यादेशों का सार-संग्रह है। उन्होंने इसे 'दण्डनीति' का संक्षिप्त विधान कहा है।[6]

आचार्य कौटिन्य ने कानून के धर्म, व्यवहार (साक्ष्य) चरित्र (परम्परा) तथा राजाज्ञा- ये चार स्रोत माने हैं। इनमें भी धर्म से श्रेष्ठ व्यवहार, व्यवहार से श्रेष्ठ चरित्र तथा चरित्र से श्रेष्ठ राजाज्ञा मानी गई। दण्ड का प्रयोग न करने पर मत्स्य न्याय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके अन्तर्गत बलवान निर्बल को डस जाता है। जबकि दण्ड के द्वारा रक्षित निर्बल व्यक्ति भी स्वयं को समर्थ एवं सबल समझता है।

दण्ड से कौटिल्य का तात्पर्य सेना से है। उनके अनुसार आभ्यन्तर कोप एवं बाह्य कोप दोनों के शमन हेतु राजा को सम्पूर्ण सैन्य बल अपने ही हाथ में रखना चाहिए।[7] जिसके पास अच्छा सैन्यबल होता है उसके मित्र तो मित्र ही है, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं[8]

आचार्य कौटिल्य ने अच्छी सेना के गुणों को दण्ड सम्मत की संज्ञा देते हुए वंशानुगत, स्थायी एवं वश में रहने वाले, राजवृत्ति से सन्तुष्ट स्त्री-पुत्र वाले, युद्धोंपयोगी सामग्री से युक्त, अपराजेय, दु:खों को सहन कर सकने वाले सभी प्रकार की युद्धविधाओं

में पारंगत, राजा के लाभ हानि में सहभागी तथा क्षत्रियों की अधिकता वाले सैनिकों से युक्त सेना को दण्डसम्मत कहा है।[9]

दण्ड के प्रकार– अपराधी को उसके द्वारा किये गये अपराध के अनुरुप विविध प्रकार के दण्डों का निर्धारण कौटिल्य द्वारा किया गया है। ये दण्ड मुख्य तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं-अर्थदण्ड, कायदण्ड और बन्धनागारदण्ड। अर्थदण्ड से कौटिल्य का तात्पर्य कतिपय अपराधों के लिए अपराधियों को अर्थ-दण्ड देने से है। अपराधी को शारीरिक दण्ड देना कायदण्ड कहलाता है। अपराध की गुरुता के अनुसार कायदण्ड भी विविध प्रकार के होते हैं। इनमें बेंत मारना, कोड़े लगाना, रस्सी से मारना, उल्टा लटकाना, हाथियों से कुचलवाना, कुत्तों से चिथवाकर प्राण लेना, हाथ-पैर आदि अंगों को कटवाना, शरीर के मर्मस्थलों का छेदन करवाना, नखों में सुईयाँ चुभोना, क्लेषपूर्वक शरीर के अंगों को कटवाना, शरीर के शीष पर जलते हुए अंगार रखकर प्राण लेना, जल में डुबाना, शुद्ध वध करना, शरीर की खाल निकलवाना आदि मुख्य है।[10] कौटिल्य के बन्धनगृह को 'बन्धनागार' और उसके मुख्य अधिकारी को 'बन्धनागाराध्यक्ष' नाम से सम्बोधित किया है। बन्धनागार में स्त्री और पुरुष अपराधियों के रहने के लिए पृथक-पृथक स्थान होने चाहिए। बन्दियों को कठोर अनुशासन में रखना चाहिए।

मूल अधिकार–

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषता जनता के मौलिक अधिकार है। संविधान के भाग-3 में इन अधिकारों का विषद् रुप से उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान में जितने विस्तृत और व्यापक रुप से इनका उल्लेख किया गया है उतना संसार के किसी भी लिखित संघात्मक संविधान में नहीं किया गया है। मूल अधिकारों से सम्बन्धित उपबन्धों का समावेश आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है। सभी आधुनिक संविधानों में मूल अधिकारों का उल्लेख है।

एम.नागराज बनाम भारत संघ....के मामले में उच्च न्यायालय ने मूल अधिकारों के महत्व के विषय में यह कहा है कि मूल अधिकार नागरिकों को राज्य के द्वारा दान नहीं है। भाग-3 मूल अधिकार प्रदान नहीं करता वरना इस बात की पुष्टि करता है कि उनका अस्तित्व है और उन्हें संरक्षण प्रदान करता है। किसी संविधान के बिना भी व्यक्ति को मूल अधिकार प्राप्त है। केवल इस कारण कि वे हैं।

अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में (अनुच्छेद 20)–

अनुच्छेद 20 उन व्यक्तियों को जिन पर अपराध करने का अभियोग लगाया गया है निम्नलिखित संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है- 1 कार्योत्तर विधियों से संरक्षण, 2. दोहरे दण्ड से संरक्षण 3. आत्म-अभिशेषन से संरक्षण।

प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)–

अनुच्छेद 21 यह उपबन्ध करता है कि 'किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं।' प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार सभी अधिकारों में श्रेष्ठ है और अनु. 21 इसी अधिकार को संरक्षण प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत अधोलिखित अधिकार प्रदान किये जाते हैं- 1. शिक्षा का मूल अधिकार 2. एकान्तता का अधिकार, 3. विदेश भ्रमण का अधिकार, 4. जीविकोपार्जन का अधिकार, 5. आहार पाने का अधिकार, 6.

प्रदूषणमुक्त जल एवं वायु के उपभोग का अधिकार, 7. परम्परा की धरोहर को बचाना इत्यादि।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23.24)-

अनुच्छेद 23 मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम को प्रतिसिद्ध करता है। यह अनुच्छेद यह भी कहता है कि इस उपबन्ध का कोई उल्लंघन अपराध होगा और विधि के अनुसार दण्डनीय होगा। यह अधिकार नागरिकों और अनागरिकों दोनों प्रकार को प्राप्त है। मानव दुर्व्यापार बहुत विस्तृत शब्दावली है। इस अनु. द्वारा भारतीय समाज के दो बहुत बड़े कलंक का अन्त हो गया है-1. नारी क्रय-विक्रय तथा 2. बेगार। ये दोनों कुरीतियाँ भारतीय समाज में बहुत समय से चली आ रही हैं। न्यायाधिकरण को यह अधिकार था कि वह अभियुक्त के पक्ष समर्थक की भांति कार्य कर सकें। पराजित अभियोक्ता से दण्ड का संग्रह करके न्यायाधिकरण अभियुक्त को दे सकता था अथवा अभियोक्ता को ब्राह्मणों के यज्ञ आदि कार्यों में विघ्न डालने वाले तत्वों के निराकरण में लगाया जा सकता था। केवल अभियोक्ता ब्राह्मणों को यह दण्ड नहीं दिया जा सकता था और प्राणसंकट कार्यों में नहीं लगाया जा सकता था।

निष्कर्ष- न्याय-क्षेत्र में कौटिल्य ने मध्यस्थ-सिद्धान्त को मान्यता दी है। देश में मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन देने की प्रथा नहीं थी।यदि हम केवल भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की बात करें तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से वर्तमान सरकार की नीतियों को देखें तो कहीं न कहीं कौटिल्य के राजनीतिक चिन्तन का प्रभाव हमें प्रमुखता के साथ देखने को मिलता है। वर्तमान सरकार की विदेश नीति, अर्थनीति, गृहनीति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भी भारतीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु चाणक्य का राजनीतिक दर्शन है जो भारतीय लोकतंत्र को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप से मजबूत बना रहा है। चाणक्य को राजनीतिक दर्शन का प्रमुख आधार जनसहभागिता है, जो भारतीय राजनीति एवं चिन्तन में आज भी देखने को मिल रही है। आचार्य कौटिल्य को भारत का ही नहीं बल्कि पूरे विश्व का राजनीतिक गुरु कहा जाय तो हमारे समझ से इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में वर्णित राजनीति के सिद्धान्त किसी न किसी रुप में हर जगह लागू किये जा रहे हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. वार्ता 18 अ. 9 अ. 3 अर्थ.
2. वार्ता 16 अ. 9 अ. 3 अर्थ.
3. वार्ता 16 अ. 9 अ. 3 अर्थ.
4. वार्ता 16 अ. 9 अ. 3 अर्थ
5. वार्ता 16 अ. 2 अधि. 4 अर्थ.
6. Cultural Heritaghe of India, P. 428 (Kautilyan Jurisprudence, V.K. Gupta) p 4
7. राज्ञः आभ्यन्तरो बाह्यो वा.....दण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत। कौ0अर्थ0 8/128/2 पृ. 562
8. दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे। कौ0अर्थ0 8/127/1 पृ. 580
9. पितृपैतामहो नित्यो.....क्षत्रप्राय इति दण्डसम्पत्। कौ0अर्थ0 6/96/1 पृ. 443
वार्ता 26,28 अ. 8 अ. 4 अर्थ

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

भारत में राष्ट्रवाद : इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ

* ब्रज किशोर सिंह

सारांश– *भारतीय राष्ट्रवाद के अधिकांश इतिहासकारों का यह तर्क रहा है कि आधुनिक अर्थ में भारतीय राजनीतिक राष्ट्र ब्रिटिश राज की स्थापना से पहले मौजूद नहीं था। ऐसा कोई राष्ट्र आत्मचेतनारहित रूप में भारतीय सभ्यता में सन्निहित रहा है या नहीं और फिर धीरे–धीरे इतिहास में उसका विकास हुआ है या नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर राष्ट्रवादी नेता और इतिहासकार बराबर बहस करते रहे हैं। अभी एकदम हाल में प्रसेनजित दुआरा ने ऐसे विचारों को ''प्रबोधकाल के इतिहास का प्रयोजनवादी मॉडल'' कहकर उसकी समालोचना की है, और कहा है कि यह मॉडल ''विवादित और सांयोगिक राष्ट्र'' को एकता की एक मिथ्या भावना से लैस करता है। फिर भी इस बात पर अभी तक असहमति कम ही है कि उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सामना जिस भारतीय राष्ट्रवाद ने किया और जिसने 1947 में भारतीय राष्ट्र–राज्य के जन्म के रूप में अपनी जीत का जश्न मनाया, वह उपनिवेशी आधुनिकता की उपज था।*

मुख्य शब्द– राष्ट्रीय, एकता, आत्मनिर्णय, बहुलवादी समाज, राष्ट्र–राज्य, चेतना, देशभक्ति उपनिवेश कालीन।

उपनिवेशकों का स्वघोषित उद्देश्य उपनिवेशितों को उनके पतन की तत्कालीन अवस्था से ऊपर उठाकर आधुनिकता की दिशा में प्रगति की एक वांछित अवस्था तक लाना था, इसलिए उपनिवेशितों के लिए अपने ऊपर लगे पिछड़ेपन के ठप्पे को चुनौती देना और यह दावा करना आवश्यक हो गया कि एक आधुनिक राज्य के ढाँचे में वे भी एकजुट होने और अपना शासन खुद चलाने में समर्थ हैं। इसलिए उपनिवेशी भारत में राष्ट्रवाद के सामने दोहरी चुनौती थी : राष्ट्रीय एकता स्थापित करना और आत्मनिर्णय के अधिकार का दावा करना। हर कोई इस बात पर सहमत है कि भारत एक बहुलवादी समाज है जिसमें क्षेत्र, भाषा, धर्म, जाति, उपजातीयता आदि अनेक प्रकार की विविधताएँ हैं। यदि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों का प्रयोग करें, जो आधुनिक भारतीय राष्ट्र के आरंभिक निर्माताओं में से एक थे, तो इसी विविधता से ''एक राष्ट्र का निर्माण'' हो रहा था। लेकिन इतिहासकारों के बीच सहमति बस यहीं तक है। भारतीय अपने राष्ट्र की ''कल्पना'' वास्तव में किस तरह करते थे, यह गहरे विवाद और बहस का विषय है।

इस विवाद में एक सिरे पर पार्थ चटर्जी का तर्क है कि भारत में राष्ट्रवाद, जिसे उसके पश्चिम में शिक्षा-प्राप्त राजनीतिक नेताओं ने एक विशिष्ट स्थान दिया था, पश्चिम से एक ''भिन्न'' मगर उससे ''व्युत्पन्न संवाद'' था।[2] आशीष नंदी की सोच भी यही है कि

* ग्राम-लगखना उर्फ डोमडीह, वार्ड नं. 6, पो.- भाटपार रानी, जिला-देवरिया (उ.प्र.)

पश्चिमी साम्राज्यवाद के एक प्रत्युत्तर के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद '''ऐसे तमाम प्रत्युत्तरों की तरह उसी चीज से निर्धारित हुआ जिसका वह प्रत्युत्तर था।'' पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त मध्यवर्गीय भारत ने सार्वभौमवाद के उस वैकल्पिक विचार को रद्द कर दिया, जिसकी जड़ें भारतीय सभ्यता में थी और जिसे ''साम्राज्यिक पश्चिम के प्रति-आधुनिकतावादी समालोचक'' रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी जैसे व्यक्तियों ने प्रतिपादित किया। सार्वभौमवाद की यह वैकल्पिक दृष्टि भेदों को स्वीकार कर और उनका रचनात्मक उपयोग करके भारत को राजनीतिक स्तर पर तो नहीं, परंतु सामाजिक सतह पर एक कर सकती थी, लेकिन भारतीय राष्ट्रवादियों ने अपने राष्ट्रवाद के निरूपक तत्व के रूप में राष्ट्र-राज्य के पश्चिमी मॉडल को स्वीकार लिया।[3] दूसरी ओर, अभी हाल में ही सी.ए. बेइली ने ''राष्ट्रवाद के प्रागैतिहास'' की खोज की है। वे समझते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद ने क्षेत्रीयता की एक पहले से मौजूद भावना पर स्वयं को आधारित किया, पारंपरिक देशभक्ति जिसे लोक-नैतिकता और सदाचारी शासन देशी विचारों ने बुद्धिवादी रूप दिया, उसके आधार पर खुद को खड़ा किया लेकिन उपनिवेशी शासन से और आपस में दो-चार होने के बाद इन क्षेत्रीय एकजुटताओं का किस तरह भारत की एक वृहत्तर सांस्कृतिक धारणा में समन्वयन हुआ, यह जोरदार बहस का विषय है। इस प्रक्रिया में अनेक प्रभाव और अनेक अंतर्विरोध थे, चेतना के अनेक स्तर और रूप थे। इस लगभग मुकम्मल अराजकता के बीच किसी एक-आयामी चित्र की रचना करना कठिन है। फिर भी, चूंकि एक राष्ट्र-राज्य जन्म ले चुका था, उसका जीवनचरित तैयार करने के प्रयास किए गए हैं। इसका यह मतलब निश्चित ही नहीं कि जिस भारतीय राष्ट्र-राज्य के निर्माण के रूप में राष्ट्रवादी मुख्यधारा से अपना वर्चस्व स्थापित किया, उसके विकास की इस महागाथा के अलावे राष्ट्र को समझने के लिए कुछ वैकल्पिक वृत्तांत थे ही नहीं।

आरंभिक राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने और उनके कुछ परवर्ती अनुयायियों ने भी राष्ट्र-निर्माण की इस प्रक्रिया का अध्ययन करते समय मुख्यतः एक राष्ट्रवादी विचारधारा और एक राष्ट्रवादी चेतना की श्रेष्ठता पर ध्यान केंद्रित किया, चेतना के दूसरे तमाम रूपों को जिसके अधीन माना गया। राष्ट्र की यह चेतना उपनिवेशी शासन के साझे विरोध पर, देशभक्ति की भावना पर और भारत की प्राचीन परम्पराओं में गर्व की भावना पर आधारित विचारधारा पर आधारित थी। दूसरे शब्दों में, इस इतिहासकार संप्रदाय ने भारतीय समाज के अंदरूनी टकरावों को अनदेखा किया जिन्होंने, अन्य बातों के अलावा, दो राष्ट्र-राज्यों में उसके विभाजन को जन्म दिया, तथा वह (संप्रदाय) राष्ट्र के अस्तित्व को साझे हितों वाली एक समरस इकाई मानकर चलता था। इसके विरोध में आंग्ल-अमेरिकी विद्वानों ने एक नई व्याख्या पेश की है और रजत रे ने अपेक्षाकृत ढीले-ढाले ढंग से उन विद्वानों को ''नव-परंपरावादी'' संप्रदाय कहा है।[4] यह नई व्याख्या वैलेंटाइन शिरोल जैसे लेखकों के उस पुराने साम्राज्यिक दावे को दुहराती थी कि भारतीय समाज का राजनीतिकरण वर्ग या राष्ट्र जैसी आधुनिक धारणाओं की बजाय भाषायी क्षेत्रों, जातियों या धार्मिक समुदायों जैसी परंपरागत सामाजिक संरचनाओं की तर्ज पर हुआ। इस संदर्भ में परिवर्तन के सबसे महत्वपूर्ण उत्प्रेरक-उपनिवेशी राजसत्ता के संस्थागत प्रवर्तन, खासकर पश्चिमी शिक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के आरंभ थे। भारतीय समाज के परंपरागत विभाजनों से घात-प्रतिघात करके इन नए अवसरों ने एक नए प्रस्थिति समूह को पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त

कुलीन समूह को जन्म दिया, जिसके सदस्य पहले से मौजूद विशेषाधिकार संपन्न देसी समूहों से आते थे, जैसे बंगाल के भद्रलोक से, बंबई के चितपावन ब्राह्मणों से या मद्रास के तमिल ब्राह्मणों से। इस सीमित राजनीतिक राष्ट्रों के दायरे से जो पिछड़े क्षेत्र या साधनहीन समूह बाहर रहे, उनकी उपनिवेशी भारत के उस आधुनिक संस्थागत जीवन में कोई पैठ भी नहीं थी, जिसके दायरों के अंदर आरंभिक भारतीय राष्ट्रवादियों के संदेश गूँजते थे। यह सब पहले विश्वयुद्ध के अंत तक चला, जब महात्मा गाँधी ने पहली बार संवैधानिक राजनीति के दरवाजों को पूरी तरह खोलकर लोक राष्ट्रवाद के नए युग का सूत्रपात किया।

अगर 'नव-परंपरावादी' इतिहासकारों ने भारतीय राजनीति के अध्ययन सूबे के ढाँचे में किए, तो कुछ दूसरे नें और भी नीचे जाकर, इलाकों के स्तर तक इन विभाजनों की तलाश की। इन इतिहासकारों की रचनाओं ने, जिनकी पहचान ''कैंब्रिज संप्रदाय'' के रूप में की गई है,[5] किसी एकजुट राष्ट्रवादी आंदोलन की सत्ता में संदेह व्यक्त किए हैं और उसकी बजाय उपनिवेशी भारत में स्थानीय आंदोलनों की एक पूरी श्रृंखला दर्शायी है। चूंकि साम्राज्यवाद कमजोर था और भारतीय सहयोगियों की मदद के बिना कुछ नहीं कर सकता था, इसलिए उससे टकराते हुए जो राष्ट्रवाद विकसित हुआ वह भी कमजोर था, वह दो कागजी शेरों की लड़ाई से अधिक कुछ भी नहीं था। चूंकि साम्राज्यिक शासन भारतीय सहयोगियों पर निर्भर था, इसलिए साम्राज्यिक शासकों की कृपा पाने के लिए उनके बीच भी प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। इसके कारण विभिन्न हितबद्ध समूह पैदा हुए जिन्होंने तब अपने प्रभाव क्षेत्रों को विस्तार देना आरंभ कर दिया, जब अंग्रेजों ने और अधिक सहयोगी बटोरने के लिए स्थानीय स्वशासन और चुनाव की व्यवस्था का आरंभ किया।

गौरतलब है कि राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व इन्हीं स्वार्थी नेताओं ने पूरी तरह अपने संकीर्ण वैयक्तिक या पारिवारिक हितों को पूरा करने के लिए किया। विभिन्न स्तरों पर नेतागण संरक्षक-संरक्षित संबंधों में बँधे हुए थे और निष्ठा के इन्हीं उर्ध्वाकार नेटवर्कों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजों के साथ शक्ति और संरक्षण के लिए सौदेबाजियाँ की। दूसरे शब्दों में, यह इतिहासकार संप्रदाय एक राष्ट्रवादी विचारधारा की भूमिका से एक सिरे से इनकार करता है और राष्ट्रवादी राजनीति की व्याख्या प्रतियोगिता और सहयोग के आधार पर करने का प्रयास करता है। इसके अनुसार भारत कोई राष्ट्र न होकर असंबद्ध हितबद्ध समूहों का एक जमावड़ा था और वे इसलिए एकजुट थे कि उनको अंग्रेजों के बताए हुए केन्द्रीकृत राष्ट्रीय प्रशासन के ढाँचे में काम करना पड़ रहा था।[6] इतिहास के प्रति इस सनकी दृष्टिकोण ने, जिसने अपने विश्लेषण से मन और भावना को निकालकर एक संकीर्ण नेमियरवादी मॉडल का अनुसरण किया, राष्ट्रवादी आंदोलन का दर्जा गिराकर तपन राय चौधरी के शब्दों में उसे ''पाश्विक राजनीति'' के स्तर तक पहुँचा दिया है।[7] लेकिन व्याख्या की उस तर्ज को वे लोग भी अब स्वीकार नहीं करते, जो कभी इसके उत्साही प्रतिपादक थे।

राष्ट्रवाद की इस अपेक्षाकृत संकीर्ण राजनीतिक व्याख्या के विपरीत सनातनी मार्क्सवादी संप्रदाय ने राष्ट्रवादी आंदोलन के वर्गीय चरित्र का विश्लेषण करने और उसकी व्याख्या उपनिवेश काल के आर्थिक विकासक्रमों के आधार पर करने की कोशिश

की, मुख्यतः भारत में औद्योगिक पूँजीवाद के उदय और एक बाजारमुखी समाज के विकास के आधार पर। उसने पूँजीवादी नेतृत्व की पहचान की, जिसने अपने वर्गीय हितों के अनुसार इस आंदोलन को संचालित किया और जनता के हितों को अनदेखा किया, बल्कि एक सीमा तक उसे धोखा भी दिया। रजनी पाम दत्त और सोवियत इतिहासकार वी. आई. पाव्वोल जैसे आरंभिक मार्क्सवादियों के इस सकीर्ण वर्गीय दृष्टिकोण और आर्थिक निर्धारणवाद को एस. एन. मुखर्जी, सुमित सरकार और विपिनचन्द्र की परवर्ती मार्क्सवादी रचनाओं में संशोधित किया गया। मुखर्जी ने राष्ट्रवाद की पेचीदगियों, उसके अनेक स्तरों और अर्थों, वर्ग के साथ-साथ जाति के महत्व तथा राजनीति की एक परंपरागत और साथ-साथ एक आधुनिक भाषा के उपयोग की ओर इशारा किया।[8] सुमित सरकार ने भारतीय शिक्षित वर्गों की गैर-पूँजीवादी पृष्ठभूमि को दर्शाया और तर्क दिया कि उनका कर्म उत्पादन की प्रक्रियाओं से असंबद्ध ''पारम्परिक बुद्धिजीवियों'' जैसा था, जो विश्व की उदारवाद या राष्ट्रवाद जैसी वैचारिक धाराओं का प्रत्युत्तर दे रहे थे और जिन्होंने अभी तक निष्क्रिय पड़े भारतीय जनसमूहों की ''जगह'' ली।''[9] अपनी परवर्ती पुस्तक मॉडर्न इंडिया में सुमित सरकार ने हमें चेताया है कि ''वर्ग और वर्गचेतना विश्लेषण के उपकरण हैं, जिनका पहले से अधिक कौशल और लोच के साथ उपयोग करना होगा'' : वे राष्ट्रवाद की वैधता को स्वीकार करते हैं, पर उसके ''अंदरूनी तनावों'' की उपेक्षा नहीं करते। उनका कहना है कि भारत में भी साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के दो स्तर थे : एक कुलीनों का और दूसरा जनता का। दोनों में से किसी को भी अनदेखा करने की जरूरत नहीं है, बल्कि ''इन (दोनों) स्तरों के पेचीदा घात-प्रतिघात'' को देखा जाना चाहिए, जिसके माध्यम से ''परिवर्तन के द्वारा निरंतरता का ढर्रा'' पैदा हुआ, वही ढर्रा जो उस काल का प्रमुख विषय था।[10]

विपिनचन्द्र और उनके कुछ सहयोगियों ने अपने सामूहिक लेखन-उद्यम भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (1989) में मार्क्सवादी व्याख्या को एक सुस्पष्ट राष्ट्रवादी रूझान प्रदान किया है। उनका तर्क है कि भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन विभिन्न वर्गों का एक जन-आंदोलन था, जो पूरी तरह पूँजीपतियों द्वारा नियंत्रित नहीं था। उन्होंने उपनिवेशी भारत में दो प्रकार के अंतर्विरोध दिखाए हैं। प्रमुख अंतर्विरोध भारतीय जनता के और ब्रिटिश राज के हितों के बीच था, पर उससे अलग हटकर भारतीय समाज के अंदर वर्गों, जातियों और धार्मिक समुदायों के बीच अनेक गौण अंतर्विरोध पर समझौते कर लिए गए और इस तरह एक राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व स्थापित हुआ। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन किसी एक वर्ग, जाति या धार्मिक समुदाय का आंदोलन नहीं था और गाँधी या जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने माना कि भारत कोई ढाँचाबद्ध राष्ट्र न होकर एक निर्माणाधीन राष्ट्र था। परस्परविरोधी हितोंवाले अनेक समूह यहाँ थे और इसलिए वर्ग या जातिगत या सांप्रदायिक टकरावों से बचने और इन तमाम असंबद्ध समूहों को एक छतरी समान नेतृत्व के अंतर्गत लाने के लिए बराबर समझौते करने पड़ते थे। फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन जनगणों का आंदोलन बन गया, हालांकि तमाम गौण टकराव संतोषजनक ढंग से हल नहीं किए जा सके।[11]

इस बहस में एक नया साहसिक हस्तक्षेप 1982 में हुआ, जब रणजीत गुहा द्वारा संपादित सबाल्र्टन अध्ययन का पहला खंड प्रकाशित हुआ, इसका प्रारंभिक वक्तव्य

उत्तेजक था : ''भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास-लेखन पर लंबे समय से कुलीनवाद का वर्चस्व रहा है।'' गुहा ने आगे कहा कि यह ''तंगनजर इतिहास-लेखन'' भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या नहीं कर सकता, क्योंकि यह इस राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में जनता द्वारा अपने बूते पर अर्थात् कुलीनों से स्वतंत्र रूप से किए गए नए योगदान की उपेक्षा करता है।[12] यह रैडिकल मार्क्सवादी संप्रदाय, जो अपनी सैद्धांतिक विचार-सामग्री इतालवी मार्क्सवादी एंतोनियो ग्रामशी की रचनाओं से ग्रहण करता है, यह समझता है कि वह संगठित राष्ट्रीय आंदोलन जो अंततः भारतीय राष्ट्र-राज्य के निर्माण का कारण बना, कुलीनों का खोखला राष्ट्रवाद था, जबकि वास्तविक राष्ट्रवाद जनता का राष्ट्रवाद था, जिसे यह संप्रदाय 'अधोस्तरीय' कहता है। कुलीन राजनीति और अधोस्तरीय जनता की राजनीति के इन दो क्षेत्रों के बीच ''ढांचागत द्विभाजन'' है, क्योंकि भारतीय समाज के ये दोनों खंड दो पूरी तरह अलग-अलग और स्वतंत्र मानसिक संसार में रहते हैं जिनकी विशेषताएँ चेतना के दो अलग-अलग रूप हैं, हालाँकि इन दोनों संसारों के बीच कोई चीन की दीवार नहीं है। हालाँकि यह जनता समय-समय पर पूँजीपति वर्ग के द्वारा आरंभ किए आंदोलनों में भाग लेती थी, पर पूँजीपति वर्ग पूरे राष्ट्र की बात कहने में नाकाम रहा। बाद के एक लेख में रणजीत गुहा ने तर्क दिया है कि पूँजीपति वर्ग समझावे-बुझावे के द्वारा बलपूर्वक अपना वर्चस्व स्थापित करने में असफल रहा तथा किसान और मजदूर वर्ग बराबर उसका सामना करते रहे, जिनकी लामबंदी और कार्रवाई के मुहावरे भिन्न थे और राष्ट्रीय आंदोलन इन मुहावरों को हथियाने में नाकाम रहा। नए राष्ट्र-राज्य ने इसी पूँजीपति वर्ग और उसकी विचारधारा का प्रभुत्व स्थापित किया, पर यह ''वर्चस्व से रहित प्रभुत्व'' था।[13]

लेकिन इतिहास-लेखन की यह विशेष धारा हाल के वर्षों में अच्छे-खासे बदलावों से गुजरी है तथा इसका ध्यान-केन्द्र वर्ग से हटकर समुदाय हो चुका है, भौतिक विश्लेषण के बदले अब संस्कृति, मन और अस्मिता की विशेष महत्ता हो चुकी है। इसके कभी यशस्वी लेखक रह चुके सुमित सरकार ने ''अधोस्तरीय अध्ययन में अधोस्तरीय वर्ग के गौण होते जाने'' की शिकायतें की हैं।[14] कारण यह है कि धीरे-धीरे उसका ध्यान-केन्द्र बढ़ता गया और अधोस्तरीय प्रतिरोधों के रूपों और उदाहरणों के साथ उसका जो एकमात्र सरोकार था, उसकी जगह उसमें उपनिवेशकालीन शिक्षित वर्ग की राजनीति को भी खींच लिया गया। ध्यान-केंद्र के इस विस्तार को उचित ठहराते हुए दीपेश चक्रवर्ती तर्क देते हैं कि ''कुलीन और प्रभुत्वशाली वर्गों का भी एक अधोस्तरीय अतीत हो सकता है।''[15] एडवर्ड सईद (1978) का अनुकरण करते हुए यह तर्क दिया गया है कि उनका (उपनिवेशिक शिक्षित वर्ग का) चरित्र उनके मन के उस उपनिवेशीकरण की उपज था, जिसने उनकी मनोनिष्ठा का निर्धारण किया।

रहा सवाल इन अधीनस्थ उपनिवेशकालीन कुलीनों के राष्ट्रवाद को समझने का, तो इसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान पार्थ चटर्जी का रहा है। पहले उनका कथन था कि भारत में राष्ट्रवाद मूलतः पश्चिम से एक ''भिन्न'' मगर उससे व्युत्पन्न संवाद'' था, जिसका विकास तीन सुस्पष्ट चरणों में हुआ : ''प्रस्थान का क्षण'', जब राष्ट्रवादी चेतना का निर्माण ''प्रबोध पश्चात बुद्धिवादी चिंतन'' के वर्चस्वकारी प्रभार के द्वारा, ''जोड़तोड़ का क्षण'' जब इसके समर्थन में जनता को लामबंद किया गया और ''आगमन का क्षण'',

जब यह ''व्यवस्था का संवाद'' और ''शक्ति का बुद्धिसंगत गठन'' बन गया।[16] इस सिद्धांत को उनके बाद की किताब द नेशन एण्ड इट्स फ्रैंगमेंन्ट्स (1993) में और आगे विकसित किया गया है, जहाँ उन्होंने इस शिक्षित वर्ग के कार्यकलाप के दो क्षेत्रों, भौतिक और आध्यात्मिक, की बात कही है। आंतरिक आध्यात्मिक क्षेत्र में इन लोगों ने ''एक आधुनिक राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण के प्रयास किए जो फिर भी पश्चिमी नहीं थी'' और यहाँ उन्होंने उपनिवेशी हस्तक्षेप को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राष्ट्रवाद पहले से ही अगर प्रभुतासंपन्न था तो यहीं था। लेकिन इस भौतिक जगत में, जो उपनिवेशी राज्य की संस्थाओं से परिभाषित था, उनके पास पश्चिमी मॉडलों के प्रभावों से बचने की संभावना कम ही थी। बाहरी जगत में भारतीय कुलीनों ने भेद के उपनिवेशी नियम को चुनौती दी, जबकि आंतरिक जगत में उन्होंने सहमति पैदा करके तथा अधोस्तरीय असहमति के क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित करके भारतीय समाज को समरस बनाने के प्रयास किए। इसलिए कुलीन और अधोस्तरीय राजनीति के दो क्षेत्रों का अध्ययन अलग-अलग नहीं किया जाना चाहिए। चटर्जी हमें समझाते हैं कि इनका अध्ययन उनकी ''परस्पर निर्धारित ऐतिहासिकताओं'' में किया जाना चाहिए।[17]

राष्ट्रवाद के इस अधोस्तरीय दृष्टिकोण का, या जिसे आज ''उपनिवेश-पश्चात्'' सिद्धांत की एक प्रमुखधारा कहा जा रहा है, उसका और आगे विकास ज्ञानप्रकाश की पुस्तक अनदर रीजन (1999) में हुआ है। इसमें ज्ञानप्रकाश ने पार्थ चटर्जी को अंशतः संशोधित करते हुए तर्क दिया है कि ''राष्ट्र के आंतरिक क्षेत्र और एक राष्ट्र के रूप में उसके बाहरी जीवन के बीच कोई बुनियादी विरोध नहीं था, राष्ट्र-राज्य एक अन्य, अमूर्त स्तर पर राष्ट्र का ही अस्तित्व था।''[18] भारत में राष्ट्र-राज्य का निर्माण मात्र पश्चिमी मॉडल की नकल नहीं था, जैसा कि पार्थ चटर्जी सोचते हैं, बल्कि भारत की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक धरोहर के दृष्टिकोण से और साथ ही एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पश्चिमी आधुनिकता पर एक पुनर्विचार और उसकी समालोचना था। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने परिकल्पना की थी, यह राज्य सदाचरण के उन भारतीय सिद्धांतों से संचालित होगा जो समष्टिगत कल्याण को महत्व देते हैं, और इस अर्थ में यह ''पश्चिम से आयातित'' नहीं होगा। फिर भी राज्य पर उनकी यह निर्भरता राष्ट्रीय एकता की स्थापना में उनकी असफलता की उपज थी, उन्होंने इस एकता की कल्पना केवल विमर्श के स्तर पर की थी। जैसा कि ज्ञानप्रकाश का तर्क है, इस तरह ''राष्ट्र-राज्य एक राष्ट्रीय समुदाय की परिकल्पना करने और उसे सामान्य बनाने की वर्चस्ववादी परियोजना में ही व्याप्त था।'' और भारतीय राष्ट्रवाद का अंतर्विरोध इसी बात में निहित था।[19]

ऊपर दर्ज और कमोबेश स्पष्ट रूप से निरूपित किए जा सकनेवाले इन विशेष इतिहासकार संप्रदायों के इतिहास-लेखन के अलावा ऐसी अन्य रचनाओं का एक पूरा दायरा मौजूद है, जिनमें भारतीय राष्ट्रवाद को विभिन्न वैचारिक कोणों से और विभिन्न ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यो में देखा गया है। दूसरे शब्दों में, भारतीय राष्ट्रवाद तीखे विवादों से ग्रस्त एक क्षेत्र है, जहाँ से किसी द्वंद्ववादी मध्यमार्ग तक पहुंचना या ऐसा कोई यदृच्छवादी दृष्टिकोण विकसित कर सकना कठिन है, जो सबको स्वीकार्य हो। अगर ब्रिटिश राज भारतीय मानस का उपनिवेशीकरण करना चाहता था, तो उपनिवेशी वर्चस्व का प्रतिरोध करने के लिए भारतवासियों ने भी उस उपनिवेशी ज्ञान को चुनिंदा ढंग से

ग्रहण किया, उसे आत्मसात किया और उसमें फेरबदल किया। लेकिन अगर मुख्यधारा के राष्ट्रवाद ने एक ऐसे समरस राष्ट्र के अस्तित्व की मान्यता रखी जो एक ही वाणी में बोलता था, तो असहमति के स्वरों के, मसलन स्त्रियों[20] या दलितों[21] के बहिराव के दावे, उनको खामोश किए जाने और कुचले जाने के दावे भी बराबर किए जाते रहे हैं।

दूसरे शब्दों में, इतिहासकारों का एक विकासमान समूह आज यह तर्क दे रहा है कि उपनिवेशवाद विरोधी प्रतिरोध के रूपों और उनके पीछे मौजूद विचारधाराओं को अनेकानेक ढंगों से समझा या निरूपित किया गया। अनिया लुंबा की इस टिप्पणी की सच्चाई से इनकार कर पाना कठिन है कि ''यहाँ स्वयं राष्ट्र' ही विवाद और बहस का एक मैदान है, विभिन्न वैचारिक और राजनीतिक हितों की परस्पर-विरोधी परिकल्पनाओं का अखाड़ा है।[22] भारत एक बहुलवादी समाज था इसलिए लाजिमी था कि भारतवासियों की अनेक पहचानें थी यथा वर्गीय पहचान, जातिगत पहचान, धार्मिक पहचान आदि, विभिन्न ऐतिहासिक मोड़ों पर भिन्न-भिन्न पहचानों को अभिव्यक्ति मिलती थी और वे एक दूसरे से घात-प्रतिघात करती थी। जब ब्रिटिश राजसत्ता ने इन टकरावों को तीखा बनाने और बढाने की कोशिशें की तो भारतीय राष्ट्रवादियों ने एकता के एक वैकल्पिक संवाद का प्रचार करने का प्रयास किया। जवाहर लाल नेहरू ने भिन्न-भिन्न तत्वों के संश्लेषण और एक साझी राष्ट्रीयता में उनके विलय के प्राचीन भारतीय आदर्श की बातें की।[23]

स्पष्ट है कि भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद को विभिन्न इतिहास लेखन की दृष्टि से देखा गया है, उसका ऑकलन किया गया है फिर भी राष्ट्रवाद की मुख्यधारा ने विविधता में एकता का संवाद स्थापित करने का प्रयास किया लेकिन वे इसमें पूरी तरह से सफल नहीं हुए क्योंकि इस एकता के संदेश में विभिन्न समूहों को अपनी समुचित हिस्सेदारी का भरोसा नहीं बना और देश का विभाजन हो गया। अतः भारत में राष्ट्रवाद के विकास को समझने के लिए बहुआयामी पद्धति का ही उपयोग करना होगा।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. दुअरा, पी., (1995) रेस्क्यूंग हिस्ट्री फ्रॉम द नेशन, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो, पृ. 4.
2. चटर्जी, पार्थ, (1986) नेशनलिस्ट थॉट एण्ड द कोलोनियल वर्ल्ड : ए डेरावेटिव डिसकोर्स, जेड बुक्स, लंदन, पृ. 42.
3. नंदी, आशीश, (1994) द इललिजिटमैसी ऑफ नेशनलिज्म, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, पृ. 3-4.
4. रे, रजतकांत, (1980) ''थ्री इंटरप्रीटेशन ऑफ इंडियन नेशनजिल्म'', इन बी. आर नंदा (एडिटेड) ऐस्से इन मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 16-26.
5. बंधोपाध्याय, शेखर, (2007) पलासी से विभाजन तक, ओरियंट लॉगमैन, हैदराबाद, पृ. 203.
6. वही
7. वही
8. मुखर्जी, एस. एन., (1996) सिटिजन हिस्टोरियन : एक्सप्लोरेशन इन हिस्टोरियोग्राफी, मनोहर, न्यू दिल्ली, पृ. 104-119.
9. सरकार, सुमित, (1973) स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल, पीपुल्स पब्लिशिंग, न्यू दिल्ली, पृ. 31-35.
10. सरकार, सुमित, (1983) मॉडर्न इंडिया : 1885-1947, मैकमिलन, न्यू दिल्ली, पृ. 11.

11. चंद्र विपिन, आदि, इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, पेन्गूइन, न्यू दिल्ली, 1989, पृ. 22-30.
12. गुहा, रणजीत, सावर्ल्टन स्टडीज (1982) स्टडीज ऑन साउथ एशियन हिस्ट्री एण्ड सोसायटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 1-3.
13. गुहा, रणजीत, (1992) ''डिसिप्लिन एण्ड मोबालाईज'', इन पी. चटर्जी एण्ड जी. पाण्डे (एडी) राइटिंग्स ऑन साउथ इंडियन हिस्ट्री एण्ड सोसाइटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 69-70.
14. सरकार, सुमित, (1997) राइटिंग्स ऑन सोशल हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
15. चक्रवर्ती, दीपेश, (1998) ''माइनोरिटी हिस्ट्रीज, सावर्ल्टन पास्ट'' इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली, 28 फरवरी, पृ. 473-479.
16. चटर्जी, पार्थ (1986), पूर्वोक्त, पृ. 50-51.
17. चटर्जी, पार्थ, द नेशन एण्ड इट्स फ्रैगमेंट्स : कोलोनियल एण्ड पोस्टकोलोनियल हिस्ट्रीज, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1993, पृ. 6-7.
18. ज्ञानप्रकाश, अनॉदर रीजन, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1993, पृ. 208.
19. वही, पृ. 212
20. बंधोपाध्याय, शेखर (2007), पूर्वोक्त, पृ. 208.
21. वही
22. यूवा, अनिया, कोलोनियलिज्म / पोस्ट कोलोनियलिज्म, रूटलेज, लंदन, पृ. 207.
23. ओमेन, टी. के., (2000) नेशन एंड नेशनल आइडेनटिटी इन साउथ एशिया, आरिएंट लॉगमैन, न्यू दिल्ली, पृ. 3.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे सम्पत्ति के अधिकार की संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

* अमृता कुमारी

सारांश– *वर्तमान समय मे भारतीय नागरिकों को जो छः मूल अधिकार प्राप्त है, उसमें सम्पत्ति का अधिकार शामिल नहीं है। लेकिन 44 वें संविधान संशोधन के पूर्व भारतीय नागरिकों को सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार के रूप में प्राप्त था। अनुच्छेद 19 (I F) तथा 31 में इसे स्थान दिया गया था जिसके तहत सभी नागरिकों को सम्पत्ति अर्जित करने, रखने का मौलिक अधिकार था तथा इस सम्पत्ति को लोकहित में केवल सरकार द्वारा अधिग्रहण किया जा सकता था। लेकिन इसके लिए समुजित मुआवजा देना अनिवार्य था। प्रथम (1951) तथा चतुर्थ (1955) संविधान संशोधन सहित अनुच्छेद 31 के अनुसार मुआवजे की धनराशि केवल व्यवथापिका निर्धारित करती थी तथा यह विषय न्यायालय में वाद योग्य नहीं था। लेकिन संविधान के – 44 वें संशोधन (1978) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया तथा साथ ही 19 (1) च और अनुच्छेद – 31 को अपने सभी उपखंडो सहित रद्द कर दिया गया तथा साथ ही संविधान के भाग 12 में एक नया अध्याय – 4 जोडा गया जिसके अनुच्छेद 300 (A) में सम्पत्ति के अधिकार को एक विधिक अधिकार बना दिया गया जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से विधि के प्राधिकार से ही वंछित किया जाएगा अन्यथा नहीं।*

मुख्य शब्द : संविधान, सम्पत्ति का अधिकार, विधि का प्राधिकार।

संविधान में किये गये संशोधनों का यह प्रभाव हुआ कि अब सम्पत्ति से संबंधित अधिकार में संशोधन करने के लिए अनुच्छेद-368 मे वर्णित संविधान संशोधन की विधि को अपनाने की आवश्यकता नहीं होगी। संसद द्वारा साधारण विधि की तरह सम्पत्ति के लिए भी साधारण प्रक्रिया से अधिनियम बनाए जा सकते है, तथा इस अधिकार के संरक्षण के लिए केवल उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सम्पत्ति का अधिकार अब एक कानूनी अधिकार हैं, संवैधानिक नहीं। अत: वर्तमान मे सम्पत्ति के अधिकार को कानूनी दर्जा प्रदान किया गया हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि राज्य को व्यक्ति की सम्पत्ति लेने का अधिकार है। लेकिन ऐसा करने के लिए उसे किसी विधि का सहारा लेना होगा। कार्यपालिका के आदेश मात्र से किसी को भी उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा, अपितु राज्य ऐसा केवल अपनी विधायिकी शक्ति के प्रयोग द्वारा ही कर सकता है।

सम्पत्ति के अधिकार से सम्बन्धिन 24वां संविधान- गोलकनाथ बनाम

* राजनीति विज्ञान, भावनाथ मंदिर, नया बाजार, सिवान

पंजाब सरकार के 1977 के मुकदमें से पूर्व संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त थी और न्यायालय किसी संशोधित कानून को अवैध घोषित नहीं कर सकते थे। 1951 के शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ राज्य तथा सज्जन सिंह के अभियोग (1965) में भी सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया की संसद मौलिक अधिकारों मे संशोधन कर सकती है। लेकिन 17 फरवरी 1967 को सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा गोलकनाथ विवाद मे जो निर्णय दिया गया उससे पूर्ववर्ती स्थिति बदल गई। इस विवाद मे न्यायालय ने अपनी पुराने निर्णयों को अस्वीकार करते हुए कहा कि संसद मौलिक अधिकारों मे कोई संशोधन नहीं कर सकती।

यह विवाद मुख्यतः गोलकनाथ बनाम पंजाब सरकार के नाम से जाना जाता है। 1966 मे हैनरी गोलकनाथ के पुत्र, पुत्री व पोतियों ने उनकी मृत्यु के पश्चात सर्वोच्च न्यायालय मे पंजाब सरकार और पंजाब के वित्त आयुक्त के विरुद्ध प्रार्थना पत्र दिया क्योकि पंजाब के वित्त आयुक्त ने अपने आदेश मे यह कहा था कि प्रार्थियों के पास 418 एकड़ व 9 यूनिट भूमि फालतू है। वित्त आयुक्त ने यह आदेश Punjab Security of Land Tenure Act of 1953 की धाराओं के अनुसार जारी किया था। जबकि अपील कर्ताओं ने अपने प्रार्थना पत्र मे यह कहा कि एक्ट की जिन धाराओं के अंतर्गत उनकी भूमि को फालतू ठहराया गया है, वे मौलिक अधिकारों के विरूद्ध है। सर्वोच्च न्यायालय ने 27 फरवरी 1967 को गोलकनाथ मुकदमें में 6-5 के बहुमत से अपने पुराने निर्णयों को अस्वीकार करते हुए यह घोषित किया कि संसद को संविधान के मौलिक अधिकारों को संशोधित करने का अधिकार नहीं है। न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में कहा कि संविधान सर्वोच्च है और संविधान द्वारा निर्मित अन्य पदाधिकारी को संविधान के अनुसार ही चलना होगा। इस तरह 6-5 के बहुमत द्वारा उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई संविधान की व्याख्या ने मौलिक अधिकारों को संसद की पहुँच से बाहर बना दिया।

भारत के संविधान (1950) में प्राइवेट सम्पत्ति की रक्षा के लिए तीन प्रकार के उपबंध किए गए थे। उसमें प्राइवेट स्वामित्व का अधिकार था। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति के उपभोग और व्ययन का अधिकार था, जिस पर युक्तियुक्त निबंधनों से भिन्न कोई निबंधन नहीं लगाए जा सकते थे। प्रत्येक नागरिक को विरासत, व्यक्तिगत उपार्जन द्वारा या अन्यथा इसी प्रकार के साधनों से सम्पत्ति के अर्जन का, उसे धारण करने का और व्ययन का अधिकार प्रत्याभृत किया गया था।

दूसरे, संविधान ने यह प्रत्याभूति दी थी कि किसी व्यक्ति को विधि के प्राधिकार के बिना सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 21(1) इसमें यह व्यवस्था है कि स्वामी की सहमति के बिना किसी व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी सहमति से ही ली जा सकती है। राज्य की सहमति संविधान के अनुसार पारित विधियों मे समाविष्ट होती है। कोई सम्पत्ति जो पुलिस या सरकार द्वारा बिना विधिक प्राधिकार के अधिगृहीत की जाती है, न्यायालय के हस्तक्षेप पर विमुक्त कर दी जाएगी।

विधान मंडल पर यह संवैधानिक बाध्यता थी कि वह प्रतिकर का संदाय करे किन्तु प्रतिकर की पर्याप्तता की न्यायालय मे प्रश्नगत नहीं किया जा सकता था। दूसरे शब्दों में जब विधि में लोक प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति की सम्पत्ति के अर्जन का उपबंध किया जाता था तो वह न्यायालय में इस आधार पर उस विधि की विधिमान्यता को चुनौती नहीं

दे सकता था कि विधान मंडल ने उसकी सम्पत्ति के पूरे मूल्य के संदाय के लिए उपबंध नहीं किया था। अनुच्छेद- 31(1) मे यह चौथा संशोधन (1955) इस कारण आवश्यक हो गया कि उच्चतम न्यायालय ने (प्रतिकर) शब्द का अर्थ संपूर्ण (प्रतिकर) किया। अर्थात अर्जन की तारीख को सम्पत्ति का बाजार मूल्य सरकार की यह धारणा थी कि यदि राष्ट्रीयकरण की जाने वाली प्रत्येक इंच भूमि के लिए नवजात गणतंत्र के अपर्याप्त स्त्रोंतों से पूरा बाजार मूल्य दिया गया तो राष्ट्रीय योजना और विकास के कार्यकमों को लागू करना संभव नहीं होगा। इस संशोधन के पश्चात भी उच्चतम न्यायालय यही अभिनिर्धारित करता रहा कि प्रतिकर की यही व्यवस्था है कि स्वामी से ली गई सम्पत्ति का धन के रूप में पूर्ण प्रतिफल दिया जाए, अर्थात् अर्जन की तारीख को उसका बाजार मूल्य दिया जाए।

अनुच्छेद 31(क) में, कृषि भूमि सुधार को सफल बनाने के लिए और उत्पादन के आधारों पर सामाजिक नियंत्रण करने के लिए यह उपबंध किया गया है कि न केवल संपदा के या उसमें किन्हीं अधिकारो के राज्य द्वारा अर्जन के लिए या किन्हीं ऐसे अधिकारी के निर्वापन या उसमें परिवर्तन के लिए अधिग्रहित करने वाली विधि बल्कि कुछ अन्य विधियां जैसे किसी सम्पत्ति का प्रबंध लोकहित में या उस सम्पत्ति का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के उदेश्य से परिसीमित अवधि के लिए राज्य द्वारा ले लिए जाने के लिए उपबंध करने वाली विधि, सांविधानिक और विधिमान्य होगी चाहे वे समान संरक्षण से वंचित करे अनुच्छेद- 14 (य) सम्पत्ति के अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्वधन अधिरोपित को अनुच्छेद- 19(1) (च) या प्रतिकर के लिए उपबंध न करें।

अनुच्छेद- 31 (ख), नवी अनुसूची के साथ पढ़े जाने पर विशिष्ट अधिनियमितियों को सर्वव्यापी आच्छादन प्रदान करता है। उन्हे न केवल अनुच्छेद- 31 बल्कि अन्य अभी मूल अधिकारो के उल्लंधन के आधार पर आक्रमण से पूर्ण सुरक्षा प्रदान की गई है।

किन्तु अनुच्छेद- 31 (ग के प्रभाव को उच्चतम न्यायालय के केशवानन्द के निर्णय ने पंगु बना दिया। पूर्वी तथा पश्चिमी समाजों द्वारा सम्पत्ति का प्रयोग सामाजिक संगठन तथा सामाजिक रहन-सहन के लिए एक अत्यावश्यक वस्तु के रूप मे होता रहा है। सम्पत्ति का आशय, इससे संबंधित अन्य विचारों से, जिन्हें वस्तु या रेस 'Mksel' 'Domus' तथा स्वामी प्रोप्रायटर आदि शब्दों से व्यक्त किया गया।

भाषाविज्ञान के अनुसार सम्पत्ति शब्द की व्युत्पति लैटिन क्रिया विश्लेषण प्राप्टर (Propter) से हुआ। प्रोप्राइटैस शब्द रोमन विधिज्ञों द्वारा बौद्धिक स्तर पर प्रयोग में लाया जाने लगा, धीरे-धीरे सम्पत्ति शब्द का उपयोग भूमि, धन तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं के लिए होने लगा।

सम्पत्ति शब्द का अर्थ तब निश्चित है जब इस शब्द का प्रयोग एक परिवार और उसके सदस्यों से संबंधित वस्तुओं का सम्बंध व्यक्त करने के लिए किया जाने लगा। बाद में सामाजिक परिस्थितियों द्वारा व्यक्तियों की वस्तुओं के अभिग्रहण और संरक्षण की प्रवृत्ति को मान्यता प्राप्त हुई तथा उसके मूल का औचित्य और आवश्यकता देखते हुए सम्पत्ति का समर्थन किया जाने लगा। वह सम्मान की वस्तु बन गई तथा उसका विकास सामाजिक विशिष्टताओं वाली संस्था के रूप में होने लगा। आदि समाज में धर्म के अधिकारी विद्वानों ने कानून को जन्म दिया तथा उस समाज में सम्पत्ति एवं परिवार दोंनो अवियोज्य शब्द थे क्योंकि दोनो का मूल धर्म ही था तथा दोनो को धर्म से ही मान्यता

प्राप्त थी। इस प्रकार सम्पत्ति, परिवार तथा कानून, आदिम समाज मे सजातीय अथवा संबद्ध शब्द थे।

संस्कृत शब्द गृह अर्थात घ की व्युत्पति, गृह शब्द से हुई है जिसके अर्थ है, ले लेना, स्वीकार, छीन लेना अथवा विजय प्राप्त करना, यह स्मरण रखना चाहिए कि बलपूर्वक अथवा युद्ध में जीतकर अधिग्रहण अत्यंत प्राचीन विधि है। मनु के अनुसार, गृह की स्थापना गृहस्थी या परिवार की नीव है। धर तथा परिवार दोनो के लिए प्रयुक्त होने वाले लैटिन शब्द डोमस (Dominium) का मूल है, जिसका अर्थ रोमन न्यायशास्त्र में सम्पत्ति का आशय समझाने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

न्यायसंहिता (Justinian Code) में मैंनसिपियम (Mancipium), डोमिनियम तथा प्रोपाइर्टस का प्रयोग सम्पत्ति अथवा 'स्वामित्व' के लिए समान रूप से किया जाता है। मैनसिपियम का अर्थ है अभिग्रहण, अधिकार में करना, विशेषकर भूमि आदि। मैनसिपियम शब्द लगभग संस्कृत के गृह शब्द के ही समान है। रोमन में डोमिनियम अथवा प्रोपाइर्टस का अर्थ उन सब अधिकारों का समूह है जिससे स्वामित्व का बोध होता है। समय के साथ-साथ स्वत्व का विकास हुआ और धीरे-धीरे इसका आशय किसी वस्तु का स्वतंत्र उपयोग और उसे भेजने या दे डालने का अधिकार समझा जाने लगा।

आदिम समाजों में सम्पत्ति के साथ धार्मिक भावना भी जुड़ी रहती थी। जहाँ भूमि और उसके उत्पाद जीविका के प्रमुख साधन थे तथा भूमि अभिग्रहण की विधि अतिक्रमण और जीत द्वारा प्राप्त करना था। भूमि तथा खेती करने का अधिकार एक प्रकार का धन समझा जाता था और इस प्रकार यह एक जाति अथवा परिवार से संबंधित सम्पत्ति का प्रमुख अंग था। परिवार सम्पत्ति उन्हीं के लिए दान योग्य थी जो अपने पूर्वजों के लिए धार्मिक अनुष्ठान किया करने थे। पूर्वजों के लिए धार्मिक अनुष्ठान करना वंशजों का ही प्रथम कर्तत्य समझा जाता था। इसलिए खेती करने, भूमि का भोग करने तथा इसकी क्रय-विक्रय करने का अधिकार जन्म से प्राप्त हो जाता था।

पुत्र का जन्मतः अधिकार मिताक्षरा ने स्वीकार किया है। विजनेश्वर के अनुसार जन्म ही सम्पत्ति का कारण है। हिन्दू समाज में कानून की यह निश्चित स्थिति है कि पैतृक था पूर्वजों की सम्पत्ति का स्वत्व जन्म से प्राप्त होता है। धीरे-धीरे सम्पत्ति का धार्मिक स्वरूप लुप्त होता गया। मिताक्षरा के अनुसार सम्पत्ति इहलौकिक वस्तु है, क्योकि इसका उपयोग सांसारिक लेन देन के लिए होता है।

मनुस्मृति के टीकाकारों के मतानुसार आर्यो मे सम्पत्ति का आशय पूरे परिवार से होता था जिसमें पुत्र, पुत्री, पत्नी तथा दास भी सम्मिलित थे। समाज के विकास के साथ पुत्र, पुत्री तथा पत्नी को सम्पत्ति की वस्तु या सम्पत्ति का अंग न समझकर उन्हे सम्पत्ति से पृथक अस्तित्व की मान्यता दी गई।

सम्पत्ति का प्रत्यय (Concept of Property)- भारतीय कानून मे सम्पत्ति का विधिक प्रत्यय वैसा ही होता है जैसा अंग्रेजी न्यायशास्त्र में। अंग्रेजी कानून बहुत कुछ रोमन कानून से प्रभावित है। सम्पत्ति शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं तथा स्वामित्व या स्वत्व, अर्थात स्वामी का प्राप्त संपूर्ण अधिकार।

अनुच्छेद 31-क में अन्तर्विष्ट उपबन्धों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमों और बिनियमों मे से और उनके उपबन्धों मे

से कोई आधार पर शून्य और कभी शून्य नहीं समझा जायेगा और वह अधिनियम, विनियम या उपबंध इस भाग के किन्हीं उपबंधो द्वारा प्रदत अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनता है या न्यून करता है और किसी न्यायालय या अधिकरण के किसी प्रतिकूल निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुये भी उक्त अधिनियमों और विनियमों में से प्रत्येक उसे निरसित या संशोधित करने की किसी सशक्त विधानमंडल की शक्ति के अधीन रहते हुए प्रवृत्त बना रहेगा।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. चेयरमैन, इंदौर बिकास प्राधिकरण बनाम त्योर इंडस्ट्रियल कोक एंड केमिकल्स 2007-8, एस0सी0सी0 705
2. सीखई, कान्स्टीच्युशनल ला ऑफ इंडिया, दूसरा संस्करण, जिल्द 3, पैरा 15 ए0 28 15 ए0 34 आदि।
3. डॉ0 पी0 के त्रिपाठी - ए0 आ0 आर 1980 जर्नल 49 - 52 में प्रकाशित लेख।
4. डॉ0 दुर्गादास बसु - शार्टर कान्स्टीच्युशनल ऑफ इंडिया, 12 वां संस्करण, पू0 873 और आगे।
5. जीलूभई बनाम गुजरात राज्य, ए0 आर0 आर0 1995 एस0 सी0 142
6. मेधमाला बनाम जी0 नरंसिम्ह रेडिड (2010) 8 एस0 सी0 सी0 383
7. के0 टी0 ब्लांटशंस (प्रा0) लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य (2011) एस0 सी0सी0
8. हिंदुस्तान टाइम्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2003) । एस0 सी0 सी0 591
9. धर्मदत बनाम भारत संघ (2004)। एस0 सी0 सी0 712
10. चंदीगढ़ हाउसिंग बोर्ड बनाम मेजर जनरल देवेन्द्र सिंट (2007) 9 एस0 सी0 सी0 67
11. राजीव सरीन बनाम उतराखंड राज्य (2011) 8 एस0 सी0 सी0 708

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

कृषि क्षेत्र की वित्तीय समस्याएं और समाधान हेतु सुझाव (विशेषकर खरगोन जिले के संदर्भ में)

* अशोक कोचले

सारांश- *भारत एक कृषि प्रधान देश हैं तथा यहाँ लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं तथा उनकी आजीविका का स्त्रोत कृषि कार्य हैं। इसलिए भारत के संबंध में कृषि साख का सर्वाधिक महत्व हैं। भारत कृषि प्रदान देश होते हुए भी कृषि के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ हैं, क्योकि भारतीय कृषि में अनेक कमियां हैं। भारत के कृषि क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं। राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान 17 प्रतिशत हैं। भारत का आर्थिक विकास ग्रामीण जीवन की प्रगति से संबंधित हैं और ग्रामीणों की उन्नति की आशा उसी समय की जा सकती हैं जबकि उनका आधारभूत और जीवन निर्वाह व्यवसाय कृषि उन्नत हों। यहां पर खेत छोटे-छोटे एंव बिखरे हुए हैं। अतः उत्पादन बहुत कम होता हैं कृषि उत्पादन में फसल बोने से लेकर काटने तक की अवधि काफी लम्बी एंव निश्चित होती हैं। किसान अपना उत्पादन बेंचे बिना पूजी नहीं जुटा सकता। भारत में खेती अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा किट आक्रमण आदि का शिकार होती हैं।*

मुख्य शब्द– कृषि प्रधान, अर्थव्यवस्था, पूंजी, ऋण, सहकारी, उदार ऋण नीति।

कृषि मूल्यों मे उच्चावचन होने से किसानों को हानि उठानी पड़ती हैं। कृषि व्यवसाय में बचत की राशि कम होने के कारण कृषकों के पास उपलब्ध पूँजी आवश्यकता से बहुत कम होती हैं जिसे वे दूसरों से ऋण लेकर पूरा करते हैं। किसान जब तक अपनी फसल काटकर विक्रय नहीं कर देता तब तक उसकी लगाई हुए पूँजी उसे वापस नहीं मिल सकती, अतः किसान के अपने घर के लिए, मजदूर की मजदूरी के लिए, खाद, बीज क्रय करने के लिए, पैदावार की बिक्री के लिए तथा बाजार तक पहुँचाने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती हैं। कृषि वित्त की पूर्ति साहूकार, सहकारी साख संस्थाएँ तथा भूमि विकास बंधक बैक, राष्ट्रीयकृत बैक, ग्रामीण बैंक, सरकार व अन्य वित्तीय विभागों के द्वारा की जाती हैं।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता– ऋणग्रस्तता से तात्पर्य उस ऋण राशि से हैं जिसका ऋणी द्वारा ऋणदाता संस्थाओं को भुगतान करना शेष हैं अर्थात् ऋणदाता संस्थाओं की कृषकों एवं अन्यों पर बकाया राशि का द्योतक होता हैं। ग्रामीण ऋणग्रस्तता भारतीय कृषि की प्रमुख समस्या हैं। कृषि देश का प्रमुख व्यवसाय होते हुए भी भारतीय कृषक ऋण के भारी बोझ से दबे हुए हैं, जिसके कारण कृषक कृषि उन्नत तरीकों को अपनाने के लिए

* बड़वाह, जिला-खरगौन (म.प्र.)

आवश्यक राशि में पूजी निवेश करने में असमर्थ होते हैं। कृषको की ऋणग्रस्तता भारतीय कृषि के अभिशाप है। कृषि रायल कमीशन ने वर्ष 1928 में अपने प्रतिवेदन में लिखा हैं कि ''भारतीय कृषक ऋण का बोझ कन्धें पर लेकर जन्म लेता हैं। ऋणग्रस्तता में पूरा जीवन व्यतीत करता हैं। ऋण में ही उसका अन्त हो जाता हैं और वह अपनी सन्तान के लिए भी ऋण का बोझ छोड़ जाता हैं इस प्रकार कृषकों पर ऋण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता हैं।

कृषकों की ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण कृषकों द्वारा सामाजिक उत्सवों, शादी, मृत्युभोज आदि कार्यो पर अधिक धनराशि का व्यय करना हैं। सामाजिक उत्सवों पर व्यय करने के लिए प्राप्त ऋण उत्पादन नहीं होता हैं। जिससे प्राप्त ऋण का बोझ कृषकों पर निरन्तर बढ़ता ही जाता हैं। निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता भारतीय कृषक के जीवन के अविभाज्य अंग बन गये हैं।

किसान परिवारों की ऋणग्रस्तता की स्थिति का विश्लेषण

खरगोन जिले के विषेष संर्दभ में वर्ष 2015-16 (ऋण हजार रूपयें में)

क्र.	विवरण	पूर्व वर्ष का ऋण		वर्ष में प्राप्त ऋण		वर्ष में भुगतान ऋण		कालातीत/[illegible] ऋण	
		राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
1.	अल्पकालीन ऋण (1 वर्ष तक)	3061	56.90	17861	77.40	18335	82.53	2587	41.43
2.	मध्यकालीन ऋण (1 से 3 वर्ष तक)	1284	23.87	3680	15.94	3500	15.76	1464	23.45
3.	दीर्घकालीन ऋण (3 वर्ष से अधिक)	1035	19.25	1538	6.66	380	1.71	2193	35.12
	योग–	5380	100	23079	100	22215	100	6244	100

स्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण द्वारा।

उपर्युक्त तालिका में किसान परिवारों की ऋणग्रस्तता कि स्थिति का विश्लेषण किया गया हैं। इसके अन्तर्गत तीनों प्रकार के ऋणों को सम्मिलित किया हैं, अल्पकालीन ऋण, मध्यकालीन ऋण तथा दीर्घकालीन ऋण। तालिका देखने से ज्ञात होता हैं कि ऋणों कि राशि में गतवर्ष के शेष में अल्पकालीन ऋण 56.90 प्रतिशत हैं, मध्यकालीन ऋण 23.87 प्रतिशत तथा दीर्घकालीन ऋण 19.25 हैं। इस प्रकार वर्ष में प्राप्त ऋण भी दर्शाया गया हैं जिसमें 77.40 प्रतिशत अल्पकालीन ऋण, 15.94 प्रतिशत मध्यकालीन ऋण तथा 6.66 प्रतिशत दीर्घकालीन ऋण हैं। वर्ष में भुगतान करने की स्थिति भी लगभग ऐसी ही हैं। भुगतान किए गए ऋणो में अल्पकालीन ऋण 82.53 प्रतिशत, मध्यकालीन ऋण 15. 76 प्रतिशत तथा दीर्घकालीन ऋण 1.71 प्रतिशत राशि हैं। स्थिति को देखने से ज्ञात होता हैं कि चुकाई गई ऋण स्थिति अच्छी नहीं हैं। किसानों के ऊपर वर्ष भर में ऋण भार बढ़ी हुई स्थिति में दे रहा हैं यह लगभग प्रति परिवार पूर्ण ऋण की राशि 10760 रू. हैं और वर्ष में लिये गये ऋण की राशि 46158 रू. हैं, इस प्रकार ऋण भार किसानों पर ऊंची राशि का बना हुआ हैं, हमारी दृष्टि में उनकी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा ऋण एवम् ब्याज चुकाने में खर्च हो जाता है। इस स्थिति में परिवर्तन होना चाहिए ताकि उनका जीवन स्तर वर्तमान समय की तुलना में ऊँचा उठ सकें।

कृषि एवं सहायक गतिविधियों में प्रदाय ऋण का विवरण
(राशि हजारों रू. में)

वर्ष	राष्ट्रीयकृत बैंक	निमाड़ क्षेत्रीय ग्रा. बैंक	जिला सह. केन्द्रीय बैंक	भूमि विकास बैंक	कुल ऋण बैंक
2001–02	267578	95318	641709	90834	1095439
2002–03	301400	188766	769619	79260	1339045
2003–04	512095	245812	1068057	51008	1876972
2004–05	554546	199419	1441875	41776	2237616
2005–06	822547	676595	2656500	74211	4229853

स्रोतः- अग्रणी बैंक योजना खरगोन (2001-06)

उपर्युक्त तालिका में कृषि एवम् सहायक गतिविधियों मे राष्ट्रीयकृत बैंको, निमाड़ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, जिला सहकारी बैंक व भूमि विकास बैंक द्वारा प्रदाय ऋण दर्शाया गया हैं। तालिका देखने से ज्ञात होता हैं कि राष्ट्रीयकृत बैंको का योगदान कृषि ऋण में वर्ष 2001-02 में कुल ऋण का 24.43 प्रतिशत था जोकि वर्ष 2005-06 घटकर 19. 45 प्रतिशत रह गया जो कि तुलनात्मक रूप से कम रहा राष्ट्रीयकृत बैकों द्वारा कृषि ऋण राशि को बढना चाहिए ताकि किसानों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके।

कृषि ऋण प्राप्ति की समस्याएँ–

कृषि ऋण अन्य उद्यमों के लिए प्राप्त ऋण से भिन्न होता हैं। इसका प्रमुख कारण कृषि उद्यम की कुल विशेषताओं का होना हैं, जिससे कृषि ऋण की समस्याएं अन्य व्यवसायों की ऋण समस्याओं से भिन्न होती हैं। इसी प्रकार भूमि विकास बैंक द्वारा प्रदाय ऋण वर्ष 2001-02 में 8.29 प्रतिशत था जो घटकर 1.75 प्रतिशत रह गया। मुख्य समस्यायें हैं-

1. मौसम की प्रतिकूतला 2. लम्बी अवधि हेतु ऋण राशि की मांग 3. जोतों का आकार छोटा होना 4. अवसर अनुसार ऋण आवश्यकता 5. उचित जमानत का अभाव 6. भुगतान क्षमता संदिग्ध 7. पूंजीगत व उपभोगगत ऋण भेद

कृषको की वित्त समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव–

बीज प्रदाय, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, पर्याप्त बिजली प्रदाय, लघु व कुटर उद्योगों का विकास। कृषि यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन शिक्षा के स्तर में वृद्धि,कृषि भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि करना, कालातीत न घोषित करना यदि कृषक कुछ राशि न चुका सके जितनी राशि कृषक द्वारा भुगतान कर दी जाये उतना पुनः ऋण प्रदान किया जाना चाहिए, किश्तों मे ऋण भुगतान की व्यवस्था प्रदान करना चाहिए यदि ऋण माफ किया जाये तो सिंचाई सुविधा, कृषि भूमि को ध्यान में रखना चाहिए ऋण प्रदाय औपचारिकताओं को कम व आसान किया जाना चाहिए, भ्रष्टाचार को समाप्त किया जाना चाहिए ईमानदार कृषक को समय पर ऋण चुकाने पर उन्हें पुरूस्कृत किया जाना चाहिए। फसल नष्ट होने पर उचित मूल्य दिया जाना चाहिए, विपणन व भंडारण सुविधाओं में वृद्धि, पैतृक ऋण पूर्णतः माफ किया जाना चाहिए, कृषि उपज व कृषि यंत्रों को चोरी से बचाने के लिए कृषि क्षेत्र पर पुलिस व्यवस्था कि जानी चाहिए।

निष्कर्ष– शोध पत्र से स्पष्ट हैं कि अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि एंव विकास दर का

संबंध कृषि ऋणों से सीधा-सीधा जुड़ाव है। आवश्यकता इस बात की हैं कि उदार ऋण नीति का लाभ सभी किसानों को मिलना चाहिए। अतः बैंकों को यह सुनिश्चित करना होगा कि देश के कृषि विकास हेतु कृषि क्षेत्र को प्रदत्त ऋणो की मात्रा एवं वसूली निष्पादकता बढ़नी होगी और नियमों में ढ़ील प्रदान करनी होगी, किन्तु यह कार्य बैंकों को पूर्ण सतर्कता के साथ करना होगा, जिससे बैंक तथा सरकार अपने कृषि ऋणों के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करके सफल हो सकेगे।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. भारतीय कृषि का अर्थतन्त्र (2000) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर अष्टम संस्करण 2000 एडी. एम. एल अग्रवाल।
2. जिला खरगोन, जिला सांख्यिकी पुस्तिका 2006
3. अग्रणी बैंक योजना खरगोन (2001-06)
4. डॉ. नागर विष्णु दत्त भारतीय अर्थव्यवस्था, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।
5. डॉ मेहता वल्लभदास भारतीय अर्थव्यवस्था, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

छत्तीसगढ़ राज्य के सीमेन्ट उद्योग में कार्यरत अकुशल श्रमिकों की रोजगार के प्रति संतुष्टि का अध्ययन (बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में)

* जितेन्द्र कुमार
** आर. पाण्डेय

सारांश– *आज के समय में औद्योगिक क्षेत्र अनेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जहाँ एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि किस प्रकार, श्रमिकों के मन में रोजगार के प्रति संतुष्टि एवं संयंत्र के प्रति लगाव की भावना विकसित किया जाय, जिससे औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हो। निश्चित रूप से शिक्षा, श्रमिकों की उत्पादकता एवं उत्पादन कुशलता के साथ–साथ रोजगार की संतुष्टि को भी प्रभावित करती हैं। इस प्रकार श्रमिकों की उत्पादकता एवं रोजगार में संतुष्टि हेतु श्रम कल्याणकारी मदों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिएँ एवं समय–समय पर विभिन्न श्रम अधिनियमों द्वारा श्रमिकों को मिलने वाली सुविधाओं को यथा–समय श्रमिकों को दिया जाना चाहिए।*

मुख्य शब्द– शिक्षा, सेवा अवधि, रोजगार के प्रति संतुष्टि।

1. **प्रस्तावना**– औद्योगीकरण आधुनिक युग का मौलिक आधार है, यही कारण है कि आधुनिक युग औद्योगिक युग का प्रतीक बन गया हैं। आधुनिक युग में मानव संसाधन प्रबंधन आसान कार्य नही है, इसी कारण वर्तमान समय में प्रबंधन की विशिष्ट विधा को अधिक महत्व दिया जाने लगा हैं। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में भारी उद्योगो का महत्वपूर्ण स्थान है, भारी उद्योग देश की दशा एवं दिशा को सुधारने में तथा देश और समाज के जीवन स्तर को व्यवस्थित करने में काफी हद तक सार्थक भूमिका निभाते हैं। इन्ही भारी उद्योगो में से सीमेंट उद्योग एक आधारभूत उद्योग हैं। विश्व में सर्वाधिक सीमेंट उत्पादक देशो में चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर हैं। ''एसोचैम'' के सर्वे से पता चला है कि देश में सरकारी एवं गैर–सरकारी दोनो क्षेत्रों में नौकरियाँ नियत मानदेय एवं ठेके पर दी जा रही है, यानी स्थायी नौकरी के अवसर तेजी से खत्म हो रहें हैं।

हमें यह समझना होगा कि आखिर भूमण्ड़लीकरण का लाभ देश की श्रमिक मानवता को क्यों नही मिल रहा हैं। श्रमिकों की शक्ति बेहद प्रभावित हुई हैं। वह आज देशी और विदेशी पूँजी के समक्ष बंधक के रूप में खड़ी हैं। इसी संदर्भ में किसी भी देश के आधारभूत उद्योगो में से सीमेंट उद्योग में लाखो श्रमिक कार्यरत हैं। सीमेंट उद्योग एक

* शोधार्थी, अर्थशास्त्र, अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
** प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर, संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

संगठित क्षेत्र होने के साथ-साथ केन्द्रीय मद का विषय भी हैं। सीमेंट उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की मजदूरी, भत्ते एवं विभिन्न सुविधाओं के संबंध में निर्णय केन्द्रीय शासन द्वारा लिया जाता हैं। अतः एक केन्द्रीय शासन नियंत्रित श्रमिक होने से, सीमेंट उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों का महत्व और बढ़ जाता है, तथा इस बात के अध्ययन की आवश्यकता पडती है कि श्रमिकों में शिक्षा का स्तर कितना है, संयंत्र में श्रमिकों की सेवा अवधि कितनी है तथा श्रमिक अपने रोजगार के प्रति संतुष्ट है या

2. अध्ययन का उद्देश्य-

1. श्रमिकों की शिक्षा स्तर ज्ञात करना।
2. श्रमिकों में रोजगार के प्रति संतुष्टि ज्ञात करना।
3. श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन कर सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध परिकल्पनाएँ-

1. श्रमिक अपने रोजगार के प्रति संतुष्ट हैं।
2. श्रमिकों को उद्योग में यथोचित सुविधाएँ मिलती हैं।

4. शोध प्रविधि-

1. **आँकड़ो का संकलन-** यह अध्ययन, प्राथमिक समंक पर आधारित हैं। प्राथमिक समंको का संकलन, प्रत्यक्ष साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया हैं।

2. **शोध प्ररचना-** प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में किया गया हैं। बलौदाबाजार जिले में स्थापित अल्ट्राटेक सीमेंट(हिरमी), ग्रासीम सीमेंट(रावन) एवं अंबुजा सीमेंट (रवान) में क्रमशः 840,1030,व 810 अकुशल श्रमिक कार्य करते हैं। अतः प्रत्येक संयंत्र से लगभग 15 प्रतिशत श्रमिकों का अर्थात् अल्ट्राटेक सीमेंट से 125 , ग्रासीम सीमेंट से 150 तथा अंबुजा सीमेंट से 125 श्रमिकों का सुविधानुसार चयन कर कुल 400 श्रमिकों का अध्ययन कर विश्लेषण किया गया हैं।

संयंत्र	कुल अकुशल श्रमिकों की संख्या	निदर्श श्रमिकों की संख्या
अल्ट्राटेक सीमेंट संयंत्र (हिरमी)	840	125
ग्रासीम सीमेंट संयंत्र (रावन)	1030	150
अंबुजा सीमेंट संयंत्र (रवान)	810	125
कुल श्रमिक संख्या	**2680**	**400**

स्त्रोत - व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित ।

3. **आँकड़ो का विश्लेषण-** संकलित प्राथमिक समंको के विश्लेषण में आवश्यकतानुसार सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया हैं।

सुत्र : काई वर्ग परीक्षण

अवलोकित आवृत्ति सारणी (f_0)

AB	aB	B
Ab	ab	b
A	a	N

अवलोकित आवृत्ति सारणी (f_0)

$(A \times B)/N$	$(a \times B)/N$	B
$(A \times b)/N$	$(a \times b)/N$	b
A	a	N

काई वर्ग की गणना = $(f_0-f_e)2/fe$

$(d.f.) = (r-1)\ (c-1)$

5. अध्ययन का विश्लेषण-

1. उत्तरदाता की शैक्षणिक स्थिति

तालिका 1

उत्तरदाता की शैक्षणिक स्थिति

शिक्षा स्तर	संयंत्र			कुल श्रमिक
	अल्ट्राटेक सीमेंट	ग्रासीम सीमेंट	अंबुजा सीमेंट	
अशिक्षित	**1** (0.8)	**6** (4)	**2** (1.6)	**9** (2.25)
प्राथमिक स्कूल	**18** (14.4)	**17** (11.33)	**33** (26.4)	**68** (17)
मीडिल स्कूल	**65** (52)	**62** (41.33)	**53** (42.4)	**180** (45)
हाई स्कूल	**40** (32)	**40** (26.67)	**34** (27.2)	**114** (28.5)
उच्च शिक्षा	**1** (0.8)	**25** (16.67)	**3** (2.4)	**29** (7.25)
कुल श्रमिक	**125**	**150**	**125**	**400**

स्त्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण। नोट- कोष्ठक में दी गई संख्या प्रतिशत में हैं।

तालिका क्रमाँक 1 में संयंत्र में काम करने वाले अकुशल श्रमिकों की शिक्षा स्तर का विश्लेषण किया गया हैं। सारणी के अनुसार निदर्श श्रमिकों में से 2.25 प्रतिशत श्रमिक अशिक्षित है, जिन्हे किसी भी भाषा को पढ़ने या लिखने का ज्ञान नही हैं। इसी प्रकार 17 प्रतिशत श्रमिक केवल प्राथमिक स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त कर पाये हैं। सबसे अधिक 45 प्रतिशत श्रमिक मिड़िल स्कूल तक शिक्षा प्राप्त किये हैं। हाई स्कूल तक शिक्षा 28.5 प्रतिशत श्रमिक तथा केवल 7.25 प्रतिशत श्रमिक ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाये हैं। इस प्रकार शिक्षा की कमी के कारण श्रमिक अपने हितों एवं अधिकारों के प्रति जागरूक नही होते हैं।

2. श्रमिक परिवार के बच्चों में उच्च एवं तकनीकी शिक्षा-

तालिका 2

श्रमिक परिवार के बच्चों में उच्च एवं तकनीकी शिक्षा

संयंत्र	उच्च शिक्षित बच्चों की संख्या			18 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों की संख्या
	उच्च शिक्षा	तकनी./व्यवसा. शिक्षा	कूल	
अल्ट्राटेक सीमेंट	**14** (26.41)	**11** (20.75)	**25** (47.17)	**53**
ग्रासीम सीमेंट	**21** (31.82)	**06** (9.09)	**27** (40.91)	**66**
अंबुजा सीमेंट	**30** (27.27)	**14** (12.73)	**44** (40)	**110**
कूल	**65** (28.38)	**31** (13.54)	**96** (41.92)	**229**

स्त्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण। नोट- कोष्ठक में दी गई संख्या प्रतिशत में हैं।

तालिका क्रमाँक 2 में श्रमिक परिवारों में बच्चों की उच्च शिक्षा एवं तकनीकी

शिक्षा की ओर झुकाव का विश्लेषण किया गया हैं। सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 18 वर्ष से अधिक आयु के कुल बच्चों में से सिर्फ 41.92 प्रतिशत बच्चें ही उच्च शिक्षा या तकनीकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। जिनमें से 28.38 प्रतिशत श्रमिक बच्चे उच्च शिक्षण संस्थानो में प्रवेश लेते है, जबकि केवल 13.54 प्रतिशत बच्चे तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण संस्थानो में प्रवेश लेते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि, सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा की ओर, श्रमिक परिवार के बच्चो का झुकाव बहुत कम हैं। इसका कारण श्रमिकों का कम शिक्षित होना, जागरूकता का अभाव होना एवं सबसे महत्वपूर्ण धन का अभाव होना हैं।

3. निदर्श श्रमिकों का संयंत्र में सेवा अवधि-

तालिका 3, निदर्श श्रमिकों का संयंत्र में सेवा अवधि

सेवा अवधि (वर्षो में)	संयंत्र			कुल श्रमिक
	अल्ट्राटेक सीमेंट	गासीम सीमेंट	अंबुजा सीमेंट	
01 — 05	20 (16)	44 (29.33)	37 (29.6)	**101 (25.25)**
05 — 10	48 (38.4)	41 (27.33)	48 (38.4)	**137 (34.25)**
10 — 15	33 (26.4)	32 (21.34)	28 (22.4)	**93 (23.25)**
15 से अधिक	24 (19.2)	33 (22)	12 (9.6)	**69 (17.25)**
कुल निदर्श श्रमिक	**125**	**150**	**125**	**400**

स्त्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण। नोट- कोष्ठक में दी गई संख्या प्रतिशत में हैं।

तालिका क्रमाँक 3 से स्पष्ट है कि 1-15 वर्षो के बीच सेवा देने वाले श्रमिकों का प्रतिशत 25.25 हैं। इसी प्रकार 34.25 प्रतिशत श्रमिक 5-10 वर्षो के बीच से काम करते आ रहें हैं। इसी प्रकार 10-15 वर्षो से 23.25 प्रतिशत श्रमिक एवं 17.25 प्रतिशत श्रमिक 15 वर्षो से भी अधिक समय से काम करते आ रहे हैं। इस प्रकार 40.5 प्रतिशत श्रमिक संयंत्र में 10 वर्षो से भी अधिक समय से कार्यरत हैं।

4. **श्रमिकों का रोजगार के प्रति संतुष्टि**- रोजगार के प्रति संतुष्टि का अर्थ, ''श्रमिक अपने काम की प्रकृति, कार्य स्थल का पर्यावरण, कार्यस्थल में व्यवहार, वर्तमान मजदूरी या अन्य किसी कारण से नाखुश हों'' से लगाया गया हैं। इस प्रकार श्रमिकों की वर्तमान रोजगार के प्रति संतुष्टि या असंतुष्टि का अध्ययन रोजगार के प्रति श्रमिकों की मानसिक दशा का खुलासा करेंगा।

तालिका 4, श्रमिकों का रोजगार के प्रति संतुष्टि

मदें	संयंत्र			कुल
	अल्ट्राटेक सीमेंट	ग्रासीम सीमेंट	अंबुजा सीमेंट	
संतुष्ट	66 (52.8)	87 (58)	77 (61.6)	**230 (57.5)**
असंतुष्ट	59 (47.2)	63 (42)	48 (38.4)	**170 (42.5)**
कुल	**125 (100)**	**150 (100)**	**125 (100)**	**400 (100)**

स्त्रोत- व्यक्तिगत सर्वेक्षण। नोट- कोष्ठक में दी गई संख्या प्रतिशत में हैं।

तालिका क्रमांक 4 में श्रमिकों की रोजगार के प्रति संतुष्टि का अध्ययन किया गया हैं। तालिका के विश्लेषण से पता चलता है कि अल्ट्राटेक सीमेंट संयंत्र, हिरमीं में कार्यरत 52.8 प्रतिशत श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट है, जबकि ग्रासीम सीमेंट संयंत्र, रावन में कार्यरत 58 प्रतिशत श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट हैं। अंबुजा सीमेंट संयंत्र, रवान में कार्यरत सबसें अधिक 61.6 प्रतिशत श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट हैं। इसी प्रकार कुल निदर्श श्रमिकों में 57.5 प्रतिशत श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट है, जबकि 42.5 प्रतिशत श्रमिक अपने रोजगार से असंतुष्ट हैं।

शून्य परिकल्पना परिक्षण-

1) शून्य परिकल्पना - श्रमिक अपने रोजगार के प्रति संतुष्टि हैं।
2) वैकल्पिक परिकल्पना - श्रमिक अपने रोजगार के प्रति संतुष्टि नहीं हैं।

शून्य परिकल्पना परीक्षण के लिए श्रमिकों के शिक्षा स्तर एवं संतुष्टि के बीच काई वर्ग परीक्षण (X_2) विधि का उपयोग किया गया हैं। जिनके लिए कुल निदर्श श्रमिकों को निम्नलिखित मदों में विभाजित किया गया है-

A= कम शिक्षित, a = अधिक शिक्षित

B= संतुष्ट, b= असंतुष्ट

यहाँ कम शिक्षित श्रमिक के अन्तर्गत मिड़िल स्कूल तक शिक्षित श्रमिकों को शामिल किया गया है एवं अधिक शिक्षित श्रमिकों की श्रेणी में हाई स्कूल से अधिक शिक्षित श्रमिकों को शामिल किया गया हैं।

शिक्षा स्तर	**संतुष्टि**		**कुल**
	संतुष्ट	असंतुष्ट	
कम शिक्षित	179	78	**257**
अधिक शिक्षित	51	92	**143**
कुल	**230**	**170**	**400**

अवलोकित आवृत्ति सारणी (f_0)

179	78	**257**
51	92	**143**
230	**170**	**400**

प्रत्याशित आवृत्ति सारणी (f_e)

147.78	109.22	**257**
82.22	60.78	**143**
230	**170**	**400**

काई वर्ग की गणना (X^2)

गुण–वर्ग	f_0	f_e	(f_0-f_e)	$(f_0-f_e)^2$	$(f_0-f_e)^2/f_e$
AB	179	147.78	31.22	974.69	6.60
Ab	51	82.22	-31.22	974.69	11.85
aB	78	109.22	-31.22	974.69	8.92
ab	92	60.78	31.22	974.69	16.04
					x^2=43.41

d.f. = (c-1) (r-1) = (2-1) (2-1) = 1

5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर 1 स्वातन्त्र्य-संख्या के लिए काई वर्ग का सारणी मूल्य 3.84 है जबकि काई वर्ग का परिगणित मूल्य 43.41 है जो कि काई वर्ग के सारणी मूल्य से अधिक है, अतः हमारी परिकल्पना असत्य है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा तथा रोजगार के प्रति संतुष्टि स्वतन्त्र नहीं हैं। वस्तुतः शिक्षा स्तर एवं रोजगार के प्रति संतुष्टि में संबंध हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सीमेंट उद्योग में शिक्षित श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट नहीं हैं।

निष्कर्ष–

(1) सीमेंट उद्योग में कार्यरत अधिकांश श्रमिक बहुत कम शिक्षित है, जिससे उनको अपने अधिकारों एवं कर्तव्यो के प्रति जागरूकता नही हैं।

(2) सीमेंट उद्योग में कार्यरत श्रमिक परिवारों के बहुत कम बच्चे उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश लेते है एवं श्रमिक परिवार के बच्चो में तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण की ओर रूचि बहुत कम हैं।

(3) सीमेंट उद्योग में कार्यरत अधिकांश श्रमिक 10 वर्षो से भी अधिक समय से संयंत्र में कार्य कर रहें है।

(4) सीमेंट उद्योग में उद्योग में कार्यरत अधिकांश श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट नही हैं। सबसे अधिक अंबुजा सीमेंट संयंत्र में कार्यरत श्रमिक अपने रोजगार से संतुष्ट है एवं रोजगार के प्रति सबसे कम संतुष्टि अल्ट्राटेक सीमेंट संयंत्र में कार्यरत श्रमिकों में हैं।

समस्याएँ–

(1) श्रमिक कल्याण- ठेकेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत काम करने वाले श्रमिकों को विभिन्न प्रावधानों के द्वारा समय-समय पर मिलने वाले लाभो, को यथा-समय नही दिया जाता, इसे प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को हड़ताल का सहारा लेना पड़ता हैं।

(2) स्थानीय शिक्षित बेरोजगारी - संयंत्र के आस-पास के क्षेत्रो में रहने वाले स्थानीय शिक्षित बेरोजगारों को संयंत्र में किसी सम्माननीय पदों पर रोजगार नही दिया जाता हैं।

(3) अनुभव का लाभ- सीमेंट उद्योग में कार्यरत श्रमिक, अकुशल श्रमिकों के रूप में लगातार अनेक वर्षो तक एक ही काम को करते रहने के कारण, उस काम में कुशल बन जाता है परन्तु श्रमिकों को अकुशल से अर्द्धकुशल एवं कुशल की ओर आगे नही बढ़ाया जाता हैं।

(4) शिक्षा का अभाव- सीमेंट उद्योग में कार्य करने वाले अधिकांश श्रमिक एवं श्रमिक परिवारों के अधिकांश सदस्यों की शिक्षा स्तर बहुत कम है, जिसके कारण श्रमिक परिवार शिक्षा के महत्व को नही समझ पाते, जिससे श्रमिक परिवार में बच्चों का मानसिक विकास नही हो पाता और वे भी अकुशल रह जाते हैं।

(5) न्यूनतम मजदूरी की अवधारणा- न्यूनतम मजदूरी की अवधारणा नियुक्त श्रमिकों को शोषण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए है, परन्तु संयंत्र में कार्यरत अधिकांश श्रमिक 15 से 20 वर्षो से कार्यरत है, जिनको वरिष्ठता नही मिल पाता हैं।

सुझाव-

(1) **श्रमिकोन्मुख नीतियों का निर्माण- आज विकास जरूरी है, लेकिन जहाँ उत्पादन नीति को लाभकारी बनाना है, वही आर्थिक नीतियों को श्रमिकोन्मुखी बनाने की भी जरूरत है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिएँ कि श्रम एवं पूँजी के बीच विकास एवं उसके प्रतिफल का न्यायोचित वितरण हो।**

(2) **सशक्त शिक्षा व्यवस्था - ग्रामीण क्षेत्रो में जहाँ श्रमिक परिवार निवास करते है वहाँ बोर्डिंग स्कूलों, उच्च शिक्षण संस्थानो एवं व्यवसायिक संस्थानो की स्थापना की जानी चाहिएँ, ताकि ग्रामीण विद्यार्थियों को भी सशक्त एवं वर्तमान प्रतियोगी पर्यावरण के अनुसार शिक्षा का लाभ मिल सके।**

(3) **पदोन्नति की व्यवस्था - श्रमिकों को संयंत्र में लगातार काम करने के अनुभव के आधार पर, एक समय के पश्चात् स्वतः ही अकुशल से अर्द्धकुशल एवं कुशल की ओर बढ़ाये जाने की व्यवस्था होनी चाहिएँ, जिससे श्रमिकों को कार्यानुभव का लाभ मिल सके।**

(4) **सुविधाओं का लाभ- श्रमिकों को समय-समय पर विभिन्न अधिनियमों के द्वारा मिलने वाली सुविधाओं का यथा-समय दिया जाना चाहिएँ, ताकि श्रमिकों में असंतोष व्याप्त न हो एवं कामबंदी, तालाबंदी आदि का सहारा न लेना पड़े।**

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. अग्नीहोत्री, श्रीधर, (1973) ''कानपुर कारखाना में श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति''।
2. अग्रवाल, कुमारी अल्का, (2000) ''सेंचुरी सीमेंट बैकुंठ में श्रम प्रबंध''।
3. बर्मन, कुमारी नूतन, (2000) ''सतीश स्टील इण्डस्ट्री में श्रम''।
4. दुबे, दिपक कुमार, (1996) ''बी. आर. पी. प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी''।
5. साहू, जितेन्द्र कुमार, (1997) ''औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिकों की परिवेदना का अध्ययन''।
6. Dharmveersingh, (1963)' Social and Economic welfare services in Uttar Pradesh' Unpublished thesis submitted to Agra university, Agra.
7. Singh, Randhir kumar and Gaur Hari, (2009) 'Welfare measures and its Impact on Manpower Productivity'.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

मेवाड़ के मध्यकालीन दरबारी जीवन की विशिष्ट प्रथाऐं

* अंजना बारठ

सारांश– *मेवाड़ के राजवंश का इतिहास अत्यन्त दीर्घकालीन रहा है, जिससे संस्कृति के विभिन्न पक्षों का समावेश है, मेवाड़ी राजवंश में दरबार के जीवन से सम्बन्धित समस्त कार्यव्यवहार, शिष्टाचार, परम्परा ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को समृद्व व गौरवशाली बनाया है, दरबारी परम्पराऐं अलिखित होते हुए भी सभी को स्वीकार्य थी, जिसने मेवाड़ को अत्यन्त गौरवशाली इतिहास का साक्षी भी बनाया है, इन गौरवशाली प्रथाओं व परम्पराओं ने मेवाड़ के राजनीतिक परिदृष्य को भी प्रेरणा दी है, इसी धरा पर हमें पन्नाधाय के बलिदान, सांणा व प्रताप का मातृभूमि के प्रति प्रेम, चूंडा का त्याग आदि अनेकानेक उदाहरण मिलते है, मेवाड़ के दरबारी जीवन में सांस्कृतिक धरोहरों की भरमार है, दरबारी जीवन की कुछ विशिष्ट प्रथाओं का उल्लेख इस अध्ययन में किया गया है।*

मुख्य शब्द– दरबारी परम्परायें, जुहार, मुज़रा, ताजीमी ठिकाने, लवाजमा, चँवर, अंगरखी

मुजरा– राजस्थान में मध्यकालीन सामन्त व्यवस्था में 'मुजरा' प्रशासन की एक प्रमुख प्रथा थी, 'मुजरे' से तात्पर्य रियासत कालीन प्रणाम हाजिरी विधि से है, मेवाड़ में अभिवादन के लिये 'जुहार' शब्द का प्रयोग गरिमापूर्ण माना गया है, जुहार शब्द का अर्थ है कि आर्य लोग प्राचीन रीतियों के अनुसार नित्य प्रथम अग्नि का कुशल पूछते थे, अर्थात् जुहु होम की अग्नि और आर अर्थात् मंगल। इसी रीति से जब कोई इस श्रेणी का सरदार महाराणा से सलाम करता है, उस समय छड़ीदार लोग ऊँची आवाज में पुकारते है, कि, ''करे जुहार अमुक राजा, ठाकुर, राव या रावत'' आदि।[1]

महाराणा की ओर से उमरावों-सरदारों को भेजे जाने वाले रूक्को, परवानों तथा महाराणा को नजर होने वाली अर्जियों में अभिवादन स्वरूप 'जुहार' शब्द का प्रयोग होता रहा है।[2]

'जुहार' के साथ ही कहीं-कहीं 'प्रसाद' 'सुप्रसाद' शब्द भी मिलते है, 'मुजरा' मुगल काल में अन्य रियासतों के सम्पर्क से मेवाड़ में भी प्रचलित हुआ, परन्तु मेवाड़ की परम्परा में 'जुहार' सर्वाधिक प्रचलन में था।

ऐसी परम्परा थी कि दशहरे पर सारे ठिकाने वाले, सरदार, जागीरदार उदयपुर दरबार में 'मुजरा' करने के लिये आते थे, अर्थात् उदयपुर दरबार को अपनी सैनिक सेवाऐं देनी पड़ती थी, अलग-अलग ठिकानों के लिये अलग-अलग सैनिक सेवाऐं मुकर्रर थी।[3] महाराणा की ओर से उमरावों को जो रूक्के भेजे जाते थे, उसमें स्वस्ति श्री ....

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर राजस्थान।

.... हुजुर म्हारों 'जुहार' मालूम व्हे? तथा अन्य सरदारों को स्वस्ति श्री .... म्हारों 'जुहार' बांचे लिखा जाता था। ठिकानेदार रूक्का मिलने पर अर्जी भेजकर राजधानी पहुंचने का दिन एवं समय की सूचना देता था। उपस्थित होने में असमर्थ होने पर सूचना भेजी जाती थी। बिना कारण बताए अनुपस्थित रहना अशिष्टता एवं महाराणा का विरोध माना जाता था।

''यदि महाराणा किसी रास्ते से गुजरते समय किसी उमराव की हवेली के पास से निकले और उमराव हवेली में हो, तो महाराणा अपना चौबदार भेजकर उस उमराव को 'जुहार' कहलाता था। तब वह उमराव भी अपना आदमी भेजकर महाराणा को 'जुहार' कहलाता था।''[4]

मेवाड़ के जागीरदार जब राजधानी पहुंचते थे, तो प्रत्येक अपने कुरब-कायदे के अनुसार प्रवेश करते थे, बनेड़ा राजाधिराज का स्वागत करने स्वयं महाराणा सूरजपोल या हजारेश्वर महादेव में स्थित स्थल पर पधारते थे, वहीं नजर न्यौछावर होती थी, इसके बाद राजाधिराज अपनी हवेली जाते थे, अन्य ठिकानेदार राजधानी पहुंच कर महाराणा को 'जुहार' मालूम करा देते थे।

पान बीड़ा– मेवाड़ के दरबार की शिष्टाचार सम्बन्धी परम्पराओं में पान बीड़ा का महत्व अत्यन्त अनूठा है, पान बीड़ा के माध्यम से महाराणा अपनी भावना व्यक्त करते थे। बीड़े बनाने का कार्य तंबोली करते थे, चितौड़ जिले में तम्बोलिया गांव दो हजार वर्ष पूर्व तम्बोलियों ने बसाया था, यह जाति पान का परम्परागत व्यवसाय करती है।

बीड़े बनाने का कार्य करने के लिये एक अलग विभाग तम्बोलखाना था, जिसका मुख्य अधिकारी 'खवासजी' था।

साधारण पान बीड़े का प्रयोग महाराणा, रानियां एवं राजव्यवस्था से सम्बन्धित लोग 'मुखवास' के रूप में करते थे, मेवाड़ में 2 बीड़ो का महत्व विशेष है, दरीखाने का बीड़ा व सीख का बीड़ा। मेवाड़ में इन बीड़ो को पाने का अधिकार प्रथम श्रेणी के ताजीमी ठिकानों को प्राप्त था, जो इस प्रकार है :-

सादड़ी, बेदला, कोठारिया, सलुम्बर, बिजोलिया, देवगढ़, बेगू, देलवाड़ा, मेजा, आमेट, गोगुन्दा, कानोड़, भीण्डर, बदनोर, भैंसोरगढ़, गान्सी, कुराबड़, पारसोली, सरदारगढ़, बनेड़ा, शाहपुरा, करजाली, शिवरती, मऊवाड़ा।[5]

नजर, नछरावल एवं दरबार की मुख्य कार्यवाही सम्पूर्ण हो जाने पर दरीखाने का बीड़ा नजर किया जाता है, पान बीड़े में सींके लगाने के बारे में भिन्न-भिन्न मत मिलते है, अतः निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इन बीड़ो की आकृति गोल होती थी। उदैपुर सोले उमरावानु सात सींके रो बीड़ो दिरी जै।

देश निकालो है जिणनो तीन सींक रौ बीड़ो दै।

-(बाँकीदास री ख्यात, जोधपुर, पृष्ठ-100)

सीख का बीड़ा लम्बी आकृति का होता था यह बीड़ा दरीखाने के विसर्जन का संकेत होता था। अपनी चाकरी की अवधि समाप्त करने के बाद जागीर लौटने से पूर्व उमरावों को 'सीख का बीड़ा' महाराणा से लेना अनिवार्य था।

दशहरा, दीवाली आदि मुख्य त्यौंहारों पर पान बीड़ा महाराणा की ओर से ठिकानेदारों की हवेलियों पर भेजी जाती थी। गणगौर, दशहरा एवं अन्य मुख्य त्यौंहारों पर

भी बीड़े वितरित किए जाते थे। महाराणा किसी विशिष्ट अतिथि का स्वागत करते थे, अथवा कोई विशिष्ट व्यक्ति महाराणा की अपनी हवेली में पधरावणी करता था, उस समय सोने के वर्क से सुशोभित सुखे मेवे से पूर्ण बीड़े नजर किए जाते थे। कपुरी बीड़े का भी उल्लेख मिलता है, शोक निवारण में भी पान बीड़ो का महत्व था।

लवाजमा– महाराणा एवं जागीरदारों के स्वागत, प्रस्थान एवं सार्वजनिक उत्सवों में उपस्थिति के समय जिन साधनों का प्रयोग किया जाता था, उनकी सामूहिक संज्ञा लवाजमा थी। बड़ी सादड़ी के राजराणा को महाराणा के समान लवाजमा रखने का अधिकार था। नियमों के अनुसार प्रत्येक ठिकाने को लवाजमा रखने का अधिकार था। चँवर केवल महाराणा पर ही खुलते थे। घोड़ो को स्वर्ण आभूषण पहनाने का अधिकार जिन ठिकानों को मिला हुआ था वे ही पहना सकते थे, शेष चांदी के आभूषण से ही घोड़ों को सजाते थे।

महाराणा की विशेष अवसरों पर पहनी जाने वाली अंगरखी को पीछे एवं पार्श्व से दोनों हाथों से उठाकर साथ चलने वालों को चरू कहा जाता था। महाराणा की चरू उठाना गौरवपूर्ण विशेषाधिकार माना जाता था। यह विशेषाधिकार वीरमदेवोत राणावतों के ठिकानों काकरवा, पहुँना और जीवाणा के पास सुरक्षित था।

मुहुर्त की शिकार– मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को मुहुर्त का शिकार होता था। इस दिन राज्य के सेवकों को गहरे हरे रंग के रूमाल दिए जाते थे। महाराणा सभ्यगणों सहित शिकारी रंग की पोशाक में नक्कारे की जुलूसी सवारी के साथ जिस दिशा का मुहुर्त होता था, उस दिशा में पधारते हैं, तथा सुअर आदि जानवरों का शिकार करते थे, सरदारों को फूलों के चौसरे प्रदान किये जाते थे, शिकार होने के पश्चात् सरदार, पासवान आदि सभी सेवकों की नज़्रें ली जाती है। बाद में चारण कवि लोग कविता सुनाते है। इस दिन से सुअर का शिकार शुरू होता है।[6]

पौष शुक्ल 15 को 'फूस गज्' का तमाशा होता था। इस दिन बड़े महलों के चौक में फूस का एक हाथी बनाया जाकर काले कपड़े से ढ़क दिया जाता था, और उस पर एक बनावटी महावत भी बैठा दिया जाता था। इसके बाद लड़ाई का हाथी लाया जाता है, जो उस बनावटी हाथी को देखते ही लपक कर उसे बिखेर डालता है।[7]

अमर वलेवा– महाराणा की ओर से जागीरदारों को, खास चाकरी के उपलक्ष्य में विशेष सम्मान स्वरूप रियासत की ओर से हाथी अथवा घोड़ा दिया जाता था, जो उस ठिकाने में सदैव कायम रहता था, अर्थात् एक पशु के छूट जाने पर ठिकाने से सूचना आने पर नया भेज दिया जाता था, इसको अमर वलेवा कहा जाता था। अमर वलेवा में हाथी का गौरव शाहपुरा को प्राप्त था।

आण– मध्यकालीन मेवाड़ में न्याय का स्त्रोत धर्मशास्त्र एवं सामाजिक आदर्श व दण्ड के नियम स्मृति पर आधारित थे, महाराणा ही अन्तिम न्यायाधीश होता था तथा उसकी इच्छा ही कानून। मेवाड़ में एक ऐसी ही परम्परा थी 'आण' की। आण का अर्थ है, सौगन्ध। इसके अनुसार अगर कोई कर्जदार अपने कर्ज को अदा करने में विलम्ब अथवा टालमटोल कर रहा हो तो कर्जदाता उसे महाराणा की 'आण' (शपथ) दिला देता तो उसको 'आण' की समय सीमा में ही कर्ज को चुकाना पड़ता था। वह आण की उपेक्षा नहीं कर सकता था, आण की अवहेलना करने पर दण्ड का भागीदार माना जाता था।

यह प्रथा मेवाड़ के जनमानस में गहरी पैठ गई थी।

इसलिये जब दिसम्बर-1863 में इसे गैर-कानूनी घोषित किया गया तो उदयपुर के जनमानस ने इसका विरोध किया। शताब्दियों से चली आ रही प्रथा को समाप्त करने की घोषणा के विरूद्व उदयपुर में प्रथम बार अनिश्चितकालीन हड़ताल का आव्हान किया गया। स्थिति पर पुर्नविचार करने के आवाश्वासन पर ही हड़ताल समाप्त की गई।

मेवाड़ में उक्त प्रथाओं के अलावा अनेक पारम्परिक प्रथाऐं का अस्तित्व था, इन प्रथाओं ने मेवाड़ के सांस्कृतिक कलेवर को और अलंकृत किया है, तथा भारत की विशिष्ट संस्कृति को और वैभवशाली व गौरवपूर्ण बनाया है।

उक्त प्रथाओं के अतिरिक्त दीवाली पर हीड सिंचवाना, सिलह की सवारी, केसरिया अंगरखी, होली पर फाग का उत्सव, धुलण्डी पर एडा की शिकार, घुड़चढ़ी, टीका दौड़, खल्ला, तासली, नगारा, चौकी, सवाई चाकरी, पाटवी, सिरोपाव, सिरावणी, मूंडकटी, दस्तपोशी, पधरावणी, मिजाजपुर्सी आदि अनगिनत परम्पराऐं, प्रथाऐं प्रचलित थी, इनका सामाजिक साँस्कृतिक महत्व तो था ही साथ ही इन प्रथाओं ने महाराणा एवं अनेक उमरावों के बीच सम्बंधों को और दृढ़ता प्रदान की है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. श्यामलदास (1986), वीर विनोद भाग-1 मंयक प्रकाशक, जयपुर-पृष्ठ-58
2. शर्मा धर्मपाल (1999), मेवाड़ संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर-पृष्ठ-128
3. चूड़ावत रानी लक्ष्मी कुमारी व स्वर्णकार डॉ. रमेश चन्द्र (2006), रजवाड़ों की सांस्कृतिक परम्परा, जैना पब्लिशर्स-पृष्ठ-17
4. ऐजेन्सी रिकार्ड फाईल नं.-8, 1858 पृष्ठ-81 एवं 117 (डॉ. प्रकाश व्यास-मेवाड़ राज्य राज्य का इतिहास से उद्धृत)
5. प्रसाद, सुखदेव, मेवाड़ अण्डर महाराणा भूपालसिंह जी (पृ.1935)
6. श्यामलदास (1986), वीर विनोद भाग-1 मंयक प्रकाशक, जयपुर- पृष्ठ-45
7. श्यामलदास (1986), वीर विनोद भाग-1 मंयक प्रकाशक, जयपुर-पृष्ठ-46

अन्य संदर्भ ग्रंथ –

1. टॉड कर्नल, एनल्स एंड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान।
2. गोगुन्दा की ख्यात-प्रताप शोध प्रतिष्ठान सं. डॉ. हुकमसिंह भाटी।
3. श्यामलदास, वीर विनोद, मंयक प्रकाशक, जयपुर।
4. औझा, गौरीशंकर, हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, वैदिक यंत्रालय, अजमेर।
5. शर्मा, धर्मपाल, मेवाड़ संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर।
6. व्यास प्रकाश-मेवाड़ राज्य का इतिहास।
7. वाल्टर्स सी.के.एफ.-बायोग्राफिकल स्केचेज ऑफ दी चीस ऑफ मेवाड़।
8. पुरोहित राजेन्द्र नाथ, मेवाड़ दरीखाने के रीति रिवाज एवं संस्कार।
9. जे.सी. बुक, हिस्ट्री ऑफ मेवाड़।
10. मुहणौत नैणसी की ख्यात।
11. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास।
12. चूंडावत लक्ष्मीकुमारी व स्वर्णकार रमेशचंद-राजस्थान के रीति रिवाज।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

मलिका किश्वर साहिबा ''जनाव ऑलिया''
अवध की एक उर्जावान बेंगम की कहानी

* नरेन्द्र सिंह

सारांश– *अवध का नाम जहन में आते ही अदब और तहजीब का ख्याल आता है। इस अदब और तहजीब को विकसित करने का श्रेय वहाँ के नबावों और बेगमों को जाता है। अवध की बेगमों एक मशहूर नाम ''मलिका किश्वर साहिबा' का आता है जो कि अवध के चौथे बादशाह अमजद अली शाह की खास महल थी तथा बाजिद अली शाह की माँ थी। मलिका किश्वर अपनी उच्च जीवन शैली के लिए अवध में मशहूर थी। उनके बारें में यह बात प्रसिद्ध थी कि उन्होंने सख्त जरूरत पड़ने पर ही अपने दर–ए–दौलत के बाहर कदम रखा लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि उन्हें अपने बेटे बाजिद अली शाह का तख्त ओर ताज मांगने के लिए इंग्लैण्ड जाना पड़ेगा तथा जिसकी कब्र के लिए अवध की जमीन भी नसीब नही होगी।*

मुख्य शब्द– अदब, तहजीब, नवाब, बेगम, शिया मुस्लिम।

18वीं. सदी में अवध में शिया मुस्लिम रियासत की स्थापना सआदत खाँ 'बुराहनुमुल्क' ने मुगल बादशाह रोशन अख्तर 'मो0 शाह रंगीले' के समय की थी। सआदत खाँ के बाद सफदर जंग, शुजाउदौला, आसफउद्दौला वजीर अली, सआदत अली, नासिरूद्दीन हैदर, गाजीउद्दीन हैदर, अमजद अली शाह तथा बाजिद अली शाह के समय में अवध की जो सांस्कृतिक प्रगति हुई उसके कारण वह हिन्दुस्तान में अदब और तहजीब का प्रतीक बन गया। इस अदब और तहजीब को विकसित करने में नवाबों के साथ बेगमों ने भी महत्पूर्ण भूमिका अदा की।

अवध की प्रमुख बेगमों एक प्रसिद्ध नाम मलिका किश्वर का आता है जिनका पूरा नाम 'मलिका किश्वर फकृ-ए-जमानी नबाव ताज आरा बेगम' था इन्हें प्राय 'जनाव आलिया' के नाम से जाना जाता है। यह अवध के छठे नबाव सआदत अली की पोती तथा कालपी के नबाव हसीमुद्दीन की बेटी थी इनका जन्म 1803 में हुआ था तथा यह अवध के चौथे बादशाह व 8वे नबाव अमजद अली शाह की खास महल (पत्नी) तथा मिर्जा कैसर जमां बाजिद अली शाह की माँ थी।

अवध के नबावी दौर में मलिका किश्वर जैसी शर्मदार और सलीका पसन्द बेगम का जबाव नहीं मिलता। बेगम ने अपनी उच्च जीवन शैली और हाजिर जबावी से एक अलग छाप छोड़ी इनके बारे में मशहूर था कि वह सुबह सोकर उठने के बाद गुनगुने पानी के हौज में उतरती थी तो वहाँ उन्हें वही बूढ़ी खादिमाएँ नहलाती थी जो उन्हें बचपन से

* सहायक प्रोफेसर, राजकीय महिला महाविद्यालय कुरावली, मैनपुरी।

नहलाती आयी थी। इसी प्रकार बेगम को ख्वाजासाराओ (हिजड़ो) की खिदमद पंसद नहीं थी अतः उनके महल में कनीजो के अलावा कोई नही रहता था तथा महल में उनकी हिफाजत के लिए पिस्तौल डाले तातारी महिलाएं हमेशा तैयार रहती थी।

जनाब आलिया की शान और शौकत का आलम यह था कि वह एक बार जिस पोशाक को पहन लेती थी उसे दोबारा पहनने का प्रश्न ही नहीं था उस पोशक को बांदियो में बांट दिया जाता था लेकिन इससे पहले उसकी सिलाई की बखिया उधेड़ दी जाती थी ताकि बेगम के जिस्म की रूप रेखा को आंका न जा सके। इसी प्रकार बेगम को आभूषणों का भी बहुत शौक था जबानी में बेवा होने के बाद भी उन्होंने सिर्फ सुहाग की नथ से परहेज किया था।

जनाव आलिया मौसम के हिसाब से लखनऊ में अलग-अलग स्थानो में पर रहा करती थी। जाड़े के वह छत्तर मंजिल, गर्मियों में चौलक्खी कोठी तथा बरसात मे हवेली द्वारकादास में रहा करती थी। इसी प्रकार बेगम राजनीति में भी पूरी दखल रखती थी। महल में उनका जनाना दरबार लगता था जिसमें राज्य के विभिन्न भागों से सभी वर्गों की महिलाएं आकर अपनी शिकायतें व उपहार आदि पेश करती थी इसके अलावा वह अपने बच्चों के विवाह सम्बन्धी विषयों पर भी निर्णय लेती थी उन्होंने अपने पुत्र बाजिद अली शाह की आठ बीबियों की शादी को मंजूरी नहीं दी थी, इसमें बेगम हजरत महल भी शामिल थी। जनाव आलिया एक शिक्षित महिला थी वह पति की मृत्यु के बाद अपना अधिकांश समय कुरान के पाठ में व्यतीत करती थी।

बेगम को सैर सपाटा बिल्कुल ही पसन्द नहीं था इसलिए वह बिना सख्त जरूरत अर्थात् धार्मिक उत्सव या पारिवारिक उत्सवों को छोड़कर कभी भी दरे-दौलत के बाहर कदम नहीं रखा लेकिन नियति को कुछ ओर ही मंजूर था कि उन्हे अपने बेटे बाजिद अली शाह के ताज को माँगने के लिए महारानी बिक्टोरिया के पास लंदन जाना पड़ा।

जब 1856 में कम्पनी के रेजीडेण्ट सर जेम्स आउट्रम ने गवर्नर जनरल का आदेश सुनाया जिसके तहत अवध पर कम्पनी का शासन रहेगा तथा बादशाह को 15 लाख रूपया बार्षिक पेंशन मिलती रहेगी तथा बादशाह को नई व्यवस्था स्वीकार करने के लिए तीन दिन का समय दिया गया। नई व्यवस्था की सूचना मिलते ही जनाव आलिया ने रेजीडेण्ट को दरबार में तलब किया तथा दुभाषिये की मदद से आउट्रम से गवर्नर जनरल के आदेश को रद्द करने के लिए कहा लेकिन आउट्रम ने कहा कि यह निर्णय गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने कोर्ट ऑफ डायरेक्टर के आदेश पर लिया है जिसे बिट्रिश संसद की मंजूरी मिली है। 7 फरवरी 1856 को विना रक्तपात के कम्पनी ने अवध का विलय कर लिया। विलय के 5 हफ्ते बाद बेगम ने अपने दोनों बेटों के साथ लखनऊ छोड़ दिया और कानपुर से बनारस होते हुए कलकत्ता पहुँची। कलकत्ता पहुँचने पर बाजिद अली शाह ने एक एंग्लो इण्डियन थॉमस मेनजाइस को अपना एजेन्ट बनाया और उसके मार्फत से विदेश विभाग के सचिव जार्ज एडमन स्टोन को अपने कलकत्ता आने की सूचना भेजी लेकिन उनका कोई जबाव नहीं मिला। पुनः पत्र भेजा लेकिन पुनः जबाव नहीं मिला, अतः वाजिद अली शाह ने मुनववर-उ-दौला जो कि एक समय अवध की सेना में कमाण्डर-इन-चीफ रहे थे से कहा उन्होंने मुंशी वकीर अली की भेजा लेकिन एडमन स्टोन ने मुनववर-उ-दौला की पहचानने से इंकार कर दिया और कहा कि उसके पास गवर्नर जरनल से मिलवाने का

कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार कुछ समय तक चले कुत्ते एवं बिल्ली के खेल को स्वयं गवर्नर जनरल ने खत्म किया और मुनववर-उद-दौला द्वारा सही तरीके से भेजी गयी याचिका को स्वीकार कर लिया। याचिका में बादशाह ने अपनी परेशानियों का जिक्र किया जबाव में कैनिंग ने उनके आगमन के अवसर पर महामहिम के सम्मान में अगले दिन 4 बजे 21 तोपों की सलामी का आदेश दिया।

कलकत्ता में गवर्नर जनरल से अपनी अपील करने के बाद बादशाही दल ने इंग्लैण्ड जाने का फैसला किया। मिशन के जाने से पूर्व नबाव ने राबर्ट वर्ड को अपना एजेंट बनाकर लन्दन भेजने का फैसला लिया ताकि वह वहाँ बिट्रिश संसद के सदस्यों तथा बिट्रिश प्रेस में अवध विलय के विरूद्ध एक सहानुभूति की लहर पैदा कर सके।

लंदन मिशन की तैयारी होने के बाद एक दुखद खबर यह रही कि बाजिद अली शाह ने लंदन नहीं जाने का फैसला लिया इसका कारण उनका खराब स्वास्थ्य बताया गया था इस संबंध में आउट्रम ने लिखा है कि ''लखनऊ से कानपुर तक की यात्रा के दौरान बादशाह अस्वस्थ हो गए थे अतः लम्बी यात्रा करना उनके लिए संभव नहीं था लेकिन आउट्रम का कथन सही नहीं था क्योंकि इससे पूर्व बादशाह दो बार गवर्नर जनरल से मिलने कानपुर आये थे अतः स्पष्ट है कि बादशाह के लंदन न जाने को फैसला अस्वस्थ होना नहीं बल्कि कूटनीतिक अधिक था, बादशाह के न जाने का स्पष्ट कारण एक अखबार में दिया गया है कि जो कि कम्पनी का मित्र नहीं था। अखबार लिखता है कि बादशाह अपने मुख्य मंत्री तथा श्वसुर अली नकी खान को अपने साथ ले जाना चाहते थे लेकिन कंपनी ने उन्हें शाही दल के साथ कलकत्ता जाने की इजाजत नहीं दी तथा उन्हें रेजीडेण्ट आउट्रम ने महल के कर्मचारियो के एरियर में गड़बडी के कारण लखनऊ में गिरफ्तार करवा दिया कुछ समय बाद रिहा होने पर पुनः 7 जून 1856 को जब वह कलकत्ता जाने की तैयारी कर रहे थे पुनः भष्ट्राचार और रिश्वतखोरी के आरोप में गिरफ्तार कर लिया उनकी गिरफ्तारी का प्रमुख कारण नकी खान को बादशाह के साथ रहने तथा लंदन जाने से रोकना था।

इस प्रकार बादशाह के बिना बेगम जनाव आलिया के नेतृत्व में अवध मिशन भेजने का फैसला लिया गया इससे पूर्व 1822 और 1828 के मध्य चार अवध शाही मिशन लंदन गये थे। एक मिशन में बाजिद अली शाह की चाची भी गयी थी। जनाव आलिया के नेतृत्व में यह पांचवा शाही मिशन था बेगम को लंदन के बारे में उतनी ही जानकारी थी जितनी लखनऊ के बारे इंग्लैण्ड के लोगों को थी।

15 जून 1856 को विना बादशाह के जनाव आलिया के नेतृत्व में एस.एस बंगाल से स्वेज तक मिशन बड़े नाटकीय अंदाज में कलकत्ता से रवाना हुआ इसका कारण यह था कि कंपनी कहीं मिशन को जाने से न रोक दे। मिशन में बेगम के साथ उनके छोटे बेटे सिकन्दर हशमत (जनरैल साहब), वली अहद मिर्जा मो0 हामिद अली, राबर्ट ब्रेडवर्न उनकी पत्नी मेरी, वकील मसीह-उद्दीन सहित 70 से ज्यादा लोग रवाना हुए।

अगस्त 1856 को मिशन एस.एस.इण्डस से इंग्लैण्ड के साउथ हैम्पटन बन्दरगाह पहुँचा। पहुँचने पर मिशन ने यहाँ के रॉयल यार्क होटल में 10 दिनों तक विश्राम किया इस दौरान होटल की सभी खिड़कियों को बन्द कर दिया गया। इंग्लैण्ड पहुँचने पर बेगम की एकान्त तथा उच्च जीवन शैली के बारे में वहाँ अखवारों ने प्रमुखता से लिखा जिसके

कारण बेगम की एक झलक पाने के लिए प्रतिदिन भीड़ होटल के बाहर एकत्र होती थी। होटल में जनाव आलिया से यहाँ प्रतिष्ठित लोग मिलने आये इन लोगों में एडमिरल चार्ल्स यार्क, अर्ल ऑफ हेडरिक, फील्ड मार्शल सर जार्ज पोलाक आदि अन्य लोगों के साथ साउथ हैम्पटन के मेयर रिचर्ड एण्डयू भी शामिल थे। राबर्ट बर्ड जो कि मिशन के गाइड, मित्र व दार्शनिक थे ने यार्क होटल की बालकनी भाषण देते हुए मिशन के लखनऊ से लंदन आने का कारण बताते हुए एक सूची पेश की जिसमें बताया गया कि अवध ने समर्पण भाव से कंपनी की सेवा की लेकिन बदले में कंपनी ने कुशासन के आधार पर अवध का विलय कर लिया।

साउथ हैम्पटन प्रवास के दौरान जान ब्रैडबर्न को लंदन में बेहतर आशियाने को तलाशने का काम सौंपा गया अतः उसने हारले हाउस जो कि मेरी लेवोन सड़क के आखिर में रीजेंट पार्क में स्थित था 550 पाउण्ड वार्षिक किराये पर लिया गया अतः लंदन स्थित नये घर में रहने के लिए शाही दल विशेष ट्रेन से लंदन रवाना हुआ तथा 6 सितम्बर को दल लंदन पहुँचा।

लंदन पहुँचने पर जनाव आलिया ने बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष वेरनोन स्मिथ को पत्र के माध्यम से सूचित किया। स्मिथ ने सरजार्ज क्लार्क को जो कि पूर्व में बम्बई प्रेसीडेन्सी के गवर्नर रह चुके थे को बेगम का सम्मान करने के लिए भेजना चाहा लेकिन कोर्ट ऑफ डायरेक्टरों ने इसकी अनुमति नहीं दी इसके बाद बेगम ने वेरनोन स्मिथ से सीधे बातचीत का प्रस्ताव भेजा लेकिन स्मिथ ने इसे ठुकरा दिया अतः मिशन ने अधिवक्ताओं की फर्म ''ग्रेगरी ग्रेगरी स्कीरो एण्ड रॉकिल्फ'' की सेवा ली ताकि वह संसद में विलय के खिलाफ अपील कर सके जिसमें उन्हें कुछ सफलता भी हासिल हुई लेकिन कुछ समय बाद धन की जरूरत हुई क्योंकि लंदन में मिशन द्वारा फिजूल खर्ची के कारण बाजिद अली शाह स्वय ही कंगाल हो गये और स्वयं उसे कलकत्ता में अपने आपको स्थापित करने के लिए धन की आवश्यकता थी अतः उसने लंदन में 10 दिसम्बर 1856 में कोर्ट ऑफ डायरेक्टर के पास एक याचिका भेजी उसके जबाव में डायरेक्टरों ने 12 लाख रूपया प्रतिवर्ष देने का प्रस्ताव भेजा। एक ओर जहाँ बाजिद अली शाह का वित्तीय भविष्य निर्धारित हो रहा था वही लंदन में अवध मिशन कंपनी के अवध विलय के फैसले का रद्द कराने के लिए प्रसासरत थे।

16 जनवरी 1857 को आने के 5 माह बाद कोर्ट ऑफ डायरेक्टरों की ओर से जनरल सिकन्दर हशमत और उनके भतीजे युवराज हामिद अली को कंपनी के मुख्यालय लीडेन हॉल में भोज के लिए आमन्त्रित किया गया जहाँ इन्होंने अध्यक्ष हेनरी रॉलिन्शन से भेंट की दल के साथ राबर्ट बर्ड भी थे मुलाकात के दौरान मुख्यालय का भ्रमण कराया गया लेकिन विलय रद्द करने पर कोई फैसला नहीं लिया गया।

मार्च 1857 के मिशन पहली बार जनता के सामने उपस्थित हुआ अवसर था। रॉयल थियेटर में एक नाटक को देखना। मिशन के सदस्यों ने बड़ी तल्लीनता से शो देखा लेकिन इन्हें दर्शको से अलग रॉयल बॉक्स में बैठाया गया जहाँ इन्हे कोई नहीं देख सकता था।

इसी माह वेरनोन स्मिथ ने जनाव आलिया ओर महारानी बिक्टोरिया के मध्य मुलाकात की योजना बनायी लेकिन जब उसने बिट्रिश सरकार के मन्त्रियों के साथ इस

बारे में बातचीत की तो वह इस मुलाकात के खिलाफ थे दूसरी ओर महारानी विक्टोरिया भी जनाव आलिया से मिलने की इच्छुक थी लेकिन उन्हें भय था कि कहीं कोर्ट ऑफ डायरेक्टर उनके खिलाफ न हो जाए। बेगम से मुलाकात से पूर्व महारानी विक्टोरिया अवध की दो राजकुमारियों से मुलाकात कर चुनी थी।

इसी बीच इंग्लैण्ड 1857 के बिद्रोह का समाचार पहुँच अतः वेरनोन स्मिथ ने भारत स्थित गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग की राय जाननी चाही लेकिन उनका जबाव था कि आप स्वयं निर्णय करे कि इस विद्रोह में अवध की कोई भागीदीरी नहीं है। चूंकि उस समय बिट्रिश प्रेस में अवध मिशन के बारे में काफी कुछ लिया जा रहा था अतः महारानी बिक्टोरिया भी संशय की स्थिति में थी इसके अलावा स्मिथ को शक था कि 1857 में होने वाले आम चुनावों में अगर सरकार बदली तो अवध मिशन की वह फायदा पहुँचा सकती है।

आखिरकार 4 जुलाई 1857 को दोपहर 2:45 बजे बकिंघम पैलेस में मुलाकात का वक्त तय हुआ लेकिन यह मुलाकात मात्र औपचारिकता भर ही रह गयी थी क्योंकि 1857 के विद्रोह की चिंगारी देश के अनेक स्थानों पर फैलने लगी थी मेरठ में अंग्रेजों की हत्या तथा बहादुर शाह के शासक बनने की खबर से महारानी बाकिफ थी साथ ही कलकत्ता में बाजिद अली शाह को ऐतियात के तौर पर फोर्ट विलियम में कैद कर लिया गया। बकिघंम पैलेस में पहली बार पर्दा हटा दिया गया प्रिंस अलबर्ट और उनके बेटे जनाव आलिया की कुर्सी के पीछे खड़े थे इसके अलावा वेरनोन स्मिथ भी वहाँ मौजूद थे। सर जार्ज क्लार्क बेंगम के दुभाषिये के रूप में वहाँ उपस्थित थे महारानी विक्टोरिया ने अपने 7 बच्चों जिनमें दो माह के प्रिस बिट्राइस भी थे के साथ कक्ष में प्रवेश किया। जनाव आलिया ने उठकर विक्टोरिया के हाथ की चूमा और उन्हें मोती तथा इत्रदान के साथ एक चिट्टी भी दी। इस मुलाकात के दौरान दोनों महिलाओं में क्या बातचीत हुई इस विषय में इतिहासकार कमालुउद्दीन हैदर ने महारानी विक्टोरिया की महिला परिचर से सूचना प्राप्त कर लिखा ''महारानी विक्टोरिया शाही परिवार की वेशभूषा तथा उनकी हाजिर जबावी से काफी प्रभावित हुई तथा महारानी ने बेगम से कलकत्ता से लंदन तक की यात्रा के अनुभव तथा इंग्लैण्ड में यहाँ की प्रमुख इमारतों के भ्रमण आदि के विषय में पूछा लेकिन अवध विलय पर कोई चर्चा नहीं हुई।

6 अगस्त 1857 को मुख्य न्यायधीश लार्ड कैम्पबेल ने अवध मिशन की ओर से हाउस ऑफ लार्डस में अपील याचिका दायर की। याचिका में शाही परिवार ने अवध विलय के कारणों तथा बादशाह बाजिद अली शाह का दोष जानना चाहा लेकिन इस बारे में कोई जबाव नहीं मिला। दूसरी ओर यह याचिका इतनी जल्दवाजी में तैयार की गयी थी कि इसमें शब्दों का चयन सही ढंग से नहीं किया गया था अतः इसे तकनीकी रूप से रद्द कर दिया गया। इस प्रकार मिशन को निराशा हाथ लगी चाहे वह महारानी विक्टोरिया, कोर्ट ऑफ डायरेक्टर तथा हाउस ऑफ लार्डस सभी तरफ से उन्हें न्याय नहीं मिला।

अवध विलय रद्द करने के सारे प्रयास विफल होने के बाद मिशन में फूट पड़ गयी जनाव आलिया ने फ्रांस, मक्का होते हुए कलकत्ता वापस लौटने का फैसला लिया और इसी क्रम में वह 45 लोगों के साथ ट्रेन से पेरिस के लिये रवाना हुई और 22 जनवरी

1858 को वह पेरिस पहुँची। पेरिस में भी वहाँ की मीडिया ने जनाव आलिया की उच्च जीवन शैली तथा हाजिर जबावी की तारीफ की। लेकिन 24 जनवरी 1858 को उनकी मृत्यु की खबर भी फ्रेंच अखबारों की सुर्खियां बनी। उनका निधन पेरिस स्थित होटल में दोपहर 1 बजे हो गया, निधन के समय उनकी उम्र 45 वर्ष थी। 27 जनवरी को उन्हें पेरिस के ''पेयरे लेचेसी'' कब्रिस्तान में दफना दिया गया। दफनाने के समय वहाँ फारस तथा टर्की के राजदूत सहित शाही ढल के सभी व्यक्ति मौजूद थी। मसीह उद्दीन ने एक स्थानीय कारीगर की मदद से वहाँ कब्र बनवा दी। जब इस कब्र पर मकबरे बनाने का प्रस्ताव कलकत्ता में बाजिद अली शहर के पास पहुँचा तो उन्होंने उसे अपनी माँ की कब्र मानने से इंकार कर दिया और धनराशि देने से मना कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनाब आलिया अपने जिस बेटे का तख्त ओर ताज दिलाने महारानी बिक्टोरिया से मिलने लंदन गयी थी लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उसी बेटे ने उन्हें पहचानने से इंकार कर दिया और उनका मकबरा बनाने हेतु धनराशि देने से इंकार कर दिया।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. भटनागर, जी.डी (1968) अवध अंडर बाजिद अलीशाह, भारतीय विधा भवन प्रकाशन, बनारस।
2. गजेटियर ऑफ अवध (1993) 1877-78, खण्ड-तृतीय, पुनः प्रकाशन लो प्राइस पब्लीकेशन नई दिल्ली।
3. हे. सिडनी (1994) हिस्टोरिक लखनऊ, पायनियर प्रेस लखनऊ, 1930 पुनः नई दिल्ली
4. स्लीमैन डब्लू,एच.(1849-50) जर्नी थ्रू दि किंगडम ऑफ अवध इन, खण्ड-2, 1858, पुनः हालिकोन पब्लिशर्स, लखनऊ।
5. कमाल उद्दीन हैदर (1879) कैसर-उट-त्वारीख खण्ड-2, तारीख-ए-मामलुकाट ए अवध', नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
6. जोंस, रोज, लेवेलिन (2014-15) बाजिद अलीशाह, द लास्ट किंग ऑफ इण्डिया रैण्डम हाउस पब्लिर्शस इण्डिया प्राइवेट लि0 गुरूगाँव।
7. नाइटन, विलियम (1865) दि प्राइवेट लाइफ ऑफ इस्टर्न क्वीन।
8. मॉरगन, रिचर्ड (2003) दि डायरी ऑफ एन इण्डियन केवेलरी आफिसर 1843-1863: जॉन हेल्फील्ड बुकस

अखबार-

1. दि टाइम्स 28 अगस्त 1856
2. दि टाइम्स 30 अगस्त 1856
3. दि टाइम्स 2 सितम्बर 1856
4. इलेस्ट्रेटिड लंदन न्यूज 14 मार्च 1857
5. ली जर्नल डेस डिवेटस पेरिस 25 जनवरी 1858
6. ली जर्नल डेस डिवेटस पेरिस 26 जनवरी 1858

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

आधुनिक कामकाजी महिलायें : उनका मनोशारीरिक स्वास्थ्य

* ज्योति बाला चौबे
** रूपम अजीत यादव

सारांश– *महिलाओं का कामकाजी होना समाज व परिवार में उन्हें एक प्रतिष्ठित छवि प्रदान करता है। आधुनिक युग में अपने व अपने परिवार के मौलिक स्वर को बढ़ाने हेतु ”समय की माँग भी है। शिक्षित एवं आत्मनिर्भर नारी अपने आत्म संप्रत्यय के प्रति संतोष से परिपूर्ण होती है। असंतोष तब जन्म लेता हैं जब कामकाजी होने के कारण उसे सीमित समयावधि में घर और बाहर दोनों के कार्य करना पड़ते हैं। ”समय की सीमितता और कार्यो की अधिकता ही आधुनिक कामकाजी नारी के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं। तीव्र गति से परिवर्तन होने वाली जीवन–शैली एवं भाग दौड़ वाली जिन्दगी ने कामकाजी महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है, घर एवं बाहर की कार्य व्यस्तताओं के कारण उनकी दिनचर्या कई समस्याओं को जन्म देती है। कामकाजी महिलाओं का लगभग 1/3 अर्थात एक तिहाई हिस्सा लाइफ स्टाइल डिसआर्डर की चपेट में हैं।*

मुख्य शब्द– कामकाजी, असन्तोष, जीवन शैली, लाइफ स्टाइल, तनाव, असुरक्षा, डिसआर्डर

एक सर्वे के अनुसार 25 से 40 वर्ष की उम्र की महिलाओं में लाइफ स्टाइल डिसीज का खतरा सबसे ज्यादा होता है, समय रहते ध्यान न देने से यह गंभीर परेशानी खड़ी कर सकता है। महिलाओं में होने वाली मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित बहुत सी समस्याओं का कारण महिलाओं की घर और बाहर की जिम्मेदारियों की अधिकता ही होता हैं। फलस्वरूप इसके वो बहुत तनाव में रहती हैं। दोनों ही जिम्मेदारियों को संभालने के लिये उनका शारीरिक एवं मानसिक रूप से फिट रहना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे बहुत से मनोवैज्ञानिक एवं जैविकीय कारक होते हैं, जिसे कामकाजी महिलायें समझ ही नहीं पाती है और उनके स्वभाव एव व्यक्तित्व में बदलाव आने लगते है। आइये जानते हैं कि कामकाजी महिलाओं के मनोशारीरिक स्वास्थ्य पर कौन-कौन से कारक प्रतिकूल रूप से प्रभाव डालते है -

तनाव– कामकाजी महिलाओं में तनाव ग्रस्तता सर्वाधिक है। एक अध्ययन के मुताबिक घरेलू महिलाओं की तुलना में कामकाजी महिलायें तनाव की दोगुनी शिकार होती है। मनोचिकित्सक डॉ. उदैनियन के अनुसार कामकाजी महिलाओं में तनाव की वजह असुरक्षा

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गृ.वि. मानव विकास भिलाई महिला महाविद्यालय सेक्टर-09, भिलाई।
** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गृ.वि. आहार एवं पोषण भिलाई महिला महाविद्यालय सेक्टर-09, भिलाई।

की भावना हैं। (onlymyhealth.com.in)

चिंता– सामान्य चिंताओं का होना कोई बड़ी समस्या नहीं हैं किंतु घर परिवार एवं कार्यस्थल के बीच तालमेल ना बैठ पाने के कारण जो चिंताये उत्पन्न होती है उनकें कारण महिलायें नकारात्मक ऊर्जा से भर जाती हैं और ये स्थिति यदि आगे भी बनी रहती है, तो ये असंतुलन, कामकाजी महिलाओं में किसी न किसी लाइफ स्टाइल डिसऑर्डर के रूप में प्रकट होता है।

अवसाद या डिप्रेशन– डिप्रेशन की समस्या कामकाजी महिलाओं में बढ़ती जा रही है इसका मुख्य कारण घर एवं ऑफिस के काम का दबाव बढ़ना है। निजी जीवन एवं कार्यस्थल के दबाव बढ़ जाने के फलस्वरूप नींद प्रभावित होती हैं, आगे जाकर ये स्थितियाँ अवसाद का कारण बनती है।[3] (https/m.dailynunt.in)

मोटापा ओबेसिटी– ये देखा गया है कामकाजी महिलायें कार्याधिक के कारण अपने स्वयं के भोजन के प्रति लापरवाह हो जाती है। वे भूख मिटाने के लियें ज्यादातर जंकफूड का या पोषणरहित भोजन का उपयोग करती है। फलस्वरूप एक तरफ शरीर में पोषक तत्वों का पूर्ति नहीं हो पाती है उल्टा सेहत को भी नुकसान होता है ज्यादातर काम बैठे-बैठे करने के कारण मोटापा अपनी जगह बनाने लगता है।[4]

ब्लड प्रेशर– कार्य स्थल पर ज्यादा शारीरिक श्रम नहीं हो पाने के कारण मोटापा बढ़ रहा है। इसके अलावा शरीर और रक्त में कोलेस्ट्राल अधिक हो जाने के कारण ब्लड प्रेशर की समस्या खड़ी हो जाती है। धूम्रपान एवं अल्कोहल इसे बढ़ाने में मदद करते हैं।[5]

डायबिटीज– कार्यस्थल पर दबावपूर्ण वातावरण के साथ भोजन में प्रोटीन व फाइबर की कमी, रिफाइंड के साथ फैटी फूड की अधिकता से रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ता है इसलिए डायबिटीज की समस्या देखी जाती है। (https/www.m.hindi. webduniya.com.healthcare)

ईटिंग डिसऑडर– तनाव व चिंता की वजह से कामकाजी महिलाएँ या तो थोड़ा सा खाना खाती हैं या फिर ओवरइटिंग करती हैं इसके फलस्वरूप शरीर में जरूरी पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

डिमेंशिया– कामकाजी महिलाओं को उम्र बढ़ने के साथ-साथ डिमेंशिया का खतरा बढ़ने लगता है किंतु सभी महिलाओं में हो ये जरूरी नहीं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ एवं कामकाज के अधिक दबाव से मस्तिष्क के सेल्स आपस में संचार नहीं कर पाते हैं ये धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं इससे सोचने की शक्ति, व्यवहार एवं अनुभूतियों में परेशानी आने लगती हैं और महिला की याददाश्त भी प्रभावित होने लगती है।

वॉर्डरलाइन पर्सनालिटी डिसऑर्डर– घर एवं बाहर के काम के दबाव के कारण पर्सनालिटी डिसऑर्डर होने की संभावना बढ़ जाती है। अचानक गुस्सा आना, अकारण चिड़चिड़ाहट बने रहना, इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं, जिसके कारण-मूड, स्वभाव में असंतुलन, रिश्तों में बदलाव हो सकते है। इस बीमारी से ग्रसित महिलाएँ असमंजस एवं संदेह की दृष्टि रखने लगती है ये सभी वॉर्डरलाइन पर्सनालिटी डिसऑर्डरस के लक्षण होते है। https/www.jagarenyunition.com के अनुसार सन् 2012 में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कामकाजी महिलाओं की कुल भागीदारी समय 27 से 35% हैं m.dw.com के द्वारा बनाया गया है कि वर्तमान में महिलायें व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त कर

रोजगार के क्षेत्र में अपना दायरा बढ़ा रही हैं दायरें एवं दायित्वों के बीच वे दोहरा बोझ भी झेल रही हैं। एसोचेम (कारोबारी संगठन) द्वारा किये गये एक सर्वे से पता चलता है, कि माँ बनने के बाद कई महिलायें नौकरी छोड़ देती है। सर्वे के मुताबिक 40% महिलायें अपने बच्चों को पालने के लिये ये फैसला लेती है, क्योंकि सभी के लिए सुविधाजनक अवकाश मिलना संभव नहीं हो पाता हैं, ऐसी कामकाजी महिलायें एक ओर तो आक्यूपेशनल स्ट्रेस मे रहती हैं, दूसरी ओर होम स्ट्रेस में इससे उनका मनोशारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। स्त्रीरोग विशेषज्ञ डॉ. दिशा शुक्ला का कहना है कि कामकाजी महिलायें केवल लाइफ स्टाइल डिसऑर्डर की चपेट में ही नहीं बल्कि अन्य बीमारियों की चपेट में भी है खासतौर पर महिलाओं में "पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम" (P.O.C) की शिकायतें बढ़ रही है इससे महिलायें बार-बार बीमार पड़ती हैं और उनमें इनफरटिलिटी की समस्याऐं भी आ जाती है, onlymyhealth.com.in के अनुसार कामकाजी महिलाओं में अन्य महिलाओं की अपेक्षा स्तन कैंसर का खतरा 70% तक अधिक होता है। लगभग दो तिहाई महिलाओं में हॉट लेशेस (Hot Flashes) की समस्या मेनूपॉज़ल पीरियड में देखी जाती है इस समस्या को स्ट्रेस एवं स्ट्रेसफुल माहौल और अधिक बढ़ा देता है, इसमें अचानक महिला को घबराहट, पसीना आना, पल्स का बढ़ जाना जैसे लक्षण लगभग 3 से 6 मिनिट तक रहते है। जॉब की प्रकृति एवं कार्य स्थितियाँ प्रतिकूल होने पर मेटरनल हेल्थ को भी प्रभावित करती हैं। (Encyclopaedia of women health and empowerment (Page - 18,84,86)

आत्म निर्भर होने एवं परिवार एवं समाज से सम्मान मिलने के बावजूद कामकाजी महिलाओं को दोनों ही क्षेत्रों में नित नय संघर्षो से जूझना होता है। इन दोहरे दायित्वों को पूर्ण करने हेतु कामकाजी महिलाओं के लिये "सायकोफिजिकल फिटनेस" आवश्यक है, दिन की कार्यविधि में से एक घंटे का समय अपने लिये अवश्य रखें। नियमित योग प्राणायाम या व्यायाम कभी-कभी अपने हॉबीज पर भी गौर कर लिया करें। व्यस्तताओं के बावजूद अपना भोजन संतुलित रखें एवं निश्चित समय पर लें। कार्यो एवं दायित्वों के प्रति चाहे वो निजी जीवन के संबंधित हो या कार्यक्षेत्र के दोनों के बीच संतुलन रखें। अधिक तनाव ना लें एवं कभी-कभी ना कहना भी सीखें अपनी क्षमता से अधिक कार्य ना करें। अस्वस्थता की स्थिति को कतई ना टालें बल्कि समय-समय पर अपनी चिकित्सकीय जांच अवश्य करायें तभी कामकाजी महिलायें अपने मनोशारीरिक स्वास्थ्य का दुरूस्त रख सकेंगी।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. https/www news trend/news
2. onlymyhealth.com.in
3. https/m.dailyhunl.in
4. m.hindiwebduniya.com.healthcare
5. https/www jagerea function.com
6. Early Middle and women's health burdens problems and Encyclopaediya of women health and Empowerment wellness.
   ISBN-978-81-8450-129-2 (Vol-7)
   Deep and Deep Publication Pvt. Ltd (https/www.news trend/news)

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

महात्मा गांधी का शिक्षा-दर्शन

* नवीन कुमार श्रीवास्तव

सारांश– *महात्मा गांधी का शिक्षा–दर्शन प्रयोग एवं अनुभव पर आधारित था। एक ओर गांधी जी के शिक्षा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण था जिसमें वे शिक्षा का प्रयोग देश की आजादी की लड़ाई के लिए करना चाहते थे और दूसरी ओर उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था जिसके द्वारा वे एक मानवीय सरोकारों से युक्त समाज एवं राजनीति की रचना करना चाहते थे। महात्मा गांधी के जीवन में चिन्तन का प्रमुख योगदान उनका बुनियादी–शिक्षा का कार्यक्रम था। बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम उनके आत्म चिन्तन एवं व्यवहार का परिणाम था। महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा स्वावलंबी व्यक्ति, समाज एवं राज्य की रचना करना चाहते थे, जो किसी प्रकार आर्थिक एंव सांस्कृतिक प्रभुत्व से मुक्त हों।*

मुख्य शब्द– बुनियादी शिक्षा, असहयोग, स्वदेशी, अहिंसा, सत्य, सर्वांगीण विकास, शोषण मुक्त, चरित्र निर्माण, स्वावलम्बन, आत्म क्रियाशीलता।

महात्मा गांधी 20वीं सदी के ऐसे युग पुरूष थे जिन्होंने अपने दर्शन को व्यवहार में क्रियान्वित करके न केवल राजनीतिक नेतृत्व देकर स्वतंत्रता आन्दोलन को एक क्रान्तिकारी आयाम दिया अपितु अपने सृजनात्मक सामाजिक गतिविधियों एवं कार्यक्रमों से शिक्षा, समाज, अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आन्दोलन की रणनीति थी संघर्ष, सहयोग। महात्मा गांधी विराम के समय भी सामाजिक कार्य एवं प्रयोग करते थे और सहयोग के माध्यम से आन्दोलन चलाते थे। इसी प्रक्रिया में उन्होंने शिक्षा व्यवस्था का भी प्रयोग किया तथा अनुभावित दर्शन दिया। महात्मा गांधी का बुनियादी शिक्षा का सम्प्रत्यय उनके दर्शन एवं व्यवहार का परिणाम है। महात्मा गांधी ने अपने समय की संस्कृति, समाज, व्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया। समाज व्यवस्था को उचित स्वरूप देने के लिए शिक्षा को सशक्त माध्यम माना इसलिए महात्मा गांधी के शैक्षिक-विचारों को जानने का प्रयास अत्यन्त आवश्यक है।

महात्मा गांधी का शिक्षा-दर्शन प्रयोग एवं अनुभव पर आधारित था। एक ओर गांधी जी के शिक्षा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण था जिसमें वे शिक्षा का प्रयोग देश की आजादी की लड़ाई के लिए करना चाहते थे और दूसरी ओर उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था जिसके द्वारा वे एक मानवीय सरोकारों से युक्त समाज एवं राजनीति की रचना करना चाहते थे। 1920-1921 के असहयोग आन्दोलन में महात्मा गांधी ने शिक्षकों तथा

* शिक्षाशास्त्र (शिक्षा संकाय) राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.) सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

शिक्षार्थियों के ऊपर विशेष दायित्व डाला और उन्हें स्कूल और कालेज छोड़ने को कहा था। महात्मा गांधी विघटनकारी एवं विध्वंस, दृष्टिकोण नहीं रखते थे, उनका दृष्टिकोण रचनात्मक था। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी हुकुमत द्वारा चलायी गयी अनुपयोगी शिक्षा के विकल्प स्वरूप राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना का आन्दोलन चलाया और देश में कई ऐसे राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित हुए। महात्मा गांधी ने कहा कि- "केवल विद्यार्थियों की सहायता से ही स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है और उन्हीं की दुर्बलता के कारण हम लोग विदेशी हुकुमत के गुलाम रहेंगें..........अन्य किसी बात का जनता और शासकों पर इतना प्रभाव नही होगा जितना कि एक दिन में विद्यार्थियों के स्कूल और कालेज छोड़ देने से" किन्तु इस आन्दोलन में गांधीजी ने 16 वर्ष के ऊपर के बच्चों को ही आमंत्रित किया, उन्होंने यह शर्त लगायी कि यदि वे पूरी तौर से समझ गये हों कि गुलामी से मुक्ति पाना है तो आन्दोलन में भाग लेने के लिए आवाहन किया। महात्मा गांधीजी पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने विद्यार्थियों को स्कूल, कालेज छोड़ने के लिए आवाहन कर ठीक नहीं किया। विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नही यह प्रश्न अत्यन्त विवाद ग्रस्त प्रश्न था । किन्तु वास्तविक स्थिति यह थी कि शिक्षा जीवन की एक सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए यह राजनीति से उसी प्रकार अलग नहीं रह सकती जैसे आर्थिक और अन्य समस्याएं जीवन से अलग नही रह सकती। गांधी जीवन को समग्र दृष्टि से देखते थे। वे आध्यात्मिक होते हुए भी अपने को राजनीति से अलग नही रख सकें। उनके लिए राजनीति, धर्म, शिक्षा सब कुछ एक दुसरे से जुड़े हुए थे। वास्तव में शिक्षा को, विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को राजनीति से अलग रखने की बात मान ली जाए तो कभी कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन समाज एवं राजनीति में नही होगा। क्योंकि समाज का एक बहुत बड़ा भाग विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का होता है उनकी सहभागिता के बिना सामाजिक परिवर्तन होना अत्यन्त कठिन है। यदि 18 वर्ष की आयु के व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार दिये जा सकते है तो उन्हे राजनीति से कैसे उदासीन रखा जा सकता है। अतः विद्यार्थियों में जागरूकता और राष्ट्रीयता के विकास के लिए महात्मा गांधी का अध्यापक एवं विद्यार्थियों का आह्वान उचित एवं तार्किक था।

आजादी के बाद महात्मा गांधी के दृष्टिकोण में अन्तर आया, उन्होने 1948 में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा- ''विद्यार्थियों में कोई पार्टी, पालिटिक्स नहीं होनी चाहिए। विद्यार्थियों में कोई समाजवादी, कम्युनिस्ट, कांग्रेस और दूसरे ग्रुप नहीं होने चाहिए। वे सर्वप्रथम विद्यार्थी हैं और उन्हें अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करना चाहिए और वह भी जनता की सेवा के लिए, नौकरी पाने के लिए नहीं।''[1] वस्तुतः महात्मा गांधी के विचार समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते रहें हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन की लड़ाई के लिए विद्यार्थियों की राजनीतिक भूमिका को स्वीकार किया, वहीं स्वतंत्र भारत में छात्रों को राजनीति से पृथक रखने कि हिमायत की थी। यह विचार कुछ सीमा तक उचित भी था। आज विश्वविद्यालय परिसर में राजनीति के कारण शैक्षणिक महौल खराब है उसके पीछे कुछ सीमा तक राजनीतिक स्वार्थ, राजनीतिक पार्टियों से जुड़े हुए लोग होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो महात्मा गांधी के विचार आज भी प्रासंगिक है।

महात्मा गांधी के जीवन में चिन्तन का प्रमुख योगदान उनका बुनियादी-शिक्षा का कार्यक्रम था। बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम उनके आत्म चिन्तन एवं व्यवहार का परिणाम

था। महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा स्वावलंबी व्यक्ति, समाज एवं राज्य की रचना करना चाहते थे, जो किसी प्रकार के आर्थिक एवम् सांस्कृतिक प्रभुत्व से मुक्त हों। महात्मा गांधी ने जब 'बुनियादी शिक्षा' का यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया उस समय अंग्रेजी शासन का शोषण था। यदि कोई राष्ट्र अपनी राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परतंत्रता से मुक्ति पाना चाहता है तो उसे आत्म निर्भर होना आवश्यक है। महात्मा गांधी ने "बुनियादी शिक्षा" के माध्यम से अंग्रेजी शासकों के सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का एक विकल्प देने का प्रयास किया, ताकि गुलामी से मुक्ति पायी जा सके। भारतीय शिक्षा, भारतीय परिवेश के अनुसार हो सके जिनमें भारतीयता का बीज हो, ऐसी संकल्पना महात्मा गांधी की थी। महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक ही सीमित नहीं था। उन्होनें बुनियादी शिक्षा का प्रतिपादन करते हुए कहा था कि- इसके आधार मूल में सत्य एवं अहिंसा का विचार निहित हैं यदि कोई इस बात को नहीं समझता तो वह बुनियादी शिक्षा को नहीं समझ सकता है। दूसरे शब्दों में महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा के द्वारा सत्य और अंहिसा का प्रचार प्रसार करना चाहते थे। यह प्रचार केवल भारत की सीमाओं में हो ऐसा वे नहीं चाहते थे। यह प्रचार केवल भारत की सीमाओं में नही होना था बल्कि जो शिक्षा-दर्शन उन्होनें प्रतिपादित किया, उससे पूरे विश्व में एक परिवर्तन अपेक्षित था। अहिंसा एवं शान्ति का जो संदेश महात्मा गांधी ने दिया वह राष्ट्रीय जगत में आज भी प्रभाव रखता है तथा अपने आने वाले भविष्य का मार्ग भी प्रस्तुत करता है।

गांधी जी की शिक्षा की संकल्पना, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षक एवं शिक्षार्थी-

क) **शिक्षा की संकल्पना-** महात्मा गांधी ने अपने शिक्षा-दर्शन का विकास प्रत्यक्ष अनुभूति एवं प्रयोग के द्वारा विकसित किया था। महात्मा गांधी के प्रयोगवादी दृष्टिकोण के कारण उनके शिक्षा विषयक चिन्तन में संशोधन एवं परिवर्तन भी होता रहा है। महात्मा गांधी ने शिक्षा-दर्शन में आध्यात्मिकता को प्रमुख स्थान दिया था, उनका "ईश्वर" सत्य का पर्यायवाची है उनके जीवन-दर्शन का केन्द्र बिन्दु सत्य,अहिंसा एवं ईश्वर था। इसलिए उनका शिक्षा-दर्शन इन तत्वों के बुनियाद पर विकसित हुआ था। शिक्षा को परिभाषित करते हुए गांधीजी कहते हैं कि- शिक्षा से मेरा आशय बालक तथा मनुष्य में निहित शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक श्रेष्ठ शक्तियों के सर्वांगीण विकास से है।''[2] महात्मा गांधी "शिक्षा सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात शिक्षा वह है जो मुक्ति की ओर प्रवृत्त करे" अपने आन्तरिक कुप्रवृत्तियों एवं परिवेशगत बाधाओं से मुक्ति प्रदान करती है। महात्मा गांधी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। महात्मा गांधीजी की योजना एक ऐसे समाज की थी जहां दण्ड, शक्ति का स्थान अहिंसा लेगी, जहां उच्च-निम्न, धनिक-दरिद्र, मालिक-मजदूर, बुद्धिजीवी-श्रमजीवी, शासक-शासित आदि के कृत्रिम भेद नहीं रहेंगे, जो समाज सच्चे अर्थो में वर्ग विहीन समाज होगा, जहाॅ एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण नही करेगा, जहाॅ स्पर्धा के स्थान पर सहयोग का सिद्वान्त प्रयुक्त होगा और जहां साधन साध्य के बीच समरूपता होगी। इस प्रकार के शोषण मुक्त वर्ग विहीन समाज में सभी को प्रगति के समान अवसर प्राप्त होगें ऐसी कल्पना गांधीजी ने की थी और इसलिए इसे सर्वोदय समाज का नाम दिया था। महात्मा गांधीजी इस प्रकार का

समाज रक्तहीन क्रान्ति द्वारा लाना चाहते थे और इस प्रकार के समाज की स्थापना के लिए वे शिक्षा को एक सशक्त साधन बनाना चाहते थे।[3] महात्मा गांधी की शैक्षिक-संकल्पना मानवीय सरोकारों से युक्त व्यक्ति की गरिमा एवं विकास का पोषण है। उनके सर्वोदय समाज की संकल्पना में व्यक्ति के अस्तित्व एवं गरिमा को केन्द्र में रखा था इस लक्ष्य को वे शिक्षा एवं मानवीय सरोकारों से युक्त समाज के द्वारा प्राप्त करना चाहते थे।

ख) **उद्देश्य–** महात्मा गांधी ने शिक्षा का एक प्रगतिशील उद्देश्य प्रस्तुत किया था। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण करना था। इसके अन्तर्गत वे आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक विकास अर्थात जीवन के सभी पक्षों पर बल देते है। उनकी बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य नौकरी पाना नहीं था। वे बच्चों को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। अप्रैल, 1912 के एक पत्र में जमशेदजी टाटा को संबोधित करते हुए उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य के बारे में प्रकाश डाला था। उन्होंने लिखा था कि जो बच्चे टालस्टाय फार्म से निकलेगें वे वहां की प्राप्त की हुयी शिक्षा को जीवन में अपने आचरण में अवतरित करेगें और सदा व्यतीत करेंगें।[4]

महात्मा गांधी के शैक्षिक-दर्शन एवं कार्यक्रमों की शुरूआत दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स आश्रम (1904) एवं टालस्टाय फार्म (1908) में हुयी थी, किन्तु वे दक्षिण अफ्रीका (1915) से भारत आए, तो उन्होंने अपने अनुभव और प्रयोगों के आधार पर राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना में अपने को लगाया। नेशनल गुजराती स्कूल (1917) के स्थापना के संबंध में शिक्षा के उद्देश्य एवं कार्य-प्रणाली के संबंध में उन्होने अपने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये।[5]

1. देश की शिक्षा राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुकूल नहीं है।
2. शिक्षा से लोक जीवन को कोई लाभ तो है ही नहीं, परिवार को भी नही है।
3. शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिए शासन की ओर देखना, समय नष्ट करना है।
4. शिक्षा में शारीरिक, मानसिक, और धार्मिक पक्ष पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
5. शिक्षण का माध्यम गुजराती हो।
6. विद्यार्थी परीक्षा के भय से मुक्त हों।
7. शिक्षा का लक्ष्य नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिए।

महात्मा गांधी की दर्शन दृष्टि सूक्ष्म एवं व्यापक थी। वह शिक्षा किस काम की जो राष्ट्र समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। वस्तुतः गाधीजी शिक्षा को राष्ट्रीय संदर्भ से जोड़ना चाहते थे। यही बात कोठारी आयोग (1964-66) ने भी कहा कि जब महात्मा गांधी अपना शैक्षिक-दर्शन विकसित कर रहें थे उस दौर में ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली थी और तत्कालीन शिक्षा उपनिवेशिक मानसिकता एवं हितों का पोषण करती थी। उस शिक्षा प्रणाली में लोक जीवन की आवश्यकताओं एवम् चुनौतियों का कोई स्थान नहीं था। शिक्षा प्रणाली न तो समाज, परिवार के अनुकूल थी, न ही व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करनें में समर्थ थी। शिक्षा-व्यवस्था में सुधार के लिए हमें शासन पर निर्भर नही रहना चाहिए। कोई भी राज्य उन्हीं मूल्यों, विचारों प्रणाली को विकसित करता है, जो उनके हितों के अनुकुल हैं। व्यक्ति और समाज की आवश्यकता एवं संदर्भ अलग-अलग है। अतः राज्य उनकी पूर्ति नहीं कर सकता। शिक्षा पुर्ननिर्माण का कार्य स्थानीय स्तर पर स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा होना चाहिए। महात्मा गांधी के विचार

आज भी प्रासांगिक है। महात्मा गांधी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास करने के पक्षधर थे। इसलिए उन्होनें शिक्षा के द्वारा मानसिक, शारीरिक और धार्मिक पक्षों को ध्यान दिया। महात्मा गांधी ने शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा माना, जो आज भी मनोवैज्ञानिक तर्कों से सही है। महात्मा गांधी भयमुक्त व्यक्ति एवं समाज की संकल्पना करते थे। आज व्यक्ति ने आधुनिकता के दौर में भले ही लम्बी दूरी तय कर ली हो किन्तु अन्दर से वह संशय ग्रस्त एवं भयभीत पहले से ज्यादा है। इस प्रकार महात्मा गांधी का शिक्षा विषयक दृष्टिकोण एक प्रगतिशील एवं आनुभाविक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसका लक्ष्य केवल जीविकोपार्जन का साधन जुटाना मात्र न होकर समग्र दृष्टि से उचित जीवन जीने योग्य बनाना है।

ग) **पाठ्यक्रम**– महात्मा गांधी आधारभूत आवश्यकताओं के प्रति सजग थे। पाठ्यक्रम के विषय में गांधीजी का कहना था जिस पाठ्यक्रम और शिक्षा संबंधी विचारों से वर्तमान शिक्षा का ढ़ांचा बना है, वे कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, एडिनबरा और लन्दन से लाये गये थे। वे मूलतः विदेशी है और जब तक उनका त्याग नहीं किया जायेगा राष्ट्रीय शिक्षा असम्भव है। अंग्रेजी स्कूल और कालेज जो अंग्रेजी सरकार की स्वार्थपूर्ण देन है, वह हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकतीं हैं। वे साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक तथा रचनात्मक विषयों को पढ़ाने के पक्ष में थे किन्तु वे उन्हें आध्यात्मिक एवं जीविकोपार्जन दोनों ही लक्ष्यों को दृष्टिगत करके पढाना चाहते थे, उनका कहना था कि "वे विभिन्न विज्ञानों का अध्यापन का महत्व मानते हैं किन्तु पढ़ाने का उद्देश्य रचनात्मक होना चाहिए ध्वंसात्मक नहीं, महात्मा गांधी शिक्षा के द्वारा बालकों व युवकों के तीन पक्ष बुद्धि, शारीरिक श्रम, और आध्यात्मिकता के विकास पर बल देते थें।''[6]

महात्मा गांधी के अनुसार ज्ञान दो प्रकार का होता है एक अच्छा और दूसरा बुरा। बच्चों को अच्छे ज्ञान की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। महात्मा गांधी प्रारम्भिक शिक्षा में ही शारीरिक श्रम को स्थान दिया था। उन्होंनें विस्तारपूर्वक लिखा है कि इस प्रकार से वे बालकों से काम लेते थे जिससे इनका शरीर सुसंगठित रहता था। महात्मा गांधी के अनुसार- ''शारीरिक शिक्षा का सोउद्देश्य एवम् समाजपयोगी होनी चाहिए। शारीरिक शिक्षा में वे शारीरिक उद्देश्य को भी शामिल करते थे।"[7] पाठ्यक्रम में महात्मा गांधी आत्मा को शिक्षित करने को बड़ा महत्व देते थे। उनका विचार था कि - आत्म -शिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है। उनकी दृष्टि में आत्मा का विकास करने का अर्थ था चरित्र का गहन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना।"[8]

महात्मा गांधी समान्यतः धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को महत्व देते थे। जब उनसे पूछा गया कि बुनियादी-शिक्षा में धार्मिक शिक्षा क्यों नहीं रखी गयी तो उनका मत था कि शिक्षा में स्वावलम्बन, आत्म-निर्भरता की शिक्षा है और वही सबसे बड़ा धर्म और सबसे बड़ी धार्मिक शिक्षा है। वस्तुतः महात्मा गांधी का दृष्टिकोण रूढ़िवादी धर्म पर आधारित नहीं था। वे धर्म के आस्था एवं आचरण पद्धति पर विश्वास रखते थे। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति आचरण को आत्म-निर्भर तथा स्वावलम्बी व्यक्तित्व का निर्माण करना था। महात्मा गांधी ने इसी परिप्रेक्ष्य में सत्याग्रह की शिक्षा को ही वास्तव में शिक्षा कहा था अर्थात बच्चों को प्रारम्भ से ही सत्य के प्रति आग्रह की शिक्षा देनी चाहिए। जिसमें प्रेम, अहिंसा और सत्य का आचरण निहित हो। जिसके द्वारा न केवल अपने व्यक्तित्व का

विकास होगा अपितु आने वाली पीढ़ी के लिए एक आत्म-निर्भर समाज की रचना होगी। महात्मा गांधी का 'बुनियादी-शिक्षा कार्यक्रम' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण था। डॉ0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता (वर्धा सम्मेलन, 1937) में बुनियादी-शिक्षा कार्यक्रम का व्यावहारिक आधार शिक्षकों तथा उनके प्रशिक्षण, विद्यालयों के संगठन, प्रशासन, स्व-निरीक्षण और कताई-बुनाई के विस्तृत पाठ्यक्रम इत्यादि का वर्णन था।

घ) **शिक्षण-विधि**– शिक्षण-विधि किस प्रकार हो, यह शिक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर करता है, जीवन का उद्देश्य जीवन-दर्शन पर निर्भर करता है। यदि जीवन का दर्शन अध्यात्मवाद है तो शिक्षण-विधि भी उसी प्रकार की होगी अर्थात उसमें हर व्यक्ति, हर विद्यार्थी का महत्व होगा। उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा होगी। उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा होगी क्योंकि वह परमात्म का प्रतीक है और परमात्म तत्व में विलीन होना, मोक्ष प्राप्त करना उसके जीवन के लक्ष्य है। जिसके लिए उसे आवश्यक स्वतंत्रता होनी चाहिए। महात्मा गांधी की शिक्षण-विधि मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित हुयी थी। उन्होंने मनोविज्ञान का अध्ययन तो नही किया था, परन्तु वे व्यावहारिक मनोविज्ञान के पण्डित थे। उनका कहना था कि अध्यापक कुछ सिखाने से पूर्व स्वयं वैसा आचरण करें केवल कहने मात्र से उन पर प्रभाव नही पड़ेगा। बाल-प्रकृति को क्रियाशीलता प्रदान होती है। अतः महात्मा गांधी के करके सीखने से बाल-प्रकृति क्रियाशीलता प्रदान होती है। अतः महात्मा गांधी ने करके सीखने पर बल दिया था जो समस्त साहित्यिक एवं बौद्धिक प्रशिक्षण का केन्द्र-बिन्दु था। महात्मा गांधी के अनुसार करके सीखने और स्वयं के अनुभव से सीखना ही उत्तम सीखना है। ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करना और उसे क्रिया के माध्यम से विकसित करना उनके शिक्षण-विधि का मुख्य आधार था। महात्मा गांधी इस बात पर बहुत बल देते थे कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाय, वास्तविक ढंग से सिखाया जाय रचनात्मक-विधि, खेल-खेल में या ऐसी क्रिया जो उन्हें रूचिकर तथा मनोरंजक लगें जिससे अधिक ज्ञान को आत्मसात् कर सके। इसलिए वे किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग कार्य, प्राकृतिक पर्यावरण या सामाजिक पर्यावरण को शिक्षा का केन्द्र बनाने एवं समस्त ज्ञान एवं क्रियाओं को उसके माध्यम से विकसित करने पर बल देते थे। इस प्रकार विभिन्न विषयों से सह-संबंध होता है। बच्चे क्रिया करते हैं और उन्हें एक दूसरे के सहयोग से सीखने का अवसर मिलता था। इस प्रकार के शिक्षण करने से बच्चों की शारीरिक व मानसिक क्रियाओं में समन्वय होता है। वे श्रम के महत्व को समझते हैं और व्यवहारिक जीवन के लिए तैयार होते हैं। इस प्रकार आत्म-क्रियाशीलता द्वारा बालक सम्प्रयोजक और उत्पादक क्रिया करके शिक्षा प्राप्त करते रहेगें। टालस्टाय आश्रम के संदर्भ में गांधीजी ने शिक्षण-विधि का एक महत्वपूर्ण सिंद्धान्त निर्धारित किया था। ''वह यह है कि जो काम शिक्षक स्वयं न करें उसे लड़कों से भी न कराये अर्थात बालक के साथ-साथ शिक्षक को भी शारीरिक श्रम या शारीरिक पेशे का काम करना चाहिए।''[9]

ङ) **शिक्षक**– शिक्षक-शिष्य बन जाये और वह शिष्य से सीखे यही भारतीय परम्परा है। यही सीखने और सिखाने की सही प्रक्रिया है। आचार्य और शिष्य एक ही प्रक्रिया में समान भाव से लगें। महात्मा गांधी की दृष्टि में अध्यापक समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुंज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए। इस व्यवसाय को केवल व्यवसाय

के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी आदर्श अध्यापक नहीं हो सकता है। शिक्षक को बच्चों के पिता, मित्र, सहयोगी और पथ-प्रदर्शक अनेक रूप में कार्य करना होता है। इसलिए उसे सहिष्णु और धैर्यवान होना चाहिए। महात्मा गांधी यह सिद्वान्त प्रतिपादित करते है कि "समाज में अच्छा-बुरा, गुण-दोष दोनों ही है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि बच्चों में स्वयं यह विवेक आ जाए कि अच्छे-बुरे की पहचान करके सही आचरण कर सकें।''[10] इस प्रकार विद्यार्थी और शिक्षकों में परस्पर कोई दुराव या भेद-भाव नहीं होना चाहिए बल्कि विद्यार्थियों को शिक्षकों के साथ मिल-जुल कर जीवन व्यतीत करने और काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।

यद्यपि गांधी जी शिक्षा का केन्द्र बिन्दु शिक्षार्थी को मानते थे तथापि वे शिक्षा में शिक्षक को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते थे। उनका विश्वास था कि योग्य प्रतिभाशाली, चरित्रवान, तथा कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक ही बालक का सर्वांगीण विकास कर सकता है। वे शिक्षक के लिए चारित्रिक गुणों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनका कथन है कि- "साधारण शिक्षक के हाथ में बच्चों को नहीं देना चाहिए। शिक्षकों का ज्ञान भले ही थोड़ा हो परन्तु उसमें चरित्र बल पैदा होना चाहिए।''[11] ''उत्तम शिक्षक के लिए आवश्यक है कि पहले स्वयं उस योग्यता को प्राप्त करें जिसे वह अपने शिष्यों में देखना चाहता है। जब तक शिक्षक में योग्यता तथा गुण न होंगे तब तक वह अपने व्यक्तिव से छात्रों को प्रभावित न कर सकेगा।''[12] गांधीजी कहते है कि- "मै झूठ बोलता रहूँ तो अपने शिष्यों को संयम कैसे सिखा सकता हूँ।''[13] उनका विचार था कि शिक्षक को शिक्षार्थियों की वैयक्तिक भिन्नता, योग्यता, रूचि, जिज्ञासा, भावुकता, लज्जाशीलता, आवश्यकता आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

गांधीजी चाहते थे कि- ''शिक्षकों को अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए और विषय में ताजा से ताजा जानकारी करके शिक्षण कार्य करना चाहिए।" उन्हें पढ़ाने के लिए अच्छी से अच्छी विधि ढूढ़नी चाहिए तथा प्रत्येक विद्यार्थी की विशेषता को समझ कर ऐसी विधि का प्रयोग करना कि जिससे शिक्षार्थी अपने विषय को समझने लगें। शिक्षार्थियों को प्रश्न करने का अवसर दे कर उनकी शंका का समाधान करना चाहिए। शिक्षक को छात्र का विश्वास पात्र होना चाहिए और उनके साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। उनका विश्वास था कि जैसा शिक्षक होगा, वैसा ही शिक्षार्थी बनेगा तथा इस प्रकार राष्ट्र का निर्माण भी वैसा होगा।[14]

गांधीजी शिक्षक में दायित्व बोध की भावना भी देखना चाहते थे। उन्होने लिखा है कि - ''अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह छात्र में ऐसी प्रतिभा तथा योग्यता उत्पन्न करें जिससे विभिन्न वस्तुओं के गुण-दोष तथा विभिन्न स्वरूप को ठीक से पहचान सके। यदि वह यह कर्तव्य सफलतापूर्वक निभाता है तो उसके छात्र यंत्रवत नहीं होगें तथा उनका ज्ञान सजीव होगा। यदि अध्यापक इस कार्य में असफल रहा तो उसके छात्रों एवं मशीनों में कोई अन्तर नहीं होगा।''[15]

गांधीजी अध्यापक का कार्य क्षेत्र मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि अध्यापक कक्षा के बाहर भी अपने छात्रों को प्रभावित करता है। उन्हे दु:ख है कि- ''आज कल शिक्षक वेतन भोगी कर्मचारी की भाँति कक्षा में पढ़ाने तक ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते है। कक्षा से बाहर वे छात्र के प्रति अपना उत्तरदायित्व

नहीं समझतें। इससे छात्रों को बड़ी हानि होती है। उनके चरित्र और व्यक्तित्व के विकास में ऐसे शिक्षकों से पूरी सहायता नहीं मिलती।''[16] छात्रों के प्रति शिक्षकों के कर्तव्य को स्पष्ट करते हुए गांधीजी कहते है कि शिक्षक और छात्र में अधिकाधिक संपर्क होना चाहिए।

च) **शिक्षार्थी**– महात्मा गांधीजी बालक के व्यक्तित्व को पूरी सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि में बालक न तो जगंली और न ही असभ्य है और न ही अर्द्ध विकसित मानव ही होता है, वे तो उसे परमात्मा का अंश मानते है। इसी दृष्टि से उनको बच्चों से प्यार था। वे चाहते थे कि बालक-बालिकायें, भाई-बहन की तरह रहें और उनका समस्त पर्यावरण प्रफुल्लता, सामूहिक प्रयत्नशीलता, नैतिकता सहानुभुति एवं सदभावना से ओत-प्रोत हों। वे पाठशाला में बालकों के विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे। महात्मा गांधी अपने लड़कों को भी उसी प्रकार रखते थे जैसे अन्य बच्चों को। कैलेन बैक ने महात्मा गांधी से कहा कि खराब बच्चों के साथ अपने बच्चों को मत रखिए। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि- ''वे अपने और दूसरे बच्चों में भेद कैसे कर सकते हैं उन्होने अपने बच्चों और दूसरे बच्चों में भेद नहीं रखा और सबको एक साथ रखा। अच्छे-बुरे का विवेक बच्चों को स्वयं सीखना चाहिए।''[17] विद्यार्थी से संबंध में गांधीजी के विचार बहुत महत्वपूर्ण है। उनका मत है कि- ''जिस प्रकार बच्चों को मॉ-बाप की शक्ल-सूरत विरासत में मिलती है उसी प्रकार उनके गुण-दोषों की विरासत भी जरूर मिलती है।"[18] उन्होनें लिखा भी है कि -" बच्चे की शिक्षा माँ के पेट से प्रारम्भ होती है।" गर्भाधान काल की माता-पिता की शारीरिक और मानसिक स्थिति का प्रभाव बालक पर पड़ता है। बच्चा गर्भकाल की माता-पिता की प्रकृति, उसके आहार-विहार के अच्छे-बुरे फल विरासत लेकर जन्मता है।''[19] इसलिए बालक के उज्जवल चरित्र के लिए उसके माता-पिता का उज्जवल चरित्र का होना आवश्यक है। "जन्म के अनन्तर वह माता-पिता का अनुकरण करने लगता है और स्वयं असहाय होने के कारण अपने विकास के लिए माँ-बाप पर अवलम्बित रहता है।[20] बालक का परिवार पर यह अवलम्बन उसके विकास की गति तथा दिशा का निर्धारण करता है इसी आधार पर गांधी जी ने कहा है कि - "सुसंस्कृत घर जैसी कोई पाठशाला नहीं और ईमानदार तथा सदाचारी माता-पिता जैसा शिक्षक नही।[21] गांधी जी का विश्वास था कि विद्याभ्यास के लिए सदाचरण आवश्यक हैं, इसलिए वे विद्यार्थियों को 'ब्रह्मचर्य व्रत' पालन करने की सलाह देते थे तथा उन्हें ' ब्रह्मचारी की संज्ञा देते थे। उनका मत था कि - "एक विद्यार्थी ब्रह्मचारी होता है क्योकिं उसके सभी अध्ययन तथा समस्त क्रियाओं का लक्ष्य- 'ब्रह्म' की खोज है।''[22] वे कहते है कि- ''विद्यार्थिओं को अपने भीतर खोजना चाहिए तथा अपने व्यक्तिगत चरित्र की देखभाल करनी चाहिए क्योंकि बिना चरित्र, शिक्षा किस काम की।"[23] वे छात्रों में विनय, नैतिकता, पवित्रता, आदर भाव, अनुशासन, सेवा, दृढ़ता, जिज्ञासा जैसे गुण देखना चाहते थे। गांधीजी विद्यार्थियों में शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार की शक्ति का विकास चाहते थे। वे विद्यार्थियों को स्वत्रतंता देने के पक्षधर थे पर उच्छृखलता नहीं। वे छात्रों मे गुरू के प्रति श्रद्धा-भाव को परमावश्यक मानते थें।[24] विद्यार्थी- जीवन निर्माण का कार्य होता है इसलिए छात्रों को इसका अधिकतम लाभ उठाकर अपने जीवन को अनुकरणीय बनाना चाहिए।[25]

गांधीजी छात्र-शक्ति में विश्वास करते थे। उनका मत था कि विद्यार्थी अपनी अपार शक्ति के सहयोग से बड़ा से बड़ा कार्य कर सकते हैं। उनके सत्याग्रह आन्दोलन में छात्रों ने बहुत योगदान किया था। वे छात्रों को 'राष्ट्र का भविष्य' कहा करते थे। उन्होंने कहा कि-"छात्रों को राष्ट्र का नमकत्व-रक्षकत्व होना चाहिए। यदि नमक ही अपना खारापन छोड़ दे तो उसे खारा कैसे बनाया जा सकता है।''[26] वे चाहते थे कि छात्र विद्याध्ययन के साथ-साथ देश-सेवा भी करें। उन्हें समाज में व्यापक बुराईयों को दूर करने में अगुवाई करनी चाहिए।

गॉधीजी चाहते थे कि छात्र आत्म-निर्भर हो, इसलिए उन्होनें स्वावलम्बी शिक्षा की बात की। वे चाहते थे कि छात्र अपना प्रत्येक कार्य स्वयं करे। उन्हें 'शारीरिक-श्रम' करने में लज्जा का अनुभव नहीं होना चाहिए तथा किसी भी कार्य को छोटा नहीं मानना चाहिए।

शैक्षिक प्रशासन– महात्मा गांधी का शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी विचार उनके फीनिक्स आश्रम (1904) एवं टालस्टाय में नियोजन, नेतृत्व, वित्त-प्रबन्ध, परिवेक्षण, आदि संबंधी व्यवहार स्थानीय संदर्भ संस्कृति एवं आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए। महात्मा गांधी लिखते है- ''योजना संक्षेप में इस प्रकार की थी यदि शहर के शोर-गुल से दूर कुछ जमीन प्लाट मिल जाती हो हर कार्य कर्ता के पास एक प्लाट हो जाता जिससे वह जीवन-यापन कर सकता। इसके बिना अधिक खर्च के स्वस्थ वातावरण रहने की समस्या का सामाधान हो जाता। कार्यकर्ताओं को आवश्यक खर्च के लिए प्रति माह एडवांस मिल जाता और पूरा लाभ वर्ष के अन्त में बॉट दिया जाता।''[27]

श्री जे0ए0 पोलक (एक अंग्रेज जो गांधी जी कि फीनिक्स योजना में प्रारम्भ में मिले थे) के संबन्ध में लिखते हुए महात्मा गांधी जी कहते हैं कि- "अपने आदर्शो को प्राप्त करने की इच्छा से 1904 में इन्होने एक लाभप्रद काम छोड़ दिया और वे फीनिक्स योजना में सम्मिलत हो गये जिसमें उतना ही मिलता था जिससे वे सरलतम जीवन व्यतीत कर सकें।''[28] दूसरे योजना द्वारा टालस्टाय तथा रस्किन की मूल शिक्षा को क्रियान्वित करने का उद्देश्य था और इसके वाह्य रूप में दक्षिण-अफ्रीका में ब्रिटिश हुकुमत में रहने वाले भारतीयों की सहायता करना है। महात्मा गांधी का फीनिक्स स्कूल स्वावलम्बन की भाषा से ओत-प्रोत था।" हमनें कोई मासिक शुल्क नहीं रखा है। ऐसा करने का आचरण यह है कि शिक्षकों की जीविका छापाखाना (इन्टरनेशनल प्रिंटिग प्रेस) से जो कुछ मिलता है उससे चल जाती थी और छापे खाने की मजदूरी से हर शिक्षक एक निश्चित समय पर पढ़ाने आता है।" इस प्रकार महात्मा गांधी ने उत्पादन कार्यों द्वारा अर्जित आमदनी से शिक्षा का खर्च विद्यालय स्वयं वहन करता था। आज वित्तीय संकट से जुझ रहें शिक्षण संस्थान एक दृष्टि प्राप्त कर सकते है और अपनी जबाब देही स्वयं तय कर सकते है।

महात्मा गांधी के शैक्षिक प्रशासन का आदर्श प्राचीन गुरूकुल-प्रणाली थी जहां नियम तथा कार्य -प्रणाली कि जटिलता न होकर सरल एवं सहज ढ़ंग से शिक्षण गतिविधि चलती थी । महात्मा गांधी ने लिखा कि आश्रम में नौकर थे ही नही, सफाई से भोजन तक का काम आश्रम-वासियों को ही करने होते थे। फलों के बहुत पेड़ थे। नयी बोआई करनी ही थी। मि0 वेलेन को खेती करने का शौक था, स्वयं सरकारी आदर्श बागों जाकर कुछ दिनों सीख आये थे। रोज एक खास वक्त पर छोटे-बड़े सबको जो रसोई के काम

में लगें हो बाग में काम करना ही पड़ता था। इनमें बालकों का बड़ा भाग था। बड़े-बड़े गड्ढें खोदना, पेड़ काटना, बोझ ढोना वगैरह कामों में उनके शरीर से पूरी तरह से गढ़ जाते थे। इन कामों उन्हें आन्नद आता था और उन्हें दूसरी कसरत या खेल की जरूरत न रह जाती थी। काम करने में कभी-कभी कुछ और कई बार सब विद्यार्थी नखरे एवं आलस्य करते थे। अकसर इन बातों की ओर से मै आँख मूंद लेता था कितनी बार सख्ती से काम लेता था। यह भी देखता था कि जब सख्ती करता था तब वे घबराते थे इस प्रकार स्पष्ट है कि महात्मा गांधी का शैक्षिक प्रशासन स्वयं-अनुशासन के द्वारा संचालित होता था। महात्मा गांधी मनोवैज्ञानिक पक्षों को भी ध्यान रखते थे जो कि समकालीन शैक्षिक प्रशासन का आधार है।

आज शैक्षिक प्रशासन में केन्द्रीयकरण ज्यादा है। शैक्षिक प्रशासन में नौकरशाही का वर्चस्व है। नीति-निर्माण में स्थायी संस्कृति एवं आवश्यताओं को उतना अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। शैक्षिक प्रशासन में कार्य-विभाजन, निष्पादन, सम्प्रेषण आदि की समस्या ज्यादा है। प्रशासन में तानाशाही मनोवृत्ति भी पायी जाती है जिसके कारण जनतांत्रिक प्रशासन एवं मूल्यों के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। यह सच है कि जीवन की जटिलता एवं बढ़ती आवश्यकताओं के कारण आज का शैक्षिक प्रशासन यह अनुभव करता है कि उसके कर्तव्यों और सेवाओं में वृद्वि के कारण उसके उत्तरदायित्व काफी बढ़ गये हैं। उसे गतिशील आवश्यताओं की मांग को पूरा करना है। अपने प्रतिदिन के कार्यो में उसे अनेक प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिनमें से कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

महात्मा गांधी का प्रशासनिक विचार में स्वावलम्बन, कार्य की स्वतंत्रता, मनोवैज्ञानिक पक्षों का महत्व, कार्य-जटिलता की जटिलता का अभाव तथा स्थायी सन्दर्भ एवं आवश्यकताओं के अनुसार नियोजन करना आदि प्रमुख रूप से आज भी प्रासंगिक है।
भाषा-नीति- भारत में अनेक भाषा समूहों का प्रयोग होता रहा है। प्रत्येक क्षेत्र एवं संस्कृति के अनुसार भाषा का स्वरूप निर्धारित होता है। यह भी सच है कि विश्व के किसी भी देश में शासक वर्ग की भाषा का ही वर्चस्व होता है। भारत में भी ऐसा ही पाया गया । प्राचीन भारत में सत्ता एवं संस्कृति की मुख्य वाणी संस्कृत थी। बाद में बौद्व एवं जैन धर्म के आन्दोलन के समय प्राकृत एवं पाली का विकास हुआ था जो साहित्य एवं राज्य दोनों की भाषा बनी थी। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् यह भारतीय संस्कृति अरबी, फारसी संस्कृति के सम्पर्क में आयी, तत्पश्चात ब्रिटिश काल में अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व बढ़ा। इस प्रकार भारत में समय की धारा के अनुसार विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होता रहा। क्षेत्रीय भाषाएं तेलगू, तमिल,कन्नड़, मराठी, गुजराती आदि के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का प्रचलन है। किसी राष्ट्र की राष्ट्रीयता के विकास में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। महात्मा गांधी इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे। यही कारण था कि स्वतंत्रता आन्दोलन के समय महात्मा गांधी ने भाषा के मुद्दे के तार्किक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया तथा गुजराती मातृभाषा होते हए भी महात्मा गांधी ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में माना। महात्मा गांधी की हिन्दी न तो संस्कृतनिष्ठ थी और न ही अरबी, फारसी युक्त अपितु सबका सम्मिश्रण थी, ताकि प्रत्येक क्षेत्र एवं संस्कृति के लोग हिन्दी को सरलता से अपना सके।

महात्मा गांधी ने मातृ-भाषा को शिक्षण का माध्यम बनाने पर बल दिया था और अंग्रेजी माध्यम से होने वाले अपव्यय को समाप्त करने के लिए वे माध्यम का परिवर्तन अविलम्ब कराना चाहते थे। उससे उच्च शिक्षा किंचित काल तक अस्त-व्यस्त क्यों न हो जाय वस्तुतः महात्मा गांधी बालको के मनोवैज्ञानिक पक्षों से परिचित थे। यह स्वाभाविक है कि बच्चा जितनी आसानी से मातृ-भाषा से सीखता है, उतनी अन्य भाषा के द्वारा सम्भव नहीं। पुस्तक पेडागाजी आप्रेस्ड में इस बात का विस्तृत रूप से विश्लेषण किया कि किस प्रकार शासक वर्ग की भाषा वंचित वर्ग पर थोपकर उन्हें शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए बाध्य करती है उन्हें अपनी संस्कृति संवेदना एवं पहचान से काटकर जड़वत बना दिया जाता है। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा मातृ-भाषा के द्वारा ही दी जाय। इस सिद्वान्त को अपनाकार शिक्षण के स्वाभाविक मार्ग को स्वीकार किया गया है और विदेशी भाषा के माध्यम से जो शक्ति क्षय, अपव्यय व हानियॉ होती है, उन्हें दूर किया गया। ज्ञानात्मक कार्य के लिए जिसे गांधीजी ने अक्षर ज्ञान कहा है। शिक्षा मातृ-भाषा द्वारा देने का ही आग्रह था। अंग्रेजी सबको सिखाई जाती थी। इतिहास, भूगोल, अंकगणित सबको सिखाये जाते थे। तमिल एवं उर्दू कुछ समय गांधीजी पढ़ाते थे। शिक्षण कार्य चलाने के लिए ज्ञानात्मक पूँजी बहुत कम थी किन्तु देश की भाषाओं पर गांधीजी का प्रेम, अपनी शिक्षण शक्ति पर गांधीजी की श्रद्धा, विद्यार्थियों को अज्ञान और उससे भी बढ़कर उनकी उदारता गांधीजी के काम सहायक सिद्ध हुए।''[29]

नारी एवं दलित– भारतीय समाज मे स्त्रियों की स्थिति पर विचार करने के लिए गठित राष्ट्र समिति में अपनी रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए लिखा है कि-किसी भी मानव समाज में स्त्रियों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है और कोई भी कौम इसे अस्वीकार नही कर सकती। स्त्रियां राष्ट्र के विकास के लिए उतना ही महत्व रखती है जितना उस देश के खनिज पदार्थ, वहां की नदियों एवं खेती बाड़ी का है। स्त्रियों की शक्ति का समुचित उपयोग करने और उनका सही नियत्रंण करने के लिए, उनके साथ आदर का वर्ताव करने पर वे ऐसी महान और प्रबल शक्ति का रूप ले लेती है जिससे राष्ट्र के लाभ और उसके विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। स्त्रियों पर सामाजिक प्रथाओं और परम्पराओं के प्रतिबन्ध होने के कारण उन्हें समाज का एक विकल्प अंग माना जाता है अतः इस वर्ग को सहायता पहुँचाने की और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि वह राष्ट्र जीवन में पूर्ण और समुचित भूमिका निभा सके।[30] महात्मा गांधी के विचार उपयुक्त तथ्यों का समर्थन करते हैं। महात्मा गांधी स्त्री शिक्षा एवं विकास को न केवल परिवार समाज अपितु राष्ट्र का महत्वपूर्ण केन्द्र मानते थे। उनका मत था कि स्त्रियों का प्रमुख कार्यक्षेत्र, घर का जीवन होता है। एतएव उन्हें सफल गृहणी एवं संतान के पोषण एवं प्रशिक्षण की पूरी शिक्षा देनी चाहिए। आरम्भ में उनके और बालकों के विषय उभयनिष्ठ हो सकते है, किन्तु आगे चल कर स्त्रियों की उपयुक्त विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। गांधीजी ने इस बात को स्पष्ट किया था कि यद्यपि पुरूष और स्त्री का कार्यक्षेत्र थोड़ा भिन्न होता है लेकिन उनकी संस्कृतिक आवश्यकताएं समान होती है इसलिए दोनों को अपने-अपने विकास के लिए समान अवसर देने चाहिए। उन्होनें बताया कि मुख्य रूप से स्त्री को पत्नी, माता और समाज के निर्माता के रूप मे कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरूष से भिन्न अवश्य होती हैं पर अपने तीसरे

उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अपने सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। परन्तु किसी भी स्थिति में वे स्त्रियों को संगीत एवं नृत्य से दूर रखना चाहते थें। (ये क्रियाएं वासना को बढ़ावा देती है।) उनका कहना था कि- गीता, रामायण, महाभारत और भागवत का ज्ञान स्त्रियों को दिया जाना पर्याप्त है। वे स्त्री और पुरूष की शिक्षा में केवल इतना ही अन्तर करते थे कि स्त्रियों को गृह कार्य के अतिरिक्त शिक्षा देनी चाहिए। महात्मा गांधी सत्य शिक्षा के प्रबल समर्थक थे।

महात्मा गांधी के चिन्तन एवं कार्यक्रम का प्रमुख केन्द्र अन्तिम व्यक्ति समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति था, जो शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ था। उन्होनें उनके उत्थान के लिए न केवल व्यक्तिगत रूप से रूचि लेकर विशेष कार्यक्रम चलाये थे अपितु उन्होंने सामन्ती मानसिकता से ग्रस्त उच्च वर्ग के मानसिकता में बदलाव लाने का प्रयत्न किया था ताकि निम्न वर्ग का उत्थान हो सके। महात्मा गांधी व्यक्ति के सोच एवं व्यवहार में परिवर्तन लाकर उसे इस प्रकार तैयार करना चाहते थे कि वे अपने से कमजोर लोगों को स्वीकार कर सके। इनके चिन्तन का आधार वर्गीय संघर्ष या चरित्र न होकर एक समन्वयवादी दृष्टिकोण था। इस प्रकार वे सामाजिक संतुलन के हिमायती थे। महात्मा गांधी ने कहा था कि- मैने ऐसे भारत का चित्र नहीं सोचा है कि जो गरीबी से पीड़ित हो और जिसमें करोड़ों व्यक्ति अज्ञान के अंधकार में डूबें हों, मैने भारत का एक ऐसा चित्र सोचा है, जिसमें देश अपने स्वभाव के अनुरूप निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहें। इस चित्र में भारत जर्जर पश्चिमी सभ्यता की बहुत रद्दी या बहुत अच्छी अनुकृति नहीं होगी। यदि मेरा स्वप्न पूरा होता है और सात लाख गावों में प्रत्येक गांव मे, जिससे आज निरक्षर रहते है। एक सुखमय गणतंत्र बनेगा जिसमें कोई बेकार नही रहेगा और हर व्यक्ति किसी न किसी उपयोगी काम लगा रहेगा तथा उसे पोषण, भोजन, हवादार आवास एवं शरीर ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र मिल सकेगा।''[31] वस्तुतः महात्मा गांधी के विचार एक मानवीय गरिमा एवं सर्वोद्य समाज का सपना था। जिसमें वंचित वर्ग के लिए एक मानवीय विकास की प्रतिबद्धता थी। महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित होकर भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार एवं नीति-निर्देशक तत्वों में उन मूल्यों को स्वीकार किया गया ताकि एक समतावादी मानवीय समाज की रचना की जा सके। महात्मा गांधी का स्त्री-शिक्षा संबन्धित विचार मनोवैज्ञानिक तथ्यों व्यवहारिक आवश्यकताओं के अनुसार था।

मूल्य एवं नैतिक शिक्षा- सम्पूर्ण आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन सदा से ही आदर्श व उन्नत मानवीय जीवन का केन्द्र-बिन्दु रहा है। व्यक्ति अपने जीवन में परम आनन्द को कैसे प्राप्त कर सकता और उसका स्वरूप क्या हो सकता है? जीवन की अंतिम सत्यता क्या है? इस सत्यता से साक्षात्कार कैसे हो सकता है? आदि मुलभूत प्रश्न सदा से चिन्तन के विषय रहें है। हर समाज में, हर काल में, हर चिन्तक अपने-अपने ढंग से विश्लेषण करता है तथापि उनके मूल्य एवं नैतिक समय, सांस्कृतिक एवं आवश्यकताओं, आदर्शो के साथ निर्धारित होती है।

महात्मा गांधी ने हृदय की शिक्षा अथवा आत्मा के विकास की शिक्षा को धार्मिक शिक्षा या आध्यात्मिक शिक्षा कहा था। इस शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चों में नैतिक गुण को विकसित करके उन्हें सद्चरित्र बनाना था। महात्मा गांधी का आशय था कि धार्मिक

अथवा आध्यात्मिक शिक्षा, छात्र के जीवन में प्रवेश कर उसकी आवांछनीय प्रवृतियों पर रोक लगाती है और उसकी सद्प्रवृत्तियों का पोषण करती है। आज के छात्रों में जो अनुशासनहीनता, चारित्रिक ह्रास एवं अन्य उत्तरदायित्व पूर्ण अराजकता मिलती है, उसका मुख्य कारण नैतिक शिक्षण का अभाव है। बच्चों पर माता-पिता, परिवार, समाज तथा अध्यापक का प्रभाव पड़ता है। आज की वास्तविक स्थिति यह है कि जिस नैतिक खोखलेपन में सारा समाज और प्रभाव डालने वाली शक्तियां तैर रहीं है, उससे अपरिपक्व युवक वर्ग ऐसी अराजकता को प्राप्त कर सकता है। उदारीकरण एवं भूमण्डलीयकरण के कारण भारतीय समाज में अपसंस्कृति बढ़ी है जिसके कारण भौतिकवाद बढ़ा है जिससे नैतिकता नगण्य हो गयी है। जो संस्कृति पाश्चात् मूल्य एवं नैतिकता पर आधारित थी। वह भारत के संदर्भ मे अनुकूल नहीं होगी। आज के उपभोक्तावादी संस्कृति में मानसिक तनाव, विघटन एवं हिंसा का मार्ग प्रस्तुत करती है। नैतिक एवं मूल्यों की शिक्षा ही सम्पूर्ण संतुलित जीवन का विकल्प हो सकती है।

महात्मा गांधी की आध्यात्मिक शिक्षा, धर्म की प्रवृत्तियों का पोषण नहीं करती हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे लिखा था - "वास्तविक धर्म और वास्तविक नैतिकता परस्पर रूप से बधें हुए है। धर्म नैतिकता के लिए उसी प्रकार है जैसी पानी उस बीज के लिए जो जमीन में बोया गया।''[32] महात्मा गांधी के विचार परम्परावादी न होकर व्यावहारिक थे। महात्मा गांधी के अनुसार- "वास्तनिक नैतिकता, लीक को पीटने में नहीं बल्कि अपने लिए सच्चे मार्ग को पाने में है तथा निर्भिकतापूर्वक अनुसरण करने में हैं।[33] वस्तुतः महात्मा गांधी की नैतिकता की धारणा तार्किक एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण पर आधारित थी।

कोई भी व्यक्ति एवं समाज मानदण्डों, मूल्यों के बिना अपने कार्यात्मक एवं व्यवहारात्मक क्रियाओं को संचालित नहीं कर सकता है। व्यक्ति एवं समाज को दिशा देने के लिए इसकी आवश्यकता हमेशा होती है। यह भी सत्य है कि समय, संदर्भ एवं परिस्थिति के अनुसार मूल्यों, मानदण्डों में परिवर्तन भी होता है। जो मूल्य आदिम समाज में थे वे आधुनिक समाज में नहीं हो सकते। कुछ शाश्वत मूल्य भी होते है जैसे सत्यम, शिवम, सुन्दरम्। महात्मा गांधी की नैतिक शिक्षा एंव मूल्य शिक्षा संबंधी विचार शाश्वत मूल्यों से अनुप्राणित थे जो मानव गरिमा एवं विकास के लिए समय सीमा से बाहर न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए भी उपयोगी हैं।

मानव अधिकार एवं शिक्षा- विश्व में मानवाधिकार से संबंधित जो भी चिन्तन मनन हुआ है उसका फलक निरन्तर व्यापक हुआ है। गरीबी, बेकारी, भूख, बीमारी, विस्थापन, संगठित अपराध और यहां तक कि राष्ट्रवादी आरोपित युद्धों, बच्चों, विकलांगों एवं जानवरों, पेड़-पौधों के साथ होने वाले अन्यायों को मानवधिकार से जोड़ा गया है। आज मनुष्य तथा समाज के आगे जितनी समस्याएं है वे किसी न किसी रूप में मनुष्य के होने और बने रहने के अधिकार से संबधित है आज मानवाधिकार के संदर्भ में एक व्यक्ति के नागरिक और राजनैतिक अधिकार यानि व्यक्ति की निजता की सुरक्षा, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार मानवीय गरिमा की सुरक्षा प्राकृतिक संसाधनों का न्यायोचित उपयोग और पर्यावरण की सुरक्षा महिलाओं के अधिकारों का स्थापन, जातीय सामाजिक, धार्मिक तनावों से मुक्त, शरणार्थिओं और विस्थापितों के समस्याओं के हल समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा आदि है। वस्तुतः मानवधिकार से संबन्धित मुद्दे स्पष्ट

रूप से मानव अस्मिता, उसके मानवीय विकास के मूल्यों से सीधे जुड़े हुए है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति व समाज की मानसिकता का निर्माण करता है। मानव, अधिकारों, हनन एवं पोषण व्यक्ति एवं समाज की मानसिकता पर निर्भर करता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में उन मूल्यों का विकास कर सकते है जिसमें एक संतुलित व्यक्तित्व एवं संतुलित समाज का विकास हो सके।

इक्वीसवी सदी का सबसे बड़ा संकट मानव की अस्मिता एवं अधिकारों का संकट है। महात्मा गांधी एवं मानववादी चिन्तक तथा मानवीय सरोकारों से जुड़े युगदृश्य से न केवल मानव की गरिमा अपितु शोषण, भय आतंक, हिंसा से मुक्त समाज की रचना करना चाहते थे। उनके पूरे चिन्तन का आधार ही मानवीय गरिमा एवं उसके विकास से जुडे प्रश्न थे। महात्मा गांधी इसी संदर्भ में अस्पृश्यता एवं छुआ-छूत को समाज का सबसे बड़ा कलंक मानते थे तथा उन्होंने उसको समाप्त करने का प्रयत्न किया था। महात्मा गांधी स्त्रियों के अधिकार एवं चेतना के प्रति जागरूक थे। महात्मा गांधी के विचार से न केवल व्यापक मानव अधिकारों की रक्षा हो सकती है अपितु आने वाले समय के लिए वह मानदण्ड प्रस्तुत करती है। महात्मा गांधी के सरोकार इतने व्यापक थे कि जिससे पर्यावरण, पशु पौधे, वंचित वर्ग, एवं मानवीय संसारिक पीड़ा से सभी पक्ष आ जाते है।

समकालीन परिदृश्य में प्रासंगिकता– समकालीन विश्व साम्यवाद एवं पूंजीवाद के प्रयोग एवं अनुभवों को भोग चुका है। यह विचार धारा सम्पूर्ण मानवता का विकास प्रस्तुत करने में असमर्थ रहीं जो एक प्रगतिशील एवं मानवीय समाज की स्थापना कर सके। साम्यवादी विचारधारा ने जहां राज्य के नियंत्रण में व्यक्ति को समाहित कर लिया अतः उसकी व्यक्तिगत इच्छा एवं स्वतंत्रता पनप नही पायी। वही पूंजीवाद ने ऐसे समाज एवं व्यक्ति की संकल्पना गढ़ी जिसमें असमानता,शोषण, अपसंस्कृति, पर्यावरण संकट आदि समस्याएं पनप रहीं है। यह सच है कि आज उदारीकरण एवं भूमण्डलीयकरण के दौर में उत्तर पूंजीवाद का वर्चस्व है। समकालीन विश्व जहां आतंकवाद एवं नवसांस्कृतिक उपनिवेशवाद की पीड़ा भोग रहें है। उसका विकल्प गांधीवादी चिन्तन ही हो सकता है।

महात्मा गांधी का सत्य अहिंसा, संबंधी विचार जहां भय एवं आतंक से मुक्ति प्रदान करता है वही अपरिग्रह, स्वदेशी, व्यक्ति एवं समाज के स्वावलंम्बन एवम् समानता का पोषण भी करता है। मानव जाति जिस संक्रमण के दौर से गुजर रही है उसका हल आज का समाज गांधी दर्शन में खोज रहा है। समसामयिक भारतीय समाज में जो मुख्य प्रवृतियां हमें दिखायी दे रहीं है वे नृजातीय भावना का विकास, विचारों को लेकर उपजे, भ्रम, कट्टरता, पश्चिमी की अंधी नकल और अवसरवादी राजनीति की स्वीकृति, परिवार एवं व्यक्ति का विघटन आदि चिंता के मुख्य विषय हैं। मूल्यों का संकट, मानवीय सरोकारों का आदि प्रमुख है। महात्मा गांधी का दर्शन एवं व्यवहार का फलक बहुआयामी है तथा आने वाली पीढ़ी को नयी दिशा प्रदान करने में सक्षम है।

महात्मा गांधी के शिक्षा विषयक विचार व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं सांस्कृतिक विकास की संमग्रता पर बल देता है उनका यह विचार आज के अराजक व्यवस्था में शिशु के स्वस्थ विकास एवं नारी की शिक्षा के महत्व पर एक दृष्टि देता है। महात्मा गांधी का पाठ्यक्रम समन्वयक एक अनोखा उदाहरण है जो आज के शुष्क एवं पाठ्यक्रम के बढ़ते बोझ के संदर्भ में एक कार्य अनुभव प्रदान कर सकता है। महात्मा

गांधी के आदर्शवादी विचार थे। अतः उनका शिक्षक एवं शिक्षार्थी संबंधी विचार आज के अंधी व्यावसायिकता में एक स्वस्थ विकल्प प्रस्तुत करता है।

धार्मिक कट्टरता एवं सास्कृतिक आक्रामकता के संदर्भ में महात्मा गांधी का नैतिक एवं मूल्य शिक्षा एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित था, जो आज भी उपयुक्त है। महात्मा गांधी का शिक्षा-दर्शन शिक्षा के व्यापक फलक को प्रस्तुत करता है। मानवीय दृष्टिकोण विकसित करता है। शांति एवं समानता के मूल्यों के आधार पर व्यक्ति एंव समाज की रचना करता है। महात्मा गांधी जीवन दर्शन अनुभूति का दर्शन था जिसके कारण कुछ दिवास्वपन लगता है। लेकिन यदि उसे गहराई से समझा जाए तथा उसे सच्चे अर्थों में क्रियान्वित किया जाये जो वह न केवल समकालीन मानवता को अपितु आने वाली पीढ़ी को भी एक सकारात्मक, मानवीय, एवं प्रगतिशील दृष्टि प्रदान करेगा।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. गांधी, मो0क0 : टूवर्ड्स न्यु एजुकेशन, नवजीवन पं0 हाउस अहमदाबाद, 1953, पृ0 36.
2. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 11, पृ0-241.
3. ओड, एल0के0 : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1990, पृ0-238.
4. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 11, पृ0-251.
5. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 11, पृ0-251.
6. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 314.
7. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 314.
8. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 314.
9. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 314.
10. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 320,32.
11. गांधी जी : 'आत्मकथा', 1987, पृ0 388.
12. गांधी जी : यंग इण्डिया, 12-12-1928
13. गांधी जी : 'आत्मकथा', 1987, पृ0 318-19.
14. ''कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता'', राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986:9:1
15. गांधी जी : यंग इण्डिया, 29-01-1925
16. गांधी जी : यंग इण्डिया, 29-01-1925
17. गांधी , मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, 1988, पृ0 320,321.
18. गांधी जी : गीता-बोध, 'मंगल -प्रभात', 1982, पृ0 93
19. गांधी जी : 'आत्मकथा', 1987, पृ0 197.
20. गांधी जी : 'आत्मकथा', 1987, पृ0 197.
21. गांधी जी : 'हरिजन', 23-11-1935.
22. गांधी जी : 'विद्यार्थियों से', पृ0 114.
23. ''श्रद्धावान लभते ज्ञानम्!'' - एक संस्कृत सूक्ति।
24. ''विद्यार्थी जीवन का समय विचारों के विकास का समय है'' - गांधी जी।
25. गांधी जी : यंग इण्डिया, 22-12-1927
26. गांधी जी : 'आत्मकथा', 1987, पृ0 388.
27. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 04, पृ0-274

28. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 04, पृ0-274

29. . कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : वा0 09, पृ0-40

30. गांधी ,मो0क0 : सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली 1988, पृ0 316.

31. भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति : (राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट का सार संक्षेप), 1971,74,पृ02.

32. नन्दा बलराम : गांधी और उनके आलोचक, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ0-75

33. डॉ0 राजानन्द : गांधी दर्शन और शिक्षा, सूर्य प्र0 मन्दिर बीकानेर,1.69 पृ0-77

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

रीवा जिले में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता

* रियंका सिंह

सारांश- *रीवा जिले के 65.55 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों, 66.66 प्रतिशत शिक्षकों, व 65.27 प्रतिशत अभिभावकों का यह मानना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा 25.55 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों 22.77 प्रतिशत शिक्षकों व 22.22 प्रतिशत अभिभावकों का यह मानना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है जबकि 8.79 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों, 10.55 प्रतिशत शिक्षकों व 12.50 प्रतिशत अभिभावकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि रीवा जिले में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है।*

मुख्य शब्द- शिक्षा, अधिकार, अधिनियम, नामांकन, जन-जागरूकता।

प्रस्तावना- शिक्षा का अधिकार अधिनियम विधेयक केबिनेट द्वारा 2 जुलाई, 2009 को स्वीकृत किया गया, राज्य सभा ने इस बिल को 20 जुलाई, 2009 को व लोक सभा ने 4 अगस्त, 2009 को पारित किया तथा 26 जुलाई, 2009 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के बाद 27 अगस्त, 2009 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। 1 अप्रैल 2010 से इसे लागू कर दिया गया है। संविधान निर्माता शिक्षा के अधिकार को मूल संविधान में एक मूल अधिकार के रूप में शामिल करना चाहते थे, परन्तु भारत की तत्कालीन परिस्थितियाँ इसके अनुकूल नहीं थीं। अतः उन्होंने इसे राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत स्थान दिया तथा इसे राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया, जोकि न्यायालयों में प्रवर्तनीय नहीं थे, संसद ने इस अधिकार की आवश्यकता को समझते हुये वर्ष 2002 में संविधान के 86वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा नया अनुच्छेद 21-क जोड़कर इसे मूल अधिकार के रूप में अध्याय-3 में शामिल कर प्रवर्तनीय बना दिया। उक्त अनुच्छेद 21-क को संविधान में समाविष्ट करने के कारण अनुच्छेद 45 को भी संशोधित कर इस प्रकार किया गया ''राज्य 6 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक सभी बालकों के बाल्यकाल की देखभाल और शिक्षा के लिये अवसर प्रदान करने के लिये अवसर उपलब्ध करेगा।'' इस प्रकार इस अनुच्छेद 45 में संशोधन द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करवाना राज्य का दायित्व तय किया गया। उक्त

* शोध छात्रा, शिक्षा विभाग, स्वामी विवेकानन्द विश्वविद्यालय, सागर (म0प्र0)

दोनों संशोधनों के साथ ही भाग-4 मूल कर्तव्यों में भी संशोधन कर अनुच्छेद 51 (क) (ट) जोड़ा गया, जिसके अनुसार, ''6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के माता-पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें। शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार का दर्जा देने के साथ ही इसे नीति निदेशक तत्वों तथा मूल कर्तव्यों में शामिल कर राज्य व अभिभावकों को कर्तव्य बनाया गया, किन्तु इन कर्तव्यों का पालन कराने के लिये कोई सकारात्मक साधन नही था। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये इस अधिनियम द्वारा राज्य सरकार, बच्चों के माता-पिता या संरक्षक सभी का दायित्व तय किया गया है तथा उल्लंघन करने पर अर्थदण्ड का भी प्रावधान किया गया है। जिसके कारण अभिभावक भी शिक्षा के प्रति जागरूक हुये है और परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा स्तर पर छात्र-छात्राओं के नामांकन में लगातार वृद्धि हो रही है। इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप नामांकन सम्बन्धी जन-जागरूकता की वास्तविक जानकारी प्राप्त करना है।

शोध विधियाँ एवं शोध उपकरण– शोधार्थी ने अपने शोध कार्य हेतु रीवा जिले के सभी नौ विकासखण्डों-रीवा, रायपुर-कर्चुलियान, गंगेव, सिरमौर, मऊगंज, नईगढ़ी, हनुमना, त्योंथर एवं जवा में से प्रत्येक से प्रारंभिक शिक्षा स्तर के 10-10 विद्यालयों, कुल 90 विद्यालयों (45 शासकीय + 45 अशासकीय) को विस्तृत शोध सर्वेक्षण हेतु न्यादर्श में चयनित किया गया है। तथा न्यादर्श में चयनित प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाध्यापकों, कुल 90 प्रधानाध्यापकों, प्रत्येक विद्यालय में कार्यरत 2-2 शिक्षकों, कुल 180 शिक्षकों एवं प्रत्येक विद्यालय में अध्ययनरत किन्हीं 4-4 बालक- बालिकाओं के अभिभावकों, कुल 360 अभिभावकों को शोध सर्वेक्षण हेतु न्यादर्श में चयनित किया है। शोधार्थी ने सभी न्यादर्शों का चयन दैव-निदर्शन, विधि से किया है। शोधार्थी ने अपने शोध अध्ययन हेतु कुछ शोध उपकरणों जैसे- प्रधानाध्यापक साक्षात्कार अनुसूची, अभिभावक साक्षात्कार अनुसूची एवं शिक्षक प्रश्नावली पत्रक आदि की सहायता ली है। शोधार्थी ने इन्हीं शोध उपकरणों के माध्यम से संग्रहित प्रदत्तों के सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त की, जिनका विवरण निम्नानुसार है-

तालिका क्रमांक-1, शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता का अध्ययन

(आधार-प्रधानाध्यापक साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित विद्यालयों की संख्या	न्यादर्श में चयनित प्रधानाध्यापकों की संख्या	'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन–जागरूकता में					
				वृद्धि हुई है		कोई प्रभाव नहीं पड़ा है		कोई जानकारी नहीं है	
				संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	10	07	70.00	02	20.00	01	10.00
2.	रायपुर–कर्चुलियान	10	10	05	50.00	03	30.00	02	20.00
3.	गंगेव	10	10	08	80.00	02	20.00	00	00.00
4.	सिरमौर	10	10	06	60.00	02	20.00	02	20.00
5.	मऊगंज	10	10	08	80.00	02	20.00	00	00.00
6.	नईगढ़ी	10	10	05	50.00	03	30.00	02	20.00
7.	हनुमना	10	10	07	70.00	03	30.00	00	00.00
8.	त्योंथर	10	10	06	60.00	03	30.00	01	10.00
9.	जवा	10	10	07	70.00	03	30.00	00	00.00
	योग	90	90	59	65.55	23	25.55	08	8.79

विश्लेषण एवं व्याख्या– उपरोक्त तालिका क्रमांक-1 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के न्यादर्श में चयनित प्रारम्भिक शिक्षा स्तर के विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से साक्षात्कार के माध्यम से शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि की जानकारी संकलित की गयी है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-1 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र के न्यादर्श में चयनित कुल 90 प्रधानाध्यापकों में से 59 प्रधानाध्यापकों का यह मानना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। तथा 23 प्रधानाध्यापकों ने यह माना हैं, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 08 प्रधानाध्यापकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार शोध क्षेत्र के 65.55 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों ने यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। तथा 25.55 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों नें यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 8.79 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है।

तालिका क्रमांक - 2, 'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता का अध्ययन

(आधार-शिक्षक प्रश्नावली पत्रक)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित विद्यालयों की संख्या	न्यादर्श में चयनित शिक्षकों की संख्या	'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन–जागरूकता में					
				वृद्धि हुई है		कोई प्रभाव नहीं पड़ा है		कोई जानकारी नहीं है	
				संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	20	13	65.00	05	25.00	02	10.00
2.	रायपुर–कर्चुलियान	10	20	16	80.00	03	15.00	01	05.00
3.	गंगेव	10	20	12	60.00	04	20.00	04	20.00
4.	सिरमौर	10	20	14	70.00	04	20.00	02	10.00
5.	मऊगंज	10	20	11	55.00	05	25.00	04	20.00
6.	नईगढ़ी	10	20	15	75.00	03	15.00	02	10.00
7.	हनुमना	10	20	13	65.00	06	30.00	01	05.00
8.	त्योंथर	10	20	12	60.00	06	30.00	02	10.00
9.	जवा	10	20	14	70.00	05	25.00	01	05.00
	योग	90	180	120	66.66	41	22.77	19	10.55

विश्लेषण एवं व्याख्या– उपरोक्त तालिका क्रमांक-2 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के न्यादर्श में चयनित प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों से साक्षात्कार के माध्यम से शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि की जानकारी संकलित की गयी है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-2 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र के न्यादर्श में चयनित कुल 180 शिक्षकों में से 120 शिक्षकों ने यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई

है। तथा 41 शिक्षकों नें यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 19 शिक्षकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार शोध क्षेत्र के 66.00 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। तथा 22.77 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 10.55 प्रतिशत शिक्षकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है।

तालिका क्रमांक-3

'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता का अध्ययन

(आधार-अभिभावक प्रश्नावली पत्रक)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित विद्यालयों की संख्या	न्यादर्श में चयनित अभिभावकों की संख्या	'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन–जागरूकता में					
				वृद्धि हुई है		कोई प्रभाव नहीं पड़ा है		कोई जानकारी नहीं है	
				संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	40	25	62.50	10	25.00	05	12.50
2.	रायपुर–कर्चुलियान	10	40	28	70.00	08	20.00	04	10.00
3.	गंगेव	10	40	26	65.00	08	20.00	06	15.00
4.	सिरमौर	10	40	24	60.00	11	27.50	05	12.50
5.	मऊगंज	10	40	24	60.00	10	25.00	06	15.00
6.	नईगढ़ी	10	40	28	70.00	08	20.00	04	10.00
7.	हनुमना	10	40	26	65.00	09	22.50	05	12.50
8.	त्योंथर	10	40	28	70.00	08	20.00	04	10.00
9.	जवा	10	40	26	65.00	08	20.00	06	15.00
	योग	90	360	235	65.27	80	22.22	45	12.50

विश्लेषण एवं व्याख्या- उपरोक्त तालिका क्रमांक-3 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के न्यादर्श में चयनित प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर अध्ययनरत बालक-बालिकाओं के अभिभावकों से साक्षात्कार के माध्यम से शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि की जानकारी संकलित की गयी है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-3 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र के न्यादर्श में चयनित कुल 360 अभिभावकों में से 235 अभिभावकों ने यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। तथा 80 अभिभावकों नें यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 45 अभिभावकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार शोध क्षेत्र के 65.27 प्रतिशत अभिभावक यह मानते हैं, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। 22.22 प्रतिशत अभिभावक यह मानते हैं, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के

परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि नहीं हुई है। जबकि 12.50 प्रतिशत अभिभावकों को शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है।

निष्कर्ष– तालिका क्रमांक- 1, 2 एवं 3 के विश्लेषण एवं व्याख्या से यह तथ्योद्‌घाटन होता है, कि शोध क्षेत्र के 65.55 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों, 66.66 प्रतिशत शिक्षकों एवं 65.27 प्रतिशत अभिभावकों ने यह माना है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है, कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के परिणामस्वरूप शोध क्षेत्र में नामांकन सम्बंधी जन-जागरूकता में वृद्धि हुई है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. अग्रवाल, रीना (2007) परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक सम्प्राप्तिः एक अवलोकन, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष-26, अंक-2।
2. कुमारी, शारदा (2005)- प्राथमिक स्तर पर आंकलन की प्रक्रिया, 'प्राथमिक शिक्षक', N.C.E.R.T. की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष 30, अंक +2, पृ. 46-50।
3. पाठक, पी.डी. (2007) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें इक्कीसवॉ संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. पाण्डेय, के.पी. (2007)- शैक्षिक अवसरों की समानता; भारतीय संदर्भ। Anwenshika : Indian Journal of Teacher Education, Vol-4, No-1, June 2007 pp.-118-128ण
5. प्रसाद, गोमती (2009)-रीवा संभाग की अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बालक-बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का समीक्षात्मक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ शिक्षा, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)
6. मिश्रा, योगेन्द्रनाथ - (2007) - मलिन बस्तियों में 6-14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की शैक्षिक आकाक्षांओं का अध्ययन, Researches and studies, Department of Education, University of Allahabad vol-58 pp-81-82.
7. मिश्र, गिरीश्वर (2018) : ज्ञान की अंधी और महंगी दौड़, दैनिक जागरण, रीवा, सोमवार, 5 मार्च।
8. पाण्डे, मृणाल (2018) : दयनीय दशा से दो-चार शिक्षा, दैनिक जागरण, रीवा, बुधबार, 24 जनवरी।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

प्रेमचन्द एवं हितेश डेका के उपन्यास में किसान

* नुरजाहान रहमातुल्लाह

सारांश– *भारतीय ग्राम जीवन का केन्द्र-बिन्दु है- किसान। सामान्यतः किसानों की स्थिति दयनीय होती हैं। इनके जीवन धारण की व्यवस्था न्यूनतम सुविधा को लिए हुए हैं। मुख्य कारण है – कर्ज तथा महाजनी शोषण। इन्हीं वास्तविकता को हिन्दी कथा-साहित्य में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द और असमिया साहित्य में लोकप्रिय उपन्यासकार हितेश डेका ने शब्द दिया हैं। किसान अपनी मेहनत से फसल उगाते है और उसी का फल सभी जन साधारण लोगों को मिलता हैं। फिर भी उनके तकदीर में भुखमरी, अभाव भरपूर रहती हैं। किसान की इन दयनीय स्थितिओं का वर्णन प्रेमचन्द और हितेश डेका दोनों के अपने कहानी और उपन्यासों में पूरी मात्रा में देखने को मिलता है। अतः इन बिन्दुओं पर पूर्ण चर्चा की आवश्यकता हैं।*

मुख्य शब्द– किसान, दयनीय, प्रेमचंद, हितेश, उपन्यास।

भारत ग्राम प्रधान देश हैं। वैसे यूरोप, अमेरिका, जापान को छोड़कर दुनिया के बाकी सभी महादेशों के राष्ट्र ग्रामों से ही बने हैं। किन्तु भारत इससे भिन्न हैं। यहाँ के ग्रामवासी अफ्रीका की तरह वनग्राम वासी नहीं, अपितु खेती-प्रधान ग्राम से जुड़े हुए हैं। फर्क इसी में हैं। वनग्राम वासियों को बिना पैसा लगाए वन्य ऊपज मिलती रहती हैं और उसी से उनका जीवन सामान्य मेहनत से चल जाता हैं। पर खेत ग्रामवासी को खेती के लिए रुपए-पैसे खर्च करके हल जोतना, जमीन को खेती के लिए तैयार करना, बीज खरीदकर बोना, फसल साफ करना, फसल काटना, कटे हुए फसल से धान गेहूँ अलग करना, उससे मिलिंग के जरिए आटा, चाँवल निकालना और बेचना। मतलब एक लम्बी कार्य-व्यवस्था है। इस कार्य-व्यवस्था के हर एक स्तर पर खर्च हैं। छोटे-छोटे खेत के किसान हर खर्च को उठा नही पाते हैं। फलतः उधार लेना उनके मजबूरी बन जाता हैं। वहाँ भी बिना सूद के पैसा मिलता नहीं। सूद के इस कारोबार में महाजन जमींदार सब मिले हुए हैं। किसानों से जमीन की दलिल या नथि-पत्र रखकर ऊँचे दाम में ये रुपए ऊधार देते हैं। गरीब किसान इनके शिंकजे में फँस जाते हैं। ऋण चुका न पाने के कारण फसल, जमीन, घर-वार सब चले जाते हैं। फलतः खेत मजदूर होना या बन्धुवा मजदूर बनना इनकी तकदीर बन जाते हैं। पूरे भारत में यही चित्र हर ग्राम में पैनोरामा की तरह सजी हुई हैं। नंगा, भूखा किसान ऊधार चुकाते चुकाते दम ही तोड़ देते हैं अथवा आजकल आत्महत्या का केस सामान्य सा हो गया हैं।

==========================

* सहकारी अध्यापक, कॉटन, विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

ग्राम-भारत की इस त्रासदी को प्रेमचन्द ने करीब से देखा, भोगा, समझा और इसे आवाज देने का सार्थक प्रयास किया। उनके प्रायः उपन्यासों में पथहारा किसानों की दुर्दशा का चित्र भरे हुए हैं। कर्मभूमि, गोदान इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। हिन्दी उपन्यास जगत में किसानों की वास्तविक स्थिति को इन्होंने साहसिकता से चित्रायित करके बुद्धिजीवी वर्ग की दृष्टि इस ओर खींचने का सफल प्रयास किया हैं।

'माटिकार', 'नतुन पथ', 'आजिर मानुह', 'एयेतु जीवन' आदि उपन्यासों में हितेश डेका ने असम के किसानों का अवर्णनीय, वंचनीय, शोषण, अत्याचार के यथार्थ छवि को मुखरित किया हैं। प्रेमचन्द, हितेश डेका दोनों के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु किसान हैं। वही किसान जिसके श्रम की फसल हम सभी आराम से खाते हैं पर, उनके दशा-दुर्दशा से हम सभी बेखबर हैं। इसीलिए उनके ऊपर चर्चा की आवश्यकता हैं।

''घर कहाँ है हुजुर, जहाँ पर रहूँ वहीं घर हैं।
जब घर था तब था। अब तो बेघर बेदर हूँ और
सबसे बड़ी बात यह है कि बेपर हूँ। . .
मेरे दादा नवांबी में चकेलदार थे।..
एक दिन वह थे, एक दिन यह है कि हम आप लोगों की
गुलामी कर रहे हैं। दिनों का फेर हैं।''

(तगादा, प्रेमचंद, पृ. 25)।

सेठ जी को एक किसान पर पाँच रु. आते थे। छः महीने से दुष्ट ने सूद-ब्याज कुछ न दिया था और न कभी - कभी कोई सौगात लेकर हाजिर हुआ था।.. आज उन्होंने उसी गाँव चलने का निश्चय कर लिया। (तगादा, प्रेमचंद, प. 25)।

प्रेमचंद ने भारतीय गाँवों का चित्रण करते हुए ग्रामीण किसान की कर्ज में डूबी हुई जिन्दा लाश जैसी जिन्दगी का यथार्थ चित्रण किया है। ऊपर दिए गए 'तगादा' नामक कहानी के अंश इसी ओर संकेत करते हैं।

ठीक उसी प्रकार से दूर उ. पू. भारत के एक कोण पर असम के ग्राम्य जीवन की यथार्थता का बखान करते हुए उपन्यासकार हितेश डेका की हृदय में किसानों के अधिकार वंचित दुर्दशा से विक्षोभ की ज्वार उठते हैं। उन्होंने वंचित-शोषित जनता के नेता अतुल के मुँह से 'माटिकार' (मिट्टी किस का) उपन्यास में सुनाया हैं -

''हय जानु, नांगल जार माटि तार। खेतियकर हे माटि। ताहानिर जमींदारी प्रथा आरु नचले। ताहानिर सामंत युग गल आरु सामंत नीतिउ बदलिल। माटिर अधिकारी खेतियक हे।'' (माटिकार, हितेश डेका, पृ. 13)

भावार्थ- 'जिसकी हल जमीन उसकी - क्या यह हुआ भी हैं। मिट्टी तो किसानों की हैं। उस जमाने की जमीदारी प्रथा अब और चलने नहीं दिया जायेगा। वह सामन्ती युग गया और सामन्ती नीति भी बदली। जमीन का अधिकार अब सिर्फ किसानों का हैं।'

दृष्टि- भारतीय ग्राम्य समाज के चितेरा मुंशी प्रेमचंद की किसानों के प्रति सहमर्मिता उनके अधिकांश लेखनी में अनायास व्यक्त हुआ है। हिन्दी तथा भारतीय साहित्य को उन्होंने ग्राम दर्शन कराए हैं। असम प्रांत में उसी काम को हितेश डेका ने प्रेमचंद से खींचकर मानों उ.पू. भारत में ले आए हैं। हितेश डेका ने अपने 'नतुन पथ' उपन्यास के दीन बंधु नामक महाजन का जो चित्र खींचा हैं वह इस प्रकार हैं -

''इफाले दीन बंधु सूदखोर महाजन। गाँवर मानुहक टका धारलई दि शतकरा पचास टका सूद आदाय करा, सूतीयाकई टका दि शतकरा बछरी पाँच मोन धान आदाय करा आरु चक्रवृद्धि हारे सूद धरि शेषत मानुहर घर-माटि निलामत दि कोंरिं दाराई डाकि पाचत तार मालिक हुआ तार व्यवसाय। आदालतर आईन, विशेषतः देवानी मकर्दमार कथात तँउक सरुसुरा उकीकेऊ नुओर।'' (नतुन पथ, पृ. 12)।

भावार्थ- इधर दीनबंधु सूदखोर महाजन हैं। गाँव के लोगों को नगद रु. उधार देकर पचास प्रतिशत हिसाब से सूद अदा करना, सूद में रु. देकर साल में पांच मन करके धान अदा कर लेना और चक्रवृद्धि दर से सूद लगाकर लोगों के घर-बार नीलाम करवाकर हड़प लेना उसका व्यवसाय हैं। अदालत की कानून खासकर दीवानी मुकदमा की बातों में छोटें मोटे वकील उनके सामने कुछ भी नहीं हैं। इधर मुंशी प्रेमचंद ने अपने 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी साहूकर का वर्णन किया हैं- ''पहले उनकी एक छोटी सी हलदी की आढ़त थी। ... अब आढ़ते बंद कर दी थी। केवल लेन देन करते थे। जिसे कोई महाजन रुपये न दे उसे वे बेखटके दे देते और वसूल भी कर लेते।'' (कर्मभूमि, प्रेमचंद)।

'कर्मभूमि' में इस साहूकारों के प्रतिनिधि समरकांत हैं। यह वर्ग पैसा दांतों से भींचता है और पैसा बनाने में भी कुशल होता हैं। धन-प्राप्ति के लिए वह उचित-अनुचित का विचार नहीं करता। ऐसा ही एक और सेठ का वर्णन 'कर्मभूमि' में किया गया हैं लाला मणिराम वह भी धनिक वर्ग के प्रतिनिधि हैं। यह वर्ग निर्धनों के रक्त पर बढ़ता है, पर फिर भी उनकी सुख-सुविधाओं के प्रति उदासीन हैं।

हितेश डेका द्वारा वर्णित चरित्र सीता रामारया इससे भिन्न नहीं है। 'माटिकार' उपन्यास का यह पात्र गाँव का एकमात्र दुकान का मालिक है। मुँह में तो उसके गुड़ है पर अभाव ग्रस्त किसानों को धन देकर उनके खेती-बारी पर कब्जा कर लेने में यह चतुर सेठ उस्तादों का उस्ताद है। झूंठी दलील बनाकर गाँववालों को ठगी से जमीने ले लेना इनका अभ्यास हो गया है।

इस प्रकार प्रेमचंद और हितेश डेका की मनोभावना में आतंकित ऐक्य पाया जाता हैं। मुंशी प्रेमचंद भारतीय उपन्यास साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार के रूप में मान्य हैं। हिन्दी कथा-साहित्य के वे सम्राट के आसन पर आसीन हैं। उनके उपन्यासों में ग्राम्य कथा, ग्राम्य चरित्र सजीव रूप में उपस्थित हैं। दरअसल, वे ग्राम्य जीवन के सर्वाधिक सफल चित्रकार हैं। उनके संवेदनशील हृदय गांव के गरीब-किसानों, निस्सहाय-अवलाओं के लिए सर्वदा करुणा से सिक्त थे और उसका पूर्ण चित्रण उनके पात्रों में सजीव हो उठे हैं। गोदान के होरी, 'निर्मला' की निर्मला, 'गबन' की जालपा, कर्मभूमि के पहाड़ी गाँव की रैदासी, किसानों, सेवासदन और रंगभूमि के पात्रों सभी गाँवों में रहनेवाले सरल हृदय शोषित जन हैं। जिनके उत्थान के लिए प्रेमचंद में सर्वदा आग्रह रहा हैं। उनका विश्वास था ग्राम्य भारत की उन्नति से ही भारत की श्रीवृद्धि संभव है और इसके लिए ग्राम भारत की रीढ़ किसानों को अपनी दयनीय अवस्था से बाहर निकालना जरूरी हैं। किसानों को उन्होंने आदर्श रूप देने का प्रयास किया हैं। इसलिए उनके किसान हालात से समझौते करनेवाले होते हैं। वे अपनी गरीबी के लिए औरों को दोष न देकर अपनी कमजोरी मान कर निमित्त से ही सन्तुष्ट हैं। आदर्श समाज निर्माण का लाभ उठाते हुए ये किसान महाजनों से फरियाद करते हैं पर विद्रोह नहीं करते, वे उम्मीद में है कि हृदय

परिवर्तन के जरिए महाजन उनके दु:खों को समझ पाएगा और हालात में सुधार होकर ग्रामीण भारत में प्रगति का परिवेश विराजमान होगा।

उपसंहार– इस प्रकार के युटोपीय कल्पनागत आदर्शवाद के साथ-साथ प्रेमचंद भारतीय ग्राम जीवन की यथार्थ भी 'होरी' के चरित्र निर्माण के जरिए साफ कर देता हैं। 'गोदान' का होरी भारतीय बुद्धि जीवियों के लिए एक सार्थक संकेत हैं, जिसके द्वारा शासक एवं समाज के यथास्थिति को मानकर चलने वालों के लिए एक चेतावनी हैं, जिससे कि समाज के बुनियाद किसानों की दयनीय स्थिति दुर्दशा को समझ पाने और उसे दूर करने के लिए भारतीय चिंताजगत को मजबूत कर देता है और यहीं से प्रेमचंद को भारतीय ग्रामजीवन को समझा पाने वाली सही सिद्धान्त लेते हुए देखा जा सकता हैं।

असमिया उपन्यासकारों में सर्वाधिक पठित उपन्यासकार हितेश डेका की हैं। उनके उपन्यासों का आधार मुख्यतः असम प्रांत के ग्राम जीवन हैं। प्रेमचंद की भाँति इन्होंने भी कथा को आदर्श परक बनाकर पेश करने में रूचि दिखाई है। इनके उपन्यासों के जरिए असमीया किसानों की ग्राम्य सरलता-सहनशीलता एवं लोकाचारों की छबि साफ देखने को मिलती हैं। प्रेमचंद की 'सोजेवतन' की भाँति डेका को भी शासकों के प्रति तीखी-तेवर एवं ग्रामीन विद्रोहियों के प्रति हमदर्दी के कारण शासकों का कोप-भाजन बनना पड़ा था। उनके 'माटिकार' उपन्यास पर इसी कारण प्रतिबन्ध लगा दिया था। उनके द्वारा रचित आजिर मानुह, नतुन पथ, माटिकार, भाराघर, एयेतु जीवन, सीमार काजिया, आचल मानुह, बैरी मानुह, जीवन संघात, इतिहासे सकिया, सुखर संसार, निर्यातित सती, बारी कोंवर, गाँवर मानुह, त्याग आदि में ग्राम्य जीवन की उपस्थिति अनायास उपलब्ध हैं। इन सभी उपन्यासों में ग्राम्य जीवन मुखर हो उठा हैं। गाँव के दैनन्दिन जीवन-यात्रा के भरपूर चित्र से सभी उपन्यास सजीव हैं। इस प्रकार प्रेमचंद और हितेश डेका दोनों के उपन्यासों का सम्यक विवेचन से भारतीय ग्राम्य जीवन की चित्रण एवं दर्शन प्राप्त होने की पूर्ण संभावना हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. तगादा, सदगति एवं अन्य कहानियाँ, मुंशी प्रेमचंद, पंकज पब्लिकेशन, जयपुर
2. माटिकार, हितेश डेका, चन्द्र प्रकाश, पानबजार, गुवाहाटी।
3. नतुन पथ, हितेश डेका, चन्द्र प्रकाशन, पानबजार, गुवाहाटी।
4. कर्मभूमि, प्रेमचंद, अशोक प्रकाशन, दिल्ली - 6
5. प्रेमचंद और कर्मभूमि (एक अध्ययन) अशोक प्रकाशन, दिल्ली- 6 डॉ. प्रमिला गुप्ता।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

बच्चन और समाज
('क्या भूलूं क्या याद करू, 'नीड़ का निर्माण फिर' के विशेष संदर्भ में)

* **मीनाक्षी देवी**

सारांश– *हिंदी साहित्य जगत में डॉ. हरिवंश राय बच्चन का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। मूलतः वे कवि रूप में विख्यात है, परन्तु साहित्य की दूसरी विधाओं में भी उनका योगदान रहा है। हिंदी आत्मकथा साहित्य में उनका आगमन एक युगांतकारी घटना है। उन्होने अपनी आत्मकथा को चार भागों में लिखा है। इन चारों खण्डों में उन्होने अपनी सम्पूर्ण कथा कह डाली हैं। इसके अंतर्गत बच्चन ने समाज सम्बन्धी अनेक बातों का उल्लेख किया है। आलोच्य विषय के अंतर्गत उनकी आत्मकथाओं के प्रथम दो भागों के अंतर्गत समाज को विविध दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया जा रहा है। इसमें राजनैतिक, धार्मिक, अर्थनैतिक, पारिवारिक, साहित्यिक एवं भौगोलिक आदि दृष्टि का उल्लेख किया गया है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उनके व्यक्तित्व में समाज का प्रभाव आना निश्चित है। बच्चन ने भी अपने समय के समाज को भलीं भांति देखा है और उनसे अपने व्यक्तित्व का निर्माण भी किया है। अतः प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से बच्चन की दृष्टि से समाज के विविध रुपों को देखने का प्रयास किया गया है।*

मुख्य शब्द– समाज, आत्मकथा, विशेष, सन्दर्भ

प्रस्तावना– साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। भारतीय अथवा पाश्चात्य साहित्य में समाज का विविध रूप में चित्रण हुआ है। कोई भी समाज राजनीति, अर्थनीति, धर्म व्यवस्था, शिक्षा आदि के समन्वय से बना हुआ होता है और इसकी अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से होती है। वैसे तो साहित्य की तीन प्रमुख विधा-उपन्यास, कहानी और नाटक में समाज चित्रण को हम देखते है, लेकिन आत्मकथा साहित्य में भी सामाजिक उद्देश्य का प्रतिफलन हम देख सकते है। आधुनिक हिंदी साहित्यकारों में डॉ. हरिवंश राय बच्चन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मूलतः वे कवि रूप में प्रसिद्ध है, परन्तु हिंदी साहित्य के अन्य विधाओं में भी उनकी रचना मिलती है। उनकी प्रमुख रचनाओं में मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, खयाम की रुबाइयां,निशा निमन्त्रण, आकुल अंतर, जाल समेटा आदि कविता संग्रह तथा उनकी आत्मकथा के चार खण्ड 'क्या भूलूं क्या याद करू (1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970), 'बसेरे से दूर'(1977), 'दशद्वार से सोपान तक'(1985) आदि का नाम उल्लेखनीय है। आलोच्य विषय के अंतर्गत उनकी आत्मकथाओं में चित्रित समाज को ही मूख्य रूप में लिया जा रहा है। उन्होने अपनी आत्मकथाओं में जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक सारी बातें कह डाली है।

* शोध छात्रा, कॉटन विश्वविद्यालय।

अध्ययन का महत्व– साहित्य में समाज चित्रण अपने आप में विशेष महत्व रखता है। आलोच्य विषय के अंतर्गत बच्चन की आत्मकथाओं में चित्रित समाज को लिया गया है। यह समाज के विविध पहलुओं को लिया जा रहा है। बच्चन के व्यक्तित्व पर समाज और व्यक्ति दोनों का प्रभाव पड़ा है। प्रस्तुत विषय के अध्ययन से तत्कालीन समाज के विविध परिदृष्य को देख सकेंगे। बच्चन जिस समय के थे उस समय के समाज में अंधविश्वास, कु-संस्कार, जातिगत भेदभाव आदि भरे पड़े थे। इसके अलावा राजनैतिक, अर्थनैतिक, शैक्षिक दिशा भी उतनी उन्नत न थी। इन समस्याओं के बावजूद भी बच्चन ने अपनी मंजिल बना ली थी।

अध्ययन का उद्देश्य– विषय के चयन में उद्देश्य का निहित होना अनिवार्य होता है। प्रस्तुत विषय के अंतर्गत बच्चन की आत्मकथाओं में समाज चित्रण को दिखाना ही उद्देश्य रहा है। इसके अतिरिक्त आत्मकथा साहित्य के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षण करना भी एक उद्देश्य है। तत्कालीन समाज का चित्रण और बच्चन के संघर्ष का चित्रण सम्पूर्ण आत्मकथाओं में व्याप्त है। अतः इन्ही उद्देश्य को मुख्य मानकर प्रस्तुत विषय का चयन किया गया है।

विश्लेषण– आत्मकथा साहित्य आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण विधा है। हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों ने अपने विषय में आत्मकथा कहीं है। आत्मकथा लिखने का आरम्भ तो प्राचीन काल में ही हो गया था, लेकिन उस समय की आत्मकथा विशुद्ध आत्मकथा न होकर आत्मकथात्मक साहित्य ही था, जैसे वाणभट्ट की आत्मकथा 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी'। हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'अर्धकथानक' को माना जाता है, जो सन् 1641 ई. में लिखी गई थी। परवर्ती समय में हिंदी साहित्य में साहित्यकारों ने आत्मकथा लेखन की परम्परा को आगे बढ़ाया। यह परम्परा भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग और छायादोत्तर युग से वर्तमान समय तक चल रही है। समय, परिवेश एवं परिस्थिति का प्रभाव आत्मकथाओं में पड़ता रहा।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध आत्मकथाकार डॉ. हरिवंश राय बच्चन का नाम छायावादोत्तर युगीन आत्मकथाकारों के साथ लिया जाता है। उनके समकालीन आत्मकथाकारों में यशपाल, देवेन्द्र सत्यार्थी, मोहन राकेश, अमृता प्रीतम आदि का नाम उल्लेखनीय है। बच्चन अपने समय के सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाकार माने जाते है। उन्हे अपनी आत्मकथा के चारों खण्डों के लिये हिंदी साहित्य का सर्वोच्च सम्मान 'सरस्वती' से नवाजा गया। डॉ. जाधव के शब्दों में डॉ. हरिवंश राय बच्चन जहाँ हिंदी के अत्याधिक लोकप्रिय कवि हैं, वहीं आत्मकथा लेखन में भी उन्होंने नवीन कीर्तिमान स्थापित किए हैं। लोकप्रियता के क्रम में महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के बाद उनकी ही आत्मकथा आती हैं" (जाधव:2007:46)। उन्होने अपनी आत्मकथाओं में तत्कालीन समाजिक परिदृश्य का ऑकलन किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए उनके आत्मकथाओं में से केवल प्रथम और द्वितीय दो खण्डों में चित्रित समाज को लिया गया है। आलोच्य विषय को निम्नलिखित रूप में विश्लेषित किया जा रहा हैं-

क्या भूलूं क्या याद करू में समाज चित्रण– प्रस्तुत आत्मकथा के अंतर्गत समाज को यानी मूलतः भारतीय समाज को विविध दृष्टिकोण से देखा गया है, जैसे- सामाजिक, अर्थनैतिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं साहित्यिक आदि। सामाजिक दृष्टिकोण

के अंतर्गत वर्णभेद एवं जातिगत भेद- भाव, अंधविश्वास एवं कुरीतियां, लोक विश्वास और नारी चित्रण आदि आते हैं। यह इन समस्याओं का अनेकों उदाहरण भरे पड़े है। बच्चन की पहली आत्मकथा में उनके कायस्थ होने से ब्राह्मण के द्वारा हीन भाव के प्रदर्शन का उल्लेख किया गया है। यह कायस्थ को क्रुर रूप में चित्रित किया गया है[1], यथा -

'कहे सुने से ठाकुर मानै, बाह्मण मानै खाए,
दिए - लिए से कायथ मानै, शुद्र मानै लठियाए।

(क्या भूलूं क्या याद करू संस्करण 2010:16)

यह जिस प्रकार कायस्थ को नीचा दिखाने की कोशिश की गई है, उसी प्रकार प्रसंगानुसार उसे ऊपर उठाने की भी कोशिश की गई है। यह भी उल्लेख किया गया है कि कायस्थ लोग शरीर से दुर्बल और बुद्धि से तेज होते है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में घटित हिंदू-मुसलमान दंगे का उल्लेख किया गया है। लेकिन बच्चन के पिता ने इस दंगे का विरोध किया था। बच्चन भी तत्कालीन समाज में प्रचलित जात-पात एवं छुआ-छूत आदि व्यवस्था का विरोध करते थे। उस समय बच्चन बड़े ही आर्थिक तनाव से गुजर रहे थे। उन्हे आगे पढ़ने के लिए आर्थिक संघर्ष करना पड़ा था। इसके साथ साथ विवाहादि में दहेज आदि प्रथा के कारण उनका परिवार आर्थिक रुप से कमजोर हो गया था। बच्चन की मां घर की आर्थिक दशा देखकर जितना हो सके घर को कम खर्च में चलाती थी। बच्चन समाज में स्त्री की आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में कहते है कि- "एक बात मैं और कहना चाहूँगा, स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता की घोषणा करने के लिए वेतन का चेक ही जरूरी नहीं है। अविकसित समाज में कम ही स्त्रियों को वेतन अर्जित करने वाला काम सुलभ हो सकता है। (क्या भूलूं क्या याद करू सं 2010:83)

तत्कालीन समाज में राजनीति का गहरा प्रभाव रहा है। बच्चन के बचपन के दिनों में गांधी जी की अहिंसा आंदोलन, देशी वस्त्र का व्यवहार एवं विदेशी वस्त्र का त्याग आदि का प्रभाव बच्चन के परिवार पर भी पड़ा था, उनके घरों में चर्खा चलाया जाता था। गांधी जी की राजनैतिक भाषण आदि के समय किस प्रकार हजारों - लाखों लोगों की भीड़ होती थी उसका उल्लेख भी यह किया गया है। इसके अतिरिक्त लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के समय उनके अस्थि विसर्जन के समय हुए लोगों की भीड़ के बारे में उल्लेख किया गया है। उस समय हमारे भारतवर्ष ने बहुत सारे महान राजनैतिक नेताओं को खोया था। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत आत्मकथा में भौगोलिक स्थिति का भी उल्लेख किया गया है। यह बच्चन ने पूर्वजों का वर्णन किया है और उनके पूर्वज किस प्रकार एक जगह से दूसरे जगह चलकर अपने अपने वंशज को आगे बढ़ाए, इसका उल्लेख यह किया गया है। यह प्रसंगवश साहित्यिक स्थिति का भी उल्लेख किया गया है। तत्कालीन समाज में साहित्यकारों की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। साहित्यकार और प्रकाशकों में मतभेद होती रहती थी। स्वयं बच्चन को ही ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ा था। अतः हम देख सकते है की बच्चन की आत्मकथा भाग 1 में तत्कालीन समाज के विविध पक्षों का उजागर हुआ है।

'नीड़ के निर्माण फिर'[2] में समाज चित्रण- यह बच्चन की आत्मकथा का दूसरा भाग है। प्रस्तुत आत्मकथा के अंतर्गत बच्चन ने उनकी पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु के बाद के घटनाक्रम का उल्लेख किया है और उनकी द्वितीय पत्नी तेजी से विवाह तक

की समस्त घटनाओं को कहा हैं। प्रस्तुत आत्मकथा में भी तत्कालीन समाज का चित्र देखने को मिलता है। डॉ. जाधव[3] के शब्दों में - "व्यक्ति को अपने साधारण जीवन में सुख और दुख में भी समाज के सहयोग की आवश्यकता होती है परन्तु व्यक्ति को समाज से यह सहयोग लेने के लिए बड़ा महंगा मूल्य चुकाना पड़ता है। (डॉ. जाधवः संस्करण 2007:54) अर्थात् समाज एक विशेष नियम में बंधा होता है और समाज में निवास करनेवाले व्यक्ति को समाज द्वारा स्थापित रीति-नीति का पालन करना पड़ता है। इन सबका पालन करने के लिए व्यक्ति को अपनी इच्छा का बलिदान देना पड़ता है। बच्चन की प्रथम पत्नी श्यामा के मृत्यु के पश्चात वे बिल्कुल अकेले पड़ गये थे और मानसिक रुप से कमजोर हो गये थे। लेकिन वे हारे नहीं उन्होने अपने काव्य के माध्यम से मन को सन्तुलित किया। बरेली में एक कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाते समय बच्चन की मुलाकात तेजी से हुई। यहीं मुलाकात बाद में विवाह बन्धन में बंध गई और बच्चन ने नीड़ का फिर से निर्माण कर लिया। बच्चन और तेजी के विवाह प्रसंग में भी सामाजिक वाधाएं उत्पन्न हुई थी। तेजी पंजाबी परिवार से थी, उनकी शिक्षा-दीक्षा, आचार-विचार आदि सब बच्चन से भिन्न थी, लेकिन दोनों के मन एक दूसरे की तरफ थे, परन्तु एक कायस्थ का सिक्ख के साथ विवाह होना समाज को मान्य नही था। फलतः बच्चन को बिरादरी से बाहर होना पड़ा। बच्चन ने धारा के विपरीत चलकर अपने जातिगत परिचय को छोड़ दिया और इसी कारण से उन्होने अपने बेटों के नाम के पीछे अपनी उपाधि को छोड़कर 'बच्चन' रख दिया। तब से उन्हें बच्चन परिवार के रूप में ही जाना जाता है। उक्त समय में बच्चन की आर्थिक अवस्था उतनी नाजुक नहीं थी लेकिन उन्हे तब भी अर्थ के लिए संघर्ष करना पड़ा था।

निष्कर्ष– समाज और मानव का गहरा सम्बन्ध है। मानव जाति समाज के नियम कानून को यथासम्भव पालन करते है , लेकिन यहीं नियम कभी कभी व्यक्ति के लिए समस्या उत्पन्न करती है। बच्चन रचित आत्मकथाओं में चित्रित तत्कालीन समाज का चित्र हमारे सामने आए है। समाज को उन्होंने विविध दृष्टि से देखने की कोशिश की है और इसमें वे बहुद हद तक सफल भी रहे है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. बच्चन हरिवंश राय (2010), 'क्या भूलूं क्या याद करूं' राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण।
2. बच्चन हरिवंश राय (2012), 'नीड़ का निर्माण फिर', राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण
3. डॉ. रावसाहेब जाधव, (2007), 'हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा एवं पूनर्मूल्यांकन', चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर संस्करण।
4. डॉ. श्रीवास्तव चम्पा, (2013), 'हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य', वाणी प्रकाशन, दिल्ली. संस्करण।
5. 'दिलचस्प' राजावत सिंह नारायण, (2012), 'डॉ. हरिवंश राय बच्चन' राजा पश्वकेट बुक, दिल्ली, संस्करण।
6. कुमार अजित, (2015), 'बच्चन की आत्मकथा', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.संस्करण।
7. भारती पुष्पा, (2007), 'हरिवंश राय बच्चन की साहित्य साधना', वाणी प्रकाशन,दिल्ली. संस्करण।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

मनोहरश्याम जोशी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त विषाक्त साम्प्रदायिकता

* अनिका सिंह
** मृदुल जोशी

सारांश– *मनोहरश्याम जोशी ने समाज की उन विद्रूपताओं को अपने साहित्य का हिस्सा बनाया है जो मानव–जीवन को तहस–नहस करने पर तुली है। ये विद्रूपताऐं ईश्वर प्रदत्त नहीं बल्कि मनुष्य प्रदत्त ही है। मनुष्य ने समाज में इतनी उन्नति कर ली है कि वह अब हर किसी को अपनी अंगुली पर नचाना चाहता है। ईश्वर ने सबको एक बनाया था लेकिन मानव ने स्वार्थहित के लिए सबको अलग–अलग धर्मो, वर्गो, सम्प्रदायों में बांट दिया और अगर धर्मो, वर्गो में बांट भी दिया तो अब उनको चैन से जीने नहीं देते। तरह–तरह की साम्प्रदायिक हिंसा फैला कर लोगों में मार–काट करवाते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।*

मुख्य शब्द: विद्रूपतायें, साम्प्रदायिकता, द्वेष, सम्प्रदाय, राजनीति, मंतव्य, अभिव्यक्ति।

समाज में व्याप्त तमाम तरह की विसंगतियों में साम्प्रदायिकता एक ऐसी विसंगति है जिसने जन-समुदाय को अपने पंजो में जकड़ रखा है। मनोहरश्याम जोशी के कथा साहित्य में व्यक्त विषाक्त साम्प्रदायिकता के विषय से पूर्व साम्प्रदायिकता के विषय में जानना अनिवार्य हैं। साम्प्रदायिकता 'सम्प्रदाय' शब्द का विशेषण है। सम्प्रदाय शब्द को अंगेजी में Commual कहा जाता है। Commual शब्द समुदाय का वाची है। अतः साम्प्रदायिकता दो सम्प्रदायों के बीच मानवीयता को काटकर केवल ईर्ष्या का काम करती है।

साम्प्रदायिकता का अर्थ–

वृहत हिन्दी शब्द कोश के अनुसार- ''अपने ही सम्प्रदाय को विशेष महत्व देना और अन्य से द्वेष करना। सम्प्रदाय विशेष के प्रति आसक्ति के कारण उत्पन्न संकीर्ण भावना।[1]''

ज्ञान शब्दकोश के अनुसार- ''केवल अपने सम्प्रदाय का हित चाहना और दूसरे सम्प्रदायों के हितों की उपेक्षा करने को तैयार रहना।[2]''

प्रमाणिक हिन्दी कोश के अनुसार- ''साम्प्रदायिकता- केवल अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता और हितों का विशेष ध्यान रखना और दूसरे सम्प्रदायों से द्वेष रखना (कम्यूनलिज्म)।[3]''

साम्प्रदायिकता के अर्थ को जानने के बाद परिभाषाओं पर विचार करना भी

* शोध छात्रा (हिन्दी), गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
** असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) कन्या गुरूकुल परिसर (गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

अनिवार्य है।

सुनील कुमार अग्रवाल के अनुसार- ''साम्प्रदायिकता आधुनिक राजनीति की एक खास प्रवृत्ति बन गई है जो लोगों में धार्मिक पहचान के बहाने धार्मिकता का सहारा लेकर राजनीतिक रूप से गोलबंद करना चाहती है इसलिए लोगों की धार्मिक भावना का दिनों-दिन संकीर्ण और आक्रामक होते जाना साम्प्रदायिक राजनीति के फलने-फूलने की पहली शर्त है।[4]''

प्रो0 विपिन चन्द्र के अनुसार- ''किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित भी समान होते है। यह वही धारणा है जो भारत में हिंदू, मुसलमान, ईसाइयों और सिखों को अलग-अगल समुदाय मानती है, जिनका निर्माण एक दूसरे से अलग-थलग और बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से हुआ है।[5]''

आधुनिक चिन्तक व समाज सुधारक सर सैयद अहमद खान ने लिखा है कि "भारत हिन्दू और मुसलमान दोनों का घर हैं। दोनों भारत की फिजा में साँस लेते है और पवित्र गंगा और जमुना का पानी पीते हैं। ××× ×× दोस्तों! मैंने बार-बार कहा है कि हिन्दुस्तान एक दुल्हन की तरह है जिसकी दो खुबसूरत चमकीली आँखें है- हिन्दू और मुसलमान। यदि ये दोनों आपस में लड़ाई करेंगी तो खूबसूरत दुल्हन बदशक्ल हो जाएगी और यदि एक आँख दूसरे को नष्ट कर देगी तो दुल्हन एक आँख ही गवाँ बैठेगी। हिन्दुस्तान के लोगों अब यह तुम्हारे हाथ में है कि इस दुल्हन को भैंगी बनाओं या कानी।"[6]

अहमद खान जी देश में एकता का प्रसार फैलाने की कोशिश करते है।

के0पी0 करूणाकरण के अनुसार- ''भारत में साम्प्रदायिकता का तात्पर्य उस विचारधारा से है जो किसी विशेष धार्मिक समुदाय तथा जाति के हितों में बढ़ोतरी की पक्षधर थी।"[7]

अतः साम्प्रदायिकता दो या दो से अधिक सम्प्रदायों के मध्य संघर्ष व टकराव का दुष्परिणाम है। साम्प्रदायिकता दो तरह से कार्य करती हैं उदारवादी रूप में-जिसमें दूसरे धर्मों के प्रति नर्म रवैया होता है वह उदारवादी साम्प्रदायिकता है और दूसरी कट्टर साम्प्रदायिकता जिसमें दूसरे धर्म व सम्प्रदायों के प्रति घृणा व क्रोध भरा रहता है वह कट्टर साम्प्रदायिकता कहलाती है।

साम्प्रदायिकता राजनीति की ही देन है। राजनेताओं ने स्वार्थ हित की खातिर गरीबों का खून चूसा है। सभी सम्प्रदाओं की एकता भंग करने के लिए उन्हें तरह-तरह के लालच देकर एक-दूसरे के खिलाफ ईर्ष्या पैदा करते हैं। आधुनिक समय में साम्प्रदायिकता देश में विष की तरह तेजी से फैल रही है, जो अपने जहरीलें स्वभाव से लोगों को निगल रही है।

मनोहरश्याम जोशी जी के कुरू-कुरू स्वाहा उपन्यास में मिस नन्दिनी नटेसन के माध्यम से एक धर्म को दूसरे धर्म में बदलने के लिए किस तरह की राजनीति बनाई जाती है। मिस नन्दिनी नटेसन के पति ईसाई डॉक्टर है। ये पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी कार्य करते है। पत्र पत्रिकाओं की आड़ में साम्प्रदायिकता फैलाने का कार्य करते है- ''यों जब से सनसनीखेज रहस्योद्घाटन का सिलसिला शुरू हुआ है तब से कुछ पत्रिकाएँ इन्हें सी0आई0ए0 से सम्बद्ध बता रही हैं और कुछ का अभियोग है कि इन लोगों ने गरीब हिन्दुओं का ईसाई बनाने का षड्यन्त्र रच रखा है।"[8]

किसी सम्प्रदाय के गरीब लोगों को शस्त्र के बल पर अन्य सम्प्रदाय में परिवर्तित कर लेना है एक हिंसात्मक कार्य हैं। यदि कोई अपनी इच्छानुसार धर्म परिवर्तित करता है तो उसके स्वयं के सम्प्रदाय वाले उसे जीने नहीं देते है।

'हमज़ाद' उपन्यास में लेखक ने लाला जी के माध्यम से स्पष्ट किया है कि इच्छानुसार धर्म परिवर्तन करने पर उन्हें किस तरह की परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था-"लाला जी को बिरादरी से बाहर इसलिए किया गया कि उन्होंने लाहौर में अपनी पढ़ाई के दौरान एक ऐसे घराने की लड़की से शादी कर ली जिसका नाम आर्ट एंड कल्चर की दुन्या में बहुत रोशन था। ××× ×× सवा सत्यानास यूँ कि फ़न और हुस्न की इस देवी को शरीके-हयात बनाने के लिए लाला जी को मंदिर की जगह मस्जिद को अपनी इबादतगाह बनाना पड़ा था।"[9]

लेखक अपने उपन्यास में इस मंतव्य को अभिव्यक्ति देने में सफल हुए है कि यदि कोई व्यक्ति उनके धर्म, सम्प्रदाय को चोट पहुँचाता है, वे उसे कतई बर्दाश्त नहीं करते। 'क्याप' उपन्यास में धर्मान्तरण व साम्प्रदायिकता के सच को उजागर करने का लेखक ने प्रयास किया है। अंग्रेजों ने हिन्दुओं पर अत्याचार करके उनको इसाई बनाया। नायक (मैं) के काका इस तथ्य से अवगत कराते हैं-"मैं यहूदी मार्क्स के पिता को अत्याचारों से बचने के लिए इसाई बनते देखता और फिर मार्क्स को गरज कर यह कहते सुनता कि धर्म तो गरीबों के लिए बनाई गई अफ़ीम है। जैसे भूख से बिलखते बच्चे को चुप कराने के लिए अफ़ीम चटा देते हैं ना वैसे ही अमीरों के जुल्म से बिलखते गरीबों को धर्म चटा देते है।"[10]

अंग्रेजों ने भारतीयों की गरीबी व अल्पशिक्षित होने का फायदा उठाया। वह उनको धोखे से इसाई बनाने पर जुट गये थे।

पादरी हैरीसन का मानना था कि "स्थानिक लोगों को जीतने के लिए शस्त्र से बेहतर शास्त्रार्थ है, बन्दूक से बेहतर बाइबिल है।"[11] इस प्रकार अंग्रेजों ने बुद्धि और तर्क से कस्तुरीकोट के स्थानीय लोगों को इसाई बनाने का कार्य किया। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर अपने-अपने सम्प्रदाय को बढ़ावा देने के प्रयास विश्व भर में चल रहे है।

'वधस्थल' उपन्यास में मनोहरश्याम जोशी ने बताया है कि किस प्रकार कबोडिया के निर्धन लोगों को लालच देकर उनका धर्म परिवर्तन करा लिया गया। क्योंकि वर्तमान परिवेश में गरीब व्यक्ति अमीर बनने के लालच में कुछ भी सकता है।

'बैचेन जी' नामक पात्र के मुख से लेखक कहलाता है "धर्म प्रसंग बैचेन जी ने यह बताते हुए छेड़ा कि प्रोफेसर रॉबिन्सन जिस कन्या के स्कन्ध और नितम्ब पर अपना वरदहस्त लिए हुए घूम रहे थे उसने कम्बोडिया के कुछ अन्य निर्धन किन्तु महत्वाकांक्षी युवाओं की तरह अमेरिकी मिशनरियों से धर्म-परिवर्तन इस लोभ में करा लिया है कि वे उन्हें वजीफे पर अपने चलाये हुए विश्वविद्यालयों में भेज देंगे और अमेरिकी नागरिकता दिलानें में मदद करेंगे।"[12]

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति आधुनिक हो गया है। वह शिक्षा के माध्यम से किसी भी कार्य को कर सकने में सक्षम है। इसी उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए यदि उसके पास पर्याप्त संसाधन नहीं है तो वह स्वार्थ हित के लिए कोई भी रूख अपना सकते हैं। भारतवासी अत्यधिक धन अर्जित करने की चाह में विदेशों में गमन करते हैं। लेकिन

कहीं-कहीं उनके साथ नस्ल-भेद व धर्म विशेष का भेदभाव किया जाता है, जिसका दुखद परिणाम ही सामने आता है मौत के रूप में!

कम्बोडिया में साम्प्रदायिकता की इस आग में भारतीयों व चीनियों को अपनी जाने गवानी पड़ीं।

हूडा साहब इस घृणात्मक हिंसा की प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करते है- ''मैं आपको इस वाले नॉन वी आई पी रूम में खासतौर से इसलिए लाया हूँ कि भारतीय कैदी इसी में रखे गये थे। हाँ साहिबान उस दौर में बहुत से भारतीय कैद किए गए और मारे गए। कम्बोडिया के सभी बड़े व्यापारी और दुकानदार चीनी और भारतीय मूल के थे।''[13]

अंततः साम्प्रदायिकता की यह अग्नि भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी धधक रही है। जिसका परिणाम आम-जनता भुगत रही है और फायदा राजनीतिक दल उठा रहे है। यदि हमें इस साम्प्रदायिक हिंसा को समाप्त करना है तो हमें असामाजिक व अनजान लोगों के द्वारा जानबूझकर फैलायी गयी आपत्तिजनक टिप्पणियों पर विश्वास न कर कोई हिंसात्मक कदम नहीं उठाना है। यदि एक सम्प्रदाय चुप रहेगा तो शायद दूसरा भी अपने आप शांत रहेगा।

कथा साहित्य के माध्यम से वर्तमान समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक हिंसा के विविध कारणों को अभिव्यक्ति दी है। साम्प्रदायिकता के अनेक रूप यथा जबरन धर्म परिवर्तन साम्प्रदायिकता के तहत जन्मी घृणा द्वेष के कारणों को भी बतलाया गया है विविध उपन्यासों यथा-'कुरू-कुरू स्वाहा, हमजाद, क्याप, वंधस्थल के पात्रों के माध्यम से कथा को जीवन्त किया है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ0 श्यामबहादुर वर्मा, पृ0-2477, प्रभात, वृहत हिन्दी शब्द कोश, खण्ड-2, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
2. मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्दकोश, पृ0-832, सं0-प्रथम, बनारस-1 ज्ञानमण्ड़ल लिमिटेड
3. रामचन्द्र वर्मा, प्रमाणिक हिन्दी कोश, पृ0-1307, बनारस हिन्दी साहित्य कुटीर
4. सुनील कुमार अग्रवाल, गाँधी और साम्प्रदायिक एकता, पृ0-4, 5, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली
5. प्रो0 विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत मं साम्प्रदायिकता, पृ0-1, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1997
6. शंभुनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज (भाग-1), पृ0-292, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. उद्घृतांश-प्रो0 विपिन चन्द्र 'आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1997
8. मनोहरश्याम जोशी, कुरू-कुरू स्वाहा, पृ0-205, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
9. मनोहरश्याम जोशी, हमज़ाद, पृ0-25-26, किताबघर प्रकाशन 4855-56/24, अन्सारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली
10. मनोहरश्याम जोशी, क्याप, पृ0-42, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
11. वहीं, पृ0-19
12. मनोहरश्याम जोशी, वधस्थल, पृ0-51, राष्ट्रीय, पुस्तक न्यास, भारत।
13. वहीं पृ0-68

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

मंगलेश डबराल की कविताओं में यथार्थ और संवेदना

* गिरजाशंकर गौतम
** रामेश्वरी दास

सारांश– *वर्तमान परिदृश्य में यथार्थ की कड़वाहट इतनी बढ़ती जा रही है कि, संवेदनाओं को अपने अंतस में बचाये रखना आवश्यक हो गया है। कवि मंगलेंश डबराल की कविताएँ इन्हीं चीजों की वकालत करती दिखती हैं। इस कविताओं में यथार्थ और संवेदनाएँ दोनों साँस ले रहे हैं क्योंकि आज का कवि अपनी लेखनी में अपने सौम्य स्वभाव से लिखने का कितना ही प्रयास क्यों न करे वर्तमान की कठोरताएँ उसके भीतर अपना शब्द छोड़ती है। कवि मंगलेश में कबीर वाणी साफ़ झलकती है कि 'तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आखिन की देखी।' कारण वे दिल्ली जैसे महा नगर में प्रवेश कर नगरीय परिवेश और समस्याओं से रु–ब–रु हो रहे थे।*

मुख्य शब्दः यथार्थ की कड़वाहट, रू–ब–रू, टूटते–बिखरते, भूमण्डलीकरण, दुष्प्रभाव, गुलाम, बेतहाशा, लोभ, मोह, ईर्ष्या, बोझिल, तनावपूर्ण, यथार्थ, उथल–पुथल, पीड़ा, आपा–धावी।

कवि मंगलेश कविता के ज़रिए आज के टूटते-बिखरते समय को थोड़ा समेटने और उसमें थोड़ी समरसता एवं कोमलता लाने का प्रयास करते हैं। नगर की भयावहता और अजनबीपन को कवि बराबर महसूस कर रहे हैं क्योंकि उनके हृदय में शुद्ध पहाड़ी जीवन अब भी जिंदा है। आज भूमण्डलीकरण का युग है जिसमें चारों तरफ लोगों से ज्यादा मशीनों का प्रभाव है, समस्याएँ यहीं से शुरू होती है कि, हम जिसे अपने विकास का आधार मानते है वह हमारा आधार अर्थात् हमारी मनुष्यता को छलनी कर रहा है।

कवि मंगलेश की कविताएँ आज के यथार्थ से हमारा साक्षात्कार कराती दिखती हैं इनकी कविताएँ नये युग में शत्रुओं पर सीधा प्रहार करती हैं वे गुलामी कविता में कहते हैं

''ज्यादातर चीजें उलट-पुलट हो गयी हैं।
इन दिनों दिमाग पर पहले कब्जा कर लिया जाता है।
जमीनों पर कब्जा करने के लिए लोग बाद में उतरते है।
इस तरह की नयी गुलामियां शुरू होती है''[1]

आज लोग सुख-सुविधाओं को अपना सब कुछ मानते है और उसे जुटाने में दिन-रात लगे हुए है और आश्चर्य तो इस बात का है कि हम उसके दुष्प्रभावों से वाकिफ़

* सहायक प्राध्यापक (हिंदी), मूल विज्ञान केन्द्र, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर।
** एम.फिल, शोधछात्रा (हिन्दी), पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

होकर भी उसके गुलाम हैं। जहाँ कवि मंगलेश का यथार्थ परिदृश्य इतना व्यापक है जिसमें आदिवासियों को उनकी जमीन, उनके मिट्टी उनके राग-रंग से अलग विस्थापित करने का षड्यंत्र है, खान-पान की वस्तुओं से लेकर तमाम तरह की चीज़ों पर आए-दिन मिलावट की समस्याओं का चित्रण है, जहाँ रोज कुछ अप्रिय घटनाएँ घटित होने जिसमें हिंसा, चोरी, डकैती, मार-काट आदि सम्मिलित हैं, जहां लोगों का आपसी संबंध, विश्वास, भावनाएँ सब तार-तार होते नजर आ रहे हैं, वहीं इनकी संवेदनाएँ इन बिखरते-छूटते दृश्यों को समेटने का प्रयास कर रही हैं जहाँ संगीत को जीवन का मिठास मानकर 'रागशुद्ध कल्याण', 'राग भरता' आदि जैसे कविताओं को फिर से लौटने की अपील दर्ज़ की गई है।

आज की दुनियां चमचमाती हुई दिखाई देती है जिसमें कहीं ''चमकते हुए सिक्के जलता-बुझता .प्रकाश बेतहाशा खानपान है''[2], जहाँ 'बिना बात हॉर्न बजाती हुई लंबी-चौड़ी कारे गुजरती हैं''[3] जहाँ जगह-जगह प्राणवायु के मांगने वाले बढ़ रहे है' और उन्हें बेचने वालों सौदागरों की तादाद बढ़ रही है''[4]

इन कविताओं का मूल स्वर है कि, किस प्रकार लोग निजता में लीन होकर केवल अपना भला करने के लिए लोभ, मोह, ईर्ष्या जैसे अवगुणों से घिरे है, लोगों में आपसी संबंध बिखरते जा रहे हैं, लोग एक-दूसरे से केवल स्वार्थ रूप से जुड़े हैं। मंगलेश की कविताएँ इन समस्याओं के हमारे जीवन में प्रवेश होने का, अत्याचारों के लगातार बढ़ने का मानव की अपनी मानवता खोने का, पूँजीवादियों के वर्चस्व फैलने का, मशीनों के दुष्प्रभावाओं का दस्तक हैं। अर्थात् मंगलेश की कविताएँ इन सभी यथार्थ को चक्कर लगाती हैं। कवि की मंशा किसी धर्म सम्प्रदाय या विचारधाराओं का विरोध करना नहीं वरन् वे - 'आज लोग अन्याय को धूल की तरह झाड़ देते है' कि चिंता में बेचैन हैं।

यथार्थ बोध से स्पष्ट हो जाता है कि, आज यथार्थ जीवन बहुत ही बोझिल और तनावपूर्ण है। मशीन की उपयोगिता और उसका दुष्प्रभाव, पूँजी का बढ़ता वर्चस्व और सत्ता का भ्रष्टाचार, खुली सड़क पर हो रहा आतंक, मारकाट और बलात्कार आज सभी जगह घटित हो रहे हैं।

इस युग की यथार्थता को कवि ने एक शत्रु के रूप में देखा है, यह शत्रु एक विचार है जो अपना अलग-अलग रूप धारण कर हमें भीरू बना रहा है और हमारा शिकार कर रहा है। इस युग की भयावहता है कि वह इस प्रकार हमें अपने वश में कर रहा है कि, हम चाहते हुए भी खुद को नहीं बचा पा रहे हैं और यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। आज हम जहाँ भी जाते हैं एक भय और आतंक का माहौल छाया हुआ है। अखबार, टेलीविजन आदि संचार माध्यमों में ऐसी खबरें हत्याएँ, लूटपाट, डकैती, दंगा, बलात्कार और तमाम किस्म के अत्याचार अपने सबसे भयानक रूप में प्रकट हो रहे हैं।

कवि मंगलेश इन्हीं समस्याओं को लेकर व्याकुल हैं और इसी व्याकुलता को कविता के माध्यम से प्रकट कर रहे हैं।

आज हम जिस युग में प्रवेश कर रहे हैं, वह अत्यन्त कठोर एवं स्वार्थी है, सहानुभूति दिखाना आज हम अपना समय गंवाना कहते हैं। आज का जीवन इतना जटिल और तनावपूर्ण है कि वह अपने को सदैव समस्याओं से घिरा हुआ पाता है, ऐसे में संवेदनशीलता की अपेक्षा करना बहुत कठिन है। ऐसी स्थिति को साहित्यकार देखता है और अनुभव

करता है तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से वह अपनी मिट्टी की ओर लौटता, अपनी जड़ों को तलाशता, दुख-पीड़ा का अनुभव करता, समस्याओं पर चिंतित होता, अत्याचारों पर विचार करता हुआ दिखाई देता है।

कवि मंगलेश की कविताओं में यथार्थ की कठोरता के साथ, कठोरता से आहत लोगों के प्रति संवेदना है वे कभी पहाड़ को, कभी मिट्टी को, कभी संगीत को, कभी प्रकृति को, तो कभी जीवन की नमी को बचाने का आह्वान करते है शायद इसलिए क्योंकि वे बेर्टोल्ट ब्रेश्ट की कविता को अपना मूल स्वर बना लिए हैं कि - 'पहाड़ों की यातनाएं हमारे पीछे हैं। मैदानों की यातनाएं हमारे आगे है।' इसी स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए वे कहते हैं कि - मैं जहां से एक पत्थर की तरह खिसक कर चला आया, उस पहाड़ में भी एक छोटी-सी जगह बची होगी।''[5]

कवि मंगलेश आज भी उस पहाड़ को अपने हृदय में सुरक्षित रखे हैं क्योंकि विस्थापन से इलाके बदलते हैं, भावनाएं नहीं। आज से लड़ने के लिए वे पुरानी चीजों को अपना हथियार बनाते हैं। अंततः हम कह सकते हैं कि, मंगलेश यथार्थ के दृश्यों को एकाएक हमारे समक्ष उजागर करते हैं। इन कविताओं में व्यवस्था विरोधी जितने तेवर दिखाई देते हैं, कवि नये युग के शत्रुओं का पर्दाफाश उतनी ही सौम्यता के साथ करते दिखाई देते हैं। कवि इस निर्मम समय में मनुष्यता के बचे रहने की अपील करते है, इनकी 'छुओं' कविता संवेदनाओं एवं मनुष्यत्व के बचाये रखने का सशक्त दस्तावेज है

''अपने भीतर जाओ और उस नमी की छुओ
देखो वह बची है या नहीं इस निर्मम समय में''[6]

देखा जाए तो आज की दुनिया भीड़ भरी है, जहाँ जाओ हजारों की संख्या में लोग दिखते हैं। सड़कें कभी खाली नहीं मिलती। घर की गलियों से लेकर गाँव, शहर, बड़े शहरों तक यह संख्या बढ़ती हुई दिखती है, किंतु फिर भी आदमी अकेला है। उसका दूसरों से कोई मेल-जोल नहीं। इसी अकेलेपन का अनुभव कवि अपने चारों तरफ कर रहे हैं। पुरानी डायरियाँ और उसमें लिखे पते न जाने कहाँ गुम हो गए हैं। अब तो एक अलग किस्म की बातचीत चलती है, जो परिजनों के हालचाल से ज़्यादा लेन-देन और हानि-लाभ से संबंधित होती है।

कवि का इशारा मोबाइल फोन की तरफ है, जहाँ अपनों की आवाज़ें गुम हो गई हैं और केवल एक अजनबी आवाज लेन-देन की बात करती है। इस बिखराव की स्थिति में कवि याद करते हैं अपने पुराने आत्मीय जनों को। उनकी यह पीड़ा राजेश जोशी की कविता से मेल खाती है -

''बीसवीं सदी के अंतिम दिनों में हो रहा था यह तब
और वह भी एक महानगर में
बूढ़ा अंदर ही अंदर भीगता जाता था
बुदबुदाता था..... अभी सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है
वो अकेले बैठकर कहीं रोना चाहता था
उसे याद आ रहे थे, बचपन के दिन और बचपन का गाँव।''[7]

कवि मंगलेश इन्हीं बचपन के दिनों यानी अपनी पुरानी तस्वीरों को देखते हैं, जिसमें उनके चेहरे से मासूमियत साफ नजर आ रही है। यह कितना सही भी है कि आज

हम पुरानी तस्वीरों को देखें तो उसमें हमारे चेहरे की चमक और जो मुस्कुराहट है, उसमें जरा भी मिलावट नहीं और आज स्थिति बदल गई है। आज तस्वीर खींचने वाले को यह कहना पड़ता है कि ''स्माइल प्लीज़''। इसे अपनी कविता 'पुरानी तस्वीरें' में कवि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है -

''और अब यह क्या है कि मैं अकसर तस्वीरें खिंचवाने
से कतराता हूँ ....
सोचता हूँ क्या यह कोई डर है कि मैं पहले जैसा नहीं दिखूंगा
शायद मेरे चेहरे पर झलक उठेंगी इस दुनिया की कठोरताएँ
और चतुराइयां और लालच
इन दिनों हर तरफ इन्हीं चीजों की तस्वीरें ज्यादा दिखाई देती हैं।
और जिनसे लड़ने की कोशिश में
मैं कभी-कभी इन पुरानी तस्वीरों को ही
हथियार की तरह उठाने की सोचता हूँ''[8]

इस प्रकार देखा जाए तो चारों ओर लालच और स्वार्थ का इतना प्रभाव है कि वह लोगों के चेहरे से भी साफ झलकने लगती है। लोग जहाँ जाते हैं यह स्वार्थ वृत्ति उनके साथ-साथ चलती है, इनसे मुक्त होने का उपाय हम पुरानी तस्वीरों को देखकर उन्हें फिर से अनुभव करने का प्रयास करें।

आज हम अपने चारों तरफ यह देखते हैं कि बड़ी संख्या में लोग आते-जाते हैं, मिलते-जुलते हैं, किंतु वे अपनी सुख-दुःख बाँटने नहीं बल्कि स्वार्थपूर्ति की इच्छा से मिलते हैं। इसे कवि ने 'गुलामी' कविता में इस प्रकार स्पष्ट किया है-

''इन दिनों कोई किसी को अपना दुख नहीं बताता
हर कोई कुछ छिपाता हुआ दिखता है
दुख की छोटी सी कोठरी में कोई रहना नहीं चाहता
कोई अपने अकेलेपन में नहीं मिलना चाहता
अपनी सफलताओं से अपनी ताकत से पैसे से अपने सुरक्षाबलों से
कुछ पूछने पर तुरंत हंसते हैं
जिसे इन दिनों के आम चलन में प्रसन्नता माना जाता है''[9]

आज टकराव दो देशों के बीच, दो धर्मों के बीच, दो संप्रदायों के बीच, जिससे एक दहशत का माहौल बना हुआ है, जिसका अनुभव हम कर रहे हैं। आज सांप्रदायिक दंगों में न जाने कई ऐसे मासूम और अंजान लोग मारे जाते हैं, जो केवल दो वक्त की रोटी की जुगाड़ में जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं। उन्हें इन षड्यंत्रों का तनिक भी आभास नहीं होता, यह प्राकृतिक आपदाओं से भी ज्यादा दुखद घटना होती है, जिसमें कई-कई लोग बलि चढ़ जाते हैं। गुजरात का दंगा इसका ज्वलंत उदाहरण है, कवि द्वारा दिए गए बयान के रूप में प्रकट करते हैं, अपनी कविता 'गुजरात में मृतक का बयान' में-

''और जब मुझसे पूछा गया तुम कौन हो
क्या छिपाये हो अपने भीतर एक दुश्मन का नाम
कोई मजहब कोई जावीज
मैं कुछ कह नहीं पाया मेरे भीतर कुछ नहीं था

सिर्फ एक रंगरेज़ एक मिस्त्री एक कारीगर एक कलाकार
जब मैं अपने भीतर मरम्मत कर रहा था किसी टूटी हुई चीज की
जब मेरे भीतर दौड़ रहे थे
अल्युमिनियम के तारों की साइकिल के नन्हें पहिये
तभी मुझ पर गिरी आग बरसे पत्थर
और जब मैंने आखिरी इबादत में अपने हाथ फैलाये
तब तक मुझे पता नहीं था बंदगी का कोई जवाब नहीं आता''[10]

कितनी संवेदना और कितनी पीड़ा है कि दो संप्रदायों की लड़ाई में कितने निर्दोष लोग मारे जाते हैं, जिन्हें सुनने और जानने वाला कोई नहीं। कवि अंतिम की दो पंक्ति उस ईश्वर पर भी लिखते हैं, जिसे अच्छे लोगों का रक्षक माना जाता है, लेकिन जब आखरी समय में उन्हें पुकारा जाता है तो वे भी सहायता नहीं कर पाते।

कवि मंगलेश इन्हीं उथल-पुथल को लेकर चिंतित हैं और दुःखी भी कि हम कब किस षड्यंत्र का शिकार हो जाएँगे इसका हमें आभास भी नहीं है। इन सबके पीछे कारण यह कि लोगों में मानवता की भावना कम होती जा रही है, वे पशु-प्रवृत्तियों को प्राप्त करते जा रहे हैं, इस बढ़ रहे टकराव एवं बिखराव की पीड़ा को हम कुमार अम्बुज की कविता 'क्रूरता' में देख सकते हैं -

''धीरे-धीरे क्षमा भाव समाप्त हो जाएगा
प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर जरूरत न रह जाएगी
झर जाएगी पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा
क्रोध अकेला न होगा वह संगठित हो जाएगा।''[11]

आज लोगों में पनपती हुई टकराहट की भावना जिससे आपसी बिखराव उत्पन्न हो रहा है, जिससे कवियों और साहित्यकारों की पीड़ा इस क्षेत्र में लेखनी के माध्यम से प्रदर्शित हो रही है।

कवि इन्हीं दंगाईयों का चेहरा और स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि आज जो हमारे आस-पास चमचमाता बाजार का दृश्य दिखता है, उसके पीछे बड़ी संख्या में भूखे लोग, अनाथ बच्चे और बेसहारा पशु हैं, जो किसी-न-किसी अत्याचार का शिकार हुए हैं और अपनी दयनीय स्थिति पर रो रहे हैं। कवि 'रोने की जगह' कविता में कहते हैं-

''इन दिनों रूदन कहीं से भी उठने लगता है
आंसू किसी भी जगह दिख जाते हैं
चमचमाते बाजार अपना अंधकार अपने पिछवाड़े में भेजते रहते हैं
उसे पार करते हुए लगता है एक नदी बह रही है
जहां भिखारी पागल अनाथ बच्चे बेसहारा पशु लहरों की तरह हैं
साथ-साथ एक परिवार की तरह जीवन बिताते
दंगाइयों के हाथ मारे गये अपने बच्चों की खोज में''[12]

आज का युग दिखावे का युग है, जहाँ हर चीज चमकदार होनी चाहिए। कवि चमकदार वस्तु के पीछे छिपा धुंधलापन को पहचानते हैं, इसलिए वे इसे शुष्क, नीरस और असुंदर कहते हैं। वे 'त्वचा' जिसे आज दिखावे का जरिया बनाकर लोग उसे 'फैशन' का नाम देते हैं, जो बाहरी तौर पर जितना आकर्षक दिखता है, अंदर से उतना ही कुरूप

होता है और इसी सुंदरता के पीछे एक कुरूप विचार छिपा रहता है। कवि अपनी कविता 'त्वचा' में इसी शुष्कता को उजागर करते हैं -

''त्वचा ही इन दिनों चारों ओर दिखती है
त्वचामय बदन त्वचामय सामान
त्वचा का बना हुआ कुल जहान
टीवी रात-दिन दिखलाता है जिसके चलते-फिरते दृश्य
त्वचा पर न्योछावर सब कुछ
कई तरह से लेप उबटन झाग तौलिये आसमान से गिरते हुए
कमनीय त्वचाओं का आदान-प्रदान करते दिखते हैं स्त्री-पुरूष
प्रेम की एक परत का नाम है प्रेम
अध्यात्म की खाल जैसा अध्यात्म
सतह ही सतह फैली है हर जगह उन पर नये-नये चमत्कार
एक सुंदर सतह के नीचे आसानी से छिप जाता है एक कुरूप विचार
एक दिव्य त्वचा पहनकर प्रकट होता है मुकुटधारी भगवान''[13]

इस मुखौटाधारी युग में सभी चीजें जगमग करती हैं, किंतु अंदर से वह खोखली एवं नीरस है। इससे बचने की आवश्यकता है, ताकि जीवन में सरसता बची रहे, संबंधों में मिठास बना रहे। कवि आज की चीजें जो हथियार में तब्दील होती जा रही हैं, उस ओर अपना इशारा करते हैं। वे दुनिया को नुकीली चीजों से आहत होने से बचाना चाहते हैं, ताकि जो धारदार चीजें हैं, उन्हें जिस कार्य के लिए निर्माण किया गया है, उसका प्रयोग केवल उसी कार्य के लिए हो, जैसे- चाकू, कैंची आदि वस्तुएँ सम्मिलित हैं। और भी तमाम हथियारों, मशीनों एवं नुकसान पहुँचाने वाली नुकीली चीजों से है, जिससे हिंसक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। कवि हर वस्तु जिसका नकारात्मक प्रभाव होता है, उसे हटाने की बात कहते हैं और दुनिया को मुलायम वस्तुओं के करीब कल्पना करते हैं, ताकि लोगों का विचार और उनका हृदय दोनों नरम हो, मुलायम हो, जिससे हिंसा की भावना जैसी नुकीली नुकसान वाली सोच ही पैदा न हो पाए। कवि अपनी कविता 'नुकीली चीज़ें' में यह स्पष्ट करते हैं -

''तमाम नुकीली चीजों को छिपा देना चाहिए
कांटों-कीलों को वहीं दफ़न कर देना चाहिए जहां वे हैं
जो कुछ चुभता हो या चुभने वाला हो
उसे तत्काल निकाल देना चाहिए
जो चीज़ें अपनी जगहों से बाहर निकली हुई हैं
उन्हें समेट कर अपनी जगह कर देना चाहिए
फूलों को कांटों के बीच नहीं खिलना चाहिए
धारदार चीजें सिर्फ सब्जी और फल काटने के लिए होनी चाहिए
उन्हें उस स्त्री के हाथ में होना चाहिए''[14]

कवि की पीड़ा स्पष्ट दिखाई दे रही है कि किस प्रकार आज दुनिया में घटनाएँ हो रही हैं। हर आदमी के भीतर एक शैतानी विचार छिपा है, हिंसक प्रवृत्ति छिपी है, जिससे चीज़ें और उनका प्रयोग बदलता जा रहा है। इन्हीं भयानक दृश्यों में तब्दील हो रही दुनिया

को बदलने की पीड़ा और छटपटाहट स्पष्ट दिखाई देती है।

इस बजबजाते लोगों और उनके आपाधापी में अपने को बचाते हुए अपने जीवन में कुछ ऐसी चीजों को बचाने और उसे समेटने का प्रयास करते हैं जिसमें उनके भीतर मनुष्यता की सुगंध बची रहे, जिसमें थोड़ी मिठास, थोड़ी चंचलता, थोड़ा भोलापन, थोड़ा अपनापन, थोड़ा विश्वास और बची रहे हमारे भीतर थोड़ी संवेदना ....!

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 2013, पृ. 26
2. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 2013, पृ. 60
3. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 2013, पृ. 62
4. डबराल, मंगलेश, कवि ने कहा, नई दिल्ली, किताब घर प्रकाशन 2010, पृ. 10
5. डबराल मंगलेश नये युग में शत्रु, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 18
6. डबराल मंगलेश नये युग में शत्रु, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन पृ. 40
7. जोशी, राजेश, दो पंक्तियों के बीच, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2000, पृ. 22
8. डबराल मंगलेश, नये युग मं शत्रु- पृ. 49
9. डबराल मंगलेश, नये युग मं शत्रु- पृ. 26
10. डबराल मंगलेश, नये युग मं शत्रु- पृ. 53
11. उमाठे साईनाथ, समकालीन हिंदी कविता का समाजशास्त्र,ए.बी.ए. प्रकाशन वाराणसी 2016, पृ. 16
12. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु- पृ. 64
13. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु- पृ. 96
14. डबराल, मंगलेश, नये युग में शत्रु- पृ. 28

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना

* कंचनलता यादव

सारांश– *निराला की सांस्कृतिक चेतना विराट है। संस्कृति के विघटनकारी तत्वों को देखते ही वे भूखे सिंह की तरह उन पर झपटते थे। एक ओर वे शिवा जी की तरह खड्ग हाथ में लेकर पराधीनता के कारण भूत विकृतियों को ललकारते थे। लक्ष्मण बन कर प्रेम और मर्यादा को आँच पहुँचाने वाली विकृति की नाक तक काट डालते हैं तो दूसरी ओर 'बहू' का घूंघट उठाकर उसके सौंदर्य को प्रशंसा भरी, ममत्व भरी दृष्टि से निहारते हैं। दीन और भिक्षुक के दुख में करूणार्द्र हो आँसू बहाते हैं, तो कभी राम के रूप में शक्ति की आराधना करते हुए नयन–समर्पण की स्थिति में पहुँच जाते हैं। ओजस्विता और द्रवणशीलता, सांस्कृतिक गर्व एवं लोक हितैषणा आदि गुण उनकी सांस्कृतिक चेतना के स्थापक अंग हैं।*

मुख्य शब्द– सांस्कृतिक चेतना, सांस्कृतिक दुर्दशा, परतंत्रता, ऐश्वर्य, वैराग्य, विप्लवकारी, जनजागृति, पुर्नजागरण, मानव, प्रज्ञा, विराट।

भारत के सांस्कृतिक वैभव के पराभव की समस्या निराला के काव्य की प्रमुख समस्या है। पराधीन भारत की संस्कृति पर अंग्रेजों ने कुठाराघात किया था, उससे भारतीय संस्कृति की जड़मूल तक हिल गयी। अंग्रेजों ने उसे अपंग बनाने की शतशः चेष्टा की। विजित राष्ट्र की राजनैतिक पराधीनता, उसकी सांस्कृतिक परम्परा और विचार पद्धति पर दूषित प्रभाव डालने के साथ-साथ उसकी वैचारिक उपलब्धियों का भी उपहास उसमें हीन भावना जगाने का यत्न करती है।[1] अंग्रेजों ने यही किया। आध्यात्मिक चिन्तन प्रधान भारतीय संस्कृति यूरोपीय संस्कृति के भोगवाद से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि भारतीय जीवन अपनी सांस्कृतिक परम्परा को भूलने लगा। अपने देश की इस सांस्कृतिक दुर्दशा की समस्या का चित्रण निराला ने परोक्षतः इस प्रकार किया है-

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमसतूर्य दिङ्मण्डल:"

देश की परतंत्रता के साथ सांस्कृतिक पतन की स्थिति कवि निराला के लिए सर्वाधिक पीड़ा का विषय रही है। भारतीय संस्कृति में ऐश्वर्य एवं वैराग्य का समन्वयात्मक पक्ष अंग्रेज तब न समझ सके किन्तु विवेकानन्द आदि वेदान्त ज्ञानियों के भाषणों द्वारा उनमें भारत की आध्यात्मिकता की मुक्त संस्कृति के प्रति आकर्षण अवश्य उत्पन्न हुआ। जिसका प्रभाव आज इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़े विश्व में दिखाई दे रहा है। अंग्रेजों

* सह प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)

ने जिस भोगवादी संस्कृति के बीज भारत के प्रांगण में विकीर्ण किये थे, वे उन्हीं के काल में वट-वृक्ष के रूप में अंकुरित हो गये थे। भारतीय अपनी संस्कृति को हीन समझ अंग्रेजियत के रंग में रंगने लगे थे। अतीत सांस्कृतिक गौरव की अवहेलना, तिरस्कार त्याग की अपेक्षा भोग की प्रधानता आदि युगीन परिवर्तनों को देख निराला की आध्यात्मिक चेतना एवं सांस्कृतिक लगाव स्वाधीनता प्राप्ति के मुख्य आधार बन गये। इसलिए उनके काव्य से सांस्कृतिक पराभव के इस पक्ष का विश्लेषण तथा भारतीय परम्परा अनुकरणीय कड़ियों का निरूपण उदान्त, ओजपूर्ण तथा क्रान्तिमयी वाणी में मिलता है। कवि एक ओर उद्‌बोधन देते हैं-

"जागो जागो, आया प्रभात, बीती अन्धरातः,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल!"[2]

दूसरी ओर विप्लवकारी बादलों को आमन्त्रित करते हैं। अस्तमान सांस्कृतिक सूर्य को देख उनका हृदय आर्तनाद करता है-

हमारा डूब रहा दिन मान!............. हिम हत पातों का असमय ही झुलसा हुआ शुष्क निश्चल।

फिर सजग चेतना तेजस्वी प्रखर वैतालिक की तरह गर्जना करती है-

"जागो फिर एक बार,
शेरों की माँद में, आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार!"[3]

उन्हें गुरू गोविन्द सिंह की याद आती है, भारतीय योग साधना की शक्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एकाग्रचित करती है। भारतीय सपूतों और अध्यात्म चेताओं की वाणी ज्ञान-वीणा एवं आत्म चेतना के तार झंकृत करती है कि भारतीय सदैव ही महान रहा है और है, सम्पूर्ण विश्व उसके समक्ष पगधूल के बराबर भी नहीं है-

"तुम हो महान, तुम सदा हो महान।
हे नश्वर यह दीन भाव, कायरता
कामपरता, ब्रम्ह हो तुम, पर रजभर भी है नहीं।
पूरा यह विश्व भार, जागो फिर एक बार।"

जन-जागृति के लिए ललकार भरी उद्‌बोधन मुक्त वाणी वहीं क्रांतिचेतना दे सकता है, जिसमें भारतीयता के ये गुण रचे बसे हैं। 'महाराज शिवा जी का पत्र' कविता में ऐतिहासिक तथ्य, सांस्कृतिक गरिमा एवं स्वतंत्रता की तीव्र ललक मिलती है। स्वतंत्रता के लिए कवि अपनी सांस्कृतिक गरिमा को ही पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित कर भारतीयों की शक्ति को दुर्जय करार देता है-

"सोचो तुम!
उठती जब नग्न तलवार है स्वतंत्रता की!
कितनी ही भावों से?
याद दिला घोर दुःख दारूण परतन्त्रता का!
फूँकती स्वतंत्रता जब मन से, जब व्याकुल तान!
कौन वह सुमेरू, रेणु-रेणु न हो जाए।
इसीलिए दुर्जय है, हमारी शक्ति।"

निराला की सांस्कृतिक चेतना में आध्यात्मिकता का स्वर तो है ही, साथ ही भारत का भौगोलिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य भी मूर्तित है। भारत देश उसके लिए साक्षात दुर्गा, सरस्वती आदि का मूर्त रूप है-

जननि, जनक-जननि जनानि, जन्मभूमि भाषे!
दृग-दृग की वाधी सुछवि, बाँधी सचराचर भाव!

उसके अंग प्रत्यंग आध्यात्मिक, सांस्कृतिक राष्ट्रीय, प्राकृतिक, भौगोलिक आदि विविध चेतनाएँ हैं और आत्मा है स्वतंत्रता 'वसन्त समीर' का प्राकृतिक परिदृश्य सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का पुट लिए हुए है। जिससे कष्ट और संकट में भी नव प्रेरणा और नवोत्फुल्लता मिलती है-

'मुरझाया था जग पतझड़ में, आया था चिन्ता का काल!
उसी दिन ही खोल हृदय की, ग्रन्थि, खुल गये डर के द्वार।
देखा, नत श्री-मुख शोभा से, लहराता जग विविध प्रकार।"

आध्यात्मिकता से पूर्ण कवि की सांस्कृतिक चेतना अपनी आराध्य शक्ति से भी जग को ज्योतिर्मय करने की प्रार्थना करती है-

"जग को ज्योतिर्मय कर दो!
नूतन जीवन भर दो।"

निराला देश के पराभव और सांस्कृतिक पतन से क्षुब्ध और कातर अवश्य हैं किन्तु कर्तव्य बोध से उत्तेजित। उनकी आस्था जीवन में नवीन सृजन और अतीत की संस्कृति के पुनरूत्थान के लिए चेष्टारत है। अतः पूर्वपरम्परा की उपलब्धि को लक्ष्य बना यह उद्बोधित करता है। उद्बोधन की यह शक्ति उसे अपने युग से मिली है। भारतीयों की शक्ति, सामर्थ्य और दृढ़ता कहीं भी कम नहीं वरन् आवश्यकता है संगठित होने की। 'गीता' का मर्म संगठित शक्ति एवं कर्तव्य पालन में है इसलिए निराला भारतीयों के पुरूषार्थ को ललकारते हैं। उन्हें उत्प्रेरित करते हैं कि जो ज्ञान, शक्ति, आध्यात्मिक निष्ठा, सांस्कृतिक वैभव एवं जीवन के मूल को जानने की दुघर्ष शक्ति भारतीयों में है, अन्य कहीं नहीं। आवश्यकता है एकता की, अखण्डता की, तभी देश, भारत राष्ट्र योग्यता के, सफलता के, स्वतंत्रता के रूप को पा लेगा।

"योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं-
गीता है, गीता है-
स्मरण करो बार-बार-
जागो फिर एक बार।"

हिन्दी साहित्य के पुनर्जागरण काल में ही सांस्कृतिक पुनरूत्थान की प्रक्रिया रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने आरम्भ करा दी थी। आज के सांस्कृतिक परिवेश में पूर्व एवं पश्चिम का समन्वय ही मूल समस्या है। पूर्व का अध्यात्म एवं पश्चिम के ऐश्वर्य का सांस्कृतिक संगम विवेकानन्द दर्शन का आधार है। निराला केवल इस विवेकानन्दीय-दर्शन से प्रभावित नहीं वरन् उन पर बंगाल की शक्ति-आराधना एवं शक्ति-साधना का भी प्रभाव है। किन्तु ओजस्विता, क्रान्तिकारिता, ऊर्जास्विता उनके निजी गुण है। उन्होंने कहीं भी निराशा या पलायन को अंगीकार नहीं किया। वरन् शक्ति पूर्वक

जीवन संघर्ष के बीच ज्ञान और विज्ञान, अध्यात्म और वैभव, भक्ति और मानवता के समन्वय को महत्व दिया है।[4]

उन्होंने जीवन में कभी हार नहीं मानी। सदैव वीरत्व की प्रतिमा बन कदम-कदम पर त्याग करते रहे। भारतीय संस्कृति के वे गुण 'जागो फिर एक बार' तथा 'एक बार नाच तू श्यामा' में उपलब्ध है। 'गुरू गोविन्द सिंह' की वीरता में मध्य युगीन वीरता एवं वैभव का सामंजस्य है तो युगीन चेतना के अवबोधन रूप में राष्ट्रीय प्रेम, सांस्कृतिक-स्तवन तथा संघर्षों की श्रृंखला पर विजय की दृढ़ता भी है। निराला की जीवन-दृष्टि मूल भारतीय जीवन-दृष्टि मानी जा सकती है। जिसमें दुराग्रह का अभाव है। इसी गुण के कारण जीवन दृष्टि युगानुरूप अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का संशोधन परिवर्धन करती है। 'आधुनिक काल में भी यह प्रयास बड़े पैमाने पर हुआ है। धर्म-समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द, महात्मा गांधी आदि ने प्राचीन सिद्धान्तों को ही ग्रहण किया और उनकी युगानुरूप नई व्याख्याएँ की। यह सारा प्रयास वास्तव में प्राचीन भारतीय परम्परा में उन मूल्यों की खोज का प्रयास है जो आज के युग जीवन के लिए भी सार्थक और उपयोगी हो सके।[5] कवि निराला की सांस्कृतिक, राजनैतिक चेतना इसी विशिष्टता से युक्त है। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति, उसके राजनैतिक दाँव-पेंच, सांस्कृतिक मामलों में उसके हस्तक्षेप को पहचाना, गहराई से उसका विश्लेषण किया, देश की राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए एक मार्ग निश्चित किया।[6] उनके द्वारा निश्चित मार्ग नव-जीवन मूल्यों, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का समवेत जीवन रूप है। वे उन्हें प्रश्रय नहीं दे सकते जो अतीत को भयंकर कह केवल युद्ध द्वारा नवीन की स्थापना चाहते हैं। वरन इस सांस्कृतिक द्वंद की समस्या का समाधान वे मानव अन्तश्चेतना, मानव-प्रज्ञा द्वारा ही संभव मानते हैं। मानव प्रज्ञा ही मानव जीवन में 'ज्ञान-विज्ञान, बुद्धि चेतना और स्वार्थ-परार्थ का सामंजस्य स्थापित कर सकती है। कवि के चिन्तनमुक्त दृष्टिकोण में संस्कृति का यह नवीन रूप न केवल भारत राष्ट्र के लिए वरन समग्र विश्व के लिए स्थायी एवं हितकारी सिद्ध हो सकता है। मानव चेतना का यह अभ्युदय सर्वजन हिताय की भाव भूमि पर अवस्थित है। किसी प्रकार का द्वेष, दबाव या पराधिकार की चेष्टा इसमें नहीं है।

"अपने बाजार चले, अपने अधिकार चले,
देश विदेश मिले गले, हुए परस्पर पावन।"[7]

कवि निराला की संस्कृति चेतना, देश व विश्व की सांस्कृतिक सामन्तीय साम्राज्यवादी समस्या की युगीन स्थिति से भी सम्पृक्त है। आज समस्त संसार सांस्कृतिक सामंतवाद और साम्राज्यवाद की विभीषिका से भयभीत है। जब संस्कृति का अधिकार पक्ष राजनीतिक सत्ता पक्ष के हाथ रहता है और कर्तव्य पक्ष जनता का बन जाता है तब सांस्कृतिक साम्यवाद एवं शोषण की समस्या जन्म लेती है। चापलूस अवसरवादी विद्वान, साहित्यकार, लेखक, इतिहासज्ञ चारण बनकर जन-सामान्य को दिग्भ्रमित कर सत्ताधारियों का साथ देते हैं और स्वयं संस्कृति और सभ्यता के नाम पर समस्त सुविधा जीवी बन पनपने लगते हैं। सांस्कृतिक सामन्तवाद का यही रूप अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का रूप धारण करता है। निराला ने 'राजे ने अपनी रखवाली है', 'दगा की', चर्खा चला' आदि अनेक कविताओं में इस प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है। "थोड़ों के पेट में बहुतों

को आना पड़ा" कविता में इस समसामयिक शोषण पर आधारित विश्वव्यापी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के स्वरूप का विश्लेषण देखा जा सकता है-

ढूहों और गुफाओं और पत्थरों के घरों से
आजकल शहरों तक, दुनिया ने चाली बदली।
बदले दिमाग बढ़े, गोल बांधे, घेरे डालें
अपना मतलब गाँठा, फिर आखें फेर ली।
जाल भी ऐसा चला, कि थोड़ो के पेट में बहुतों को आना पड़ा।"[8]

विशिष्ट वर्ग पर आधारित एवं सीमित यह संस्कृति, निराला की दृष्टि में शोषण तथा मदान्धता का विकृत रूप है। संस्कृति का यह संकुचित रूप है। उन्होंने जन संस्कृति को महत्व दिया है। निराला के अनुसार भारत के अतीत सांस्कृतिक जीवन में जनतंत्र के ये मूल्य तत्व निहित है। वर्तमान के सांस्कृतिक विघटन एवं शोषण की समस्या का समाधान वे अतीत के सांस्कृतिक जीवन में ढूँढते हैं। आज के सांस्कृतिक संकुचन और शोषण का विरोध करते हैं। 'चर्खा चला' में वैदिक संस्कृति से पौराणिक संस्कृति तक इसी प्रजातांत्रिक मूल्य का महत्व प्रदर्शित है-

"वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोड़ी, छन्दों में गीत रचे,
मंत्रों को छोड़कर मानव को मान दिया,
धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गायें!
कृष्ण ने भी जमी पकड़ी, इन्द्र की पूजा की जगह, गोवर्धन को पुजाया,
मानवों को, गायों और मानवों को बैलों को मान दिया।
यहाँ तक पहुँचने में अभी दुनियाँ को देर है।"

इन जन संस्कृति तक पहुँचने में देर इसलिए है कि राजनैतिक दाँव-पेंच केवल कुछेक लोगों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हैं। निराला की दृष्टि जन संस्कृति के उस दूषित पक्ष की ओर भी गयी है जहाँ वह थोड़ी और विकृत हो जाती है। जब ठेठ देहाती अचानक इतना महत्व पाने लगते है तब अपने को सर्वश्रेष्ठ समान दम्भी हो उठते हैं और सांस्कृतिक स्तर पर उसका संस्कृति शून्य व्यवहार हास्यास्पद एवं तिरस्करणीय हो उठता है। 'कुकुरमुत्ता' की अकड़ और दम्भ तथा अपने सर्वकालिक समझने का अभियान अभिजात्य संस्कृति के प्रतीक गुलाब का स्थानापन्न नहीं हो सकता। कवि के शब्दों में-

"अबे सुन बे गुलाब, घूमता है सर चढ़ा
तू नहीं मैं ही बड़ा!"[9]

उसका हीनत्व भाव ही उसके बड़बोलेपन एवं अहं प्रदर्शन का कारण है। जन-संस्कृति में यह दूषण नहीं वरन् शिष्टता एवं सौम्यता जरूरी है। जन-संस्कृति का अस्तित्व तभी सार्थक होगा जब उसमें उचित विकास की प्रक्रिया होगी। कहा जा सकता है कि निराला के क्रान्ति-अवबोध का प्रतिफलन प्रजातांत्रिक संस्कृति, विदेशी प्रजातांत्रिक मूल्यों का आयातित संस्करण नहीं वरन उसमें भारतीय संस्कार, जनजीवन, आध्यात्मिक मान्यताओं तथा मिथकों की मूल्यवत्ता ही मूल में है। इसी संस्कृति के लिए वे कहते हैं-

"कलम मेरा नहीं लगता, मेरा जीवन आप जगता।"

भारतीय जन संस्कृति का सच्चा रूप यहाँ की परम्परा, ऋतु, त्यौहार, मेले, उत्सव, पनघट, खेत, खलिहान, हास-मनोरंजन आदि के स्वाभाविक रूप से जुड़ा है। निराला

जन-संस्कृति के उस समन्वित रूप को महत्व देते हैं जिसमें उत्सव, मेले आदि के साथ भजन कीर्तन, निर्गुणये पद, वैराग्य, भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियाँ भी जुड़ी हों।

निराला की सांस्कृतिक चेतना न केवल माँ सरस्वती, दुर्गा, सीता, पार्वती, गंगा आदि के विशाल एवं समर्थ रूप को ही भारतीयों के सम्मुख प्रस्तुत करती है वरन् महापुरूषों की महान गाथाओं के वे संस्कृतिमय आलेख भी उल्लिखित करती हैं। जब कवि कहता है-

"वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मंत्र नव भारत में भर दे।"[10]

स्वतंत्रता का यह शंखनाद जन-जन के हृदय में गुंजित हो उसे स्वतंत्रता का उपासक बना रहा है। प्रार्थना और आराधना के स्वरों में क्षण-क्षण नवता का आग्रह कवि के ओजस्वी स्वर को और अधिक प्रभावी बना देते है। दुर्गा शक्ति देती हैं, पार्वती तपश्चर्या का ओज, अव्याहत गति में प्रमुखता तो यमुना विश्वास का अजस्र स्त्रोत बना जाती है।

निराला की सांस्कृतिक चेतना विराट है। संस्कृति के विघटनकारी तत्वों को देखते ही वे भूखे सिंह की तरह उन पर झपटते थे। एक ओर वे शिवा जी की तरह खड्ग हाथ में लेकर पराधीनता के कारण भूत विकृतियों को ललकारते थे। लक्ष्मण बन कर प्रेम और मर्यादा को आँच पहुँचाने वाली विकृति की नाक तक काट डालते हैं तो दूसरी ओर 'बहू' का घूंघट उठाकर उसके सौंदर्य को प्रशंसा भरी, ममत्व भरी दृष्टि से निहारते हैं। दीन और भिक्षुक के दुख में करूणार्द्र हो आँसू बहाते हैं, तो कभी राम के रूप में शक्ति की आराधना करते हुए नयन-समर्पण की स्थिति में पहुँच जाते हैं। ओजस्विता और द्रवणशीलता, सांस्कृतिक गर्व एवं लोक हितैषणा आदि गुण उनकी सांस्कृतिक चेतना के स्थापक अंग हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ0 रवीन्द्र नाथ दरगन- छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, पृष्ठ-5
2. निराला- रचनावली, भाग-2, पृष्ठ-32
3. निराला- रचनावली भाग-1, पृष्ठ-33
4. निराला- रचनावली भाग-1, पृष्ठ-273
5. डॉ0 नगेन्द्र-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-542
6. रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृष्ठ-14
7. निराला- बेला, पृष्ठ-46
8. निराला- रचनावली, भाग-2, पृष्ठ-183
9. निराला-कुकुरमुत्ता, पृष्ठ-39
10. निराला- गीतिका, पृष्ठ-3

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXV, Hindi-II, Year-13, Sept., 2018

असमीया उपन्यासकार रजनीकांत बरदलै के उपन्यास के नारी पात्र

* चयनिका शइकीया

सारांश– *रजनीकांत बरदलै असमीया साहित्याकार के एक उज्वल नक्षत्र हैं। बरदलै 'जोनाकी युग' के एक ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने असमीया भाषा–साहित्य के प्रसार और उन्नति के लिए अपने पूरे जीवन उत्सुगत किये। असमीया उपन्यास साहित्य को पूर्ण रूप मिला उपन्यासकार रजनीकांत बरदलै जी के हाथों में। पाश्चात्य प्रभाव के कारण मिशनारियों के सहयोग से असमीया उपन्यास साहित्य को एक नये मार्गदर्शन हुआ था। बरदलै जी के पूर्व जितने भी उपन्यासकारों द्वारा उपन्यास की रचना हुई वे पूर्ण रूप से उपन्यास नह कहे जा सकते। बरदलै जी ने एक नये धारा का शुभारंभ किया और उपन्यासों को एक नयी गति प्रदान किया।*

मुख्य शब्द– असमीया भाषा–साहित्य, नारी, प्रेम, उच्च पद।

सन् 1867 के 24 नवम्बर में गुवाहाटी में रजनीकांत बरदलै का जन्म हुआ था। पिताजी का नाम नरकान्त बरदलै था। बरदलै जी ने 1885 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ते जाकर मेट्रोपलिटान कालेज से सन् 1887 में प्रथम श्रेणी में एफ.ए. पास किया। 1889 में सिटी कालेज से बी.ए. की डिग्री हासिल की। सन् 1890 में उन्होंने नौकरी करनी शुरू की। अपनी कर्मदक्षता के बल पर वे सहकारी कमिशनर बन गये। बरदलै जी के पास समय के बहुत ही अभाव थे फिर भी जितने समय मिले उतने ही कम समय में उन्होंने असमीया साहित्य की सेवा की। खासकर उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान अभूतपूर्व हैं। जब वे कलकत्ते में थे तभी उन्होंने बंगाल के विख्यात उपन्यासकार बंकिम चन्द्र और अंग्रेजी के स्काट के उपन्यासों का अध्ययन किया था। बंकिम चन्द्र और स्काट के उपन्यासों ने उनको बहुत ही प्रभावित किया था। कर्ममय जीवन के बीच में ही उन्होंने एक-एक करके नौ उपन्यासों का सृजन कर असमीया उपन्यास के क्षेत्र को समृद्ध किया हैं। उस समय के अनुसार उन्होंने जिस तरह के सोच-विचार कर उपन्यासों का सृजन किया हैं को भी दूसरे उपन्यासकार उनके समकक्ष ठहर नहीं सकते। इसीलिए बरदलै जी को असमीया उपन्यास सम्राट की उपाधि से विभूषित किया गया हैं। को समीक्षक उसको असमीया उपन्यास के जनक, असम के स्काट या असम के वंकिम चन्द्र की संज्ञा देते हैं।

त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी के अनुसार- 'जिस समय में असमीया लोग उपन्यासों के स्वाद कैसा होता है ये अंदाजा भी नहीं लगा पा रहे थे उसी समय में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर एक एक करके नौ उपन्यासों की रचना करके बरदलै जी ने उपन्यास सम्राट के सम्मान का सही हकदार बना।'[1]

==========================

* शोधार्थी, तेजपुर विश्वविद्यालय

असमीया साहित्य के विशिष्ट समालोचको के अनुसार उनके जैसे ऐतिहासिक उपन्यासकार असमीया साहित्य में न कल थे और न आज हैं। डॉ. सत्येन्द्र नाथ शर्मा जी के अनुसार 'उनके जैसे ऐतिहासिक उपन्यासकार असमीया साहित्य में आज तक नहीं निकला हैं।'[2] असमीया उपन्यास साहित्य के महान पुरुषों में से पद्मनाथ गोहाँर्इ बरूवा ने भानुमती, लाहरी और लक्ष्मीनाथ वेजवरुवा ने पदूम कुंवरी नामक उपन्यास रचना किया था। नये साहित्य सृष्टि से हमारे साहित्य को दूसरे भाषा-साहित्य के समकक्ष खड़ा करना है यही उन लोगो के मूल लक्ष्य थे। पर वे अपनी संकल्प पूरा नही कर पाये। रजनीकांत बरदलै अपने संकल्प पर अड़े रहे। वे उपन्यासों की सृष्टि करते गये। कभी मुड़कर पीछे नहीं देखा। अपने मंजिल पर वे सफलता पूर्वक पहुँचे और हमेशा असमीया उपन्यास के साहित्यकार के एक उज्वल नक्षत्र बने रहें।

निर्मलप्रभा बरदलै ने रजनीकांत बरदलै के उपर टिप्पणी करके कहा हैं- "Rajanikanta Bordoloi was one of the few pioneers of the Assamese literary renaissance who contributed substantially to the domain of Assamese fictional literature."[3]

कलकत्ते में रहते समय बरदलैजी ने छात्रावस्था में जो जो संकल्प किए थे उसी के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रयत्न करते थे। उनकी .ष्टि में- 'उपन्यासों के प्रधान अंग है प्रेम।'[4]

अब हम संक्षेप मे उनके उपन्यासों को देखने की प्रयास करेंगे-

मिरि जीयरी : सन् 1894 में सोवणशिरि नद के तट, पहाड़ो में रहने वाले मिरि जाति को आधार रूप में रखकर इस उपन्यास को प्रस्तुत किया गया था। तामेद और निरमा के एकमात्र संतान पानेइ थी। बचपन से ही जंकि नामक एक युवक को वो मन ही मन चाहती थी। पर दुर्भाग्य यह था कि जंकि निर्धन था और इसीलिए पानेइ के मात्-पिता को वह पसन्द नहीं था। वे पानेह की शादी कमुद नामक लड़के से तय करते हैं और विवश होकर पानेइ घर से भाग जाती हैं। पानेइ को दुसरे वर्वर पहाड़ी जाति के लोग पकड़ लेता हैं और बन्दी बनाते हैं। उधर पानेइ को खोजते-फिरते जंकि भी उन लोगो के हाथो बन्दी बनता हैं। दोनों फिर से भागने की कोशिश करते हैं और पकड़े जाते हैं। गाछी समाज के विचारानुसार दोनों को प्राणदण्ड मिलते हैं।

मनोमती : इसका प्रकाशन सन् 1900 में हुआ था। उपन्यास की नायिका मनोमती, लक्ष्मीकान्त नामक युवक से प्रेम करती हैं पर पारिवारिक शत्रुता की वजह से दोनों के मिलन संभव नहीं हो पाते हैं। सहेली पमीला दोनों के मिलन में सहायता करती हैं।

पदुमी इस उपन्यास की एक अनन्य पात्री हैं। पदुमी अपनी जान पर खेलकर मान सैन्यों के हाथों से असमीया बन्दी को छुड़ाती हैं। देशभक्ति उसमें कूट-कूट के भरे हुए हैं।

रंगिली : इसका प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। रंगीली इस उपन्यास की नायिका हैं। सत्राम से वह प्रेम करती हैं। राजा के अनुग्रह से सतराम को राज घराने में उच्च पद मिल जाता हैं। तब से वह रंगीली से दूर-दूर रहने लगता हैं। रंगीली को सच्चा प्यार कभी नहीं मिलता है। वह वृन्दावन चली जाती हैं।

राधा-रूक्मिणी रण : इसका प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। राजा शिव सह की पत्नी फुलेश्वरी शाक्त धर्म मानती थी। वैष्णव पंथी लोगो के उपर उसने अत्याचार किए थे और इससे विद्रोह की आग भड़क उठी थी। राधा और रूक्मिणी दोनों नाहर की पत्नी

थी पर रूक्मिणी को नाहर के भांजे राघव से प्यार था। रूक्मिणी प्रेमवश नाहर को छोड़ देती है पर राघव राजविषया बन जाते हैं और रुक्मिणी को नहीं अपनाते हैं। रुक्मिणी किसी की भी नहीं रहती हैं।

निर्मल भकतः इसका प्रकाशन सन् 1926 में हुआ था निर्मल भकत एक आत्मवृत्तान्तमुलक उपन्यास हैं। निर्मल रूपही नामक युवती से प्यार करता हैं और घर से भागकर उसके साथ विवाह भी करता हैं पर यह सुख ज्यादा दिनों तक नही रहता हैं। असम में मान का आक्रमण हुआ और मान सैन्य के हाथों बन्दी बनकर निर्मल को मानदेश जाना पड़ा। निर्मल के इन्तेजार में रूपही 12 साल काटती हैं। जब वह 12 सालो तक नहीं आया तो गाँव के लोग समझा-बुझाकर रूपही को उसके बचपन के साथी अनिराम के साथ शादी करवा देते हैं। इसके बाद निर्मल लौट आता हैं पर रूपही-अनिराम को एक साथ देखकर, दुःखी साधु पुरुष बन जाते हैं।

ताम्रेश्वरी मन्दिरः इसका प्रकाशनकाल 1926 हैं। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज में प्रचलित कु-प्रथा को उजागर करना हैं, वैष्णव धर्म के माहात्म्य का प्रचार करना हैं। आहोम राज्य में पुराने दिनो में मन्दिरो में नरबलि प्रथा का प्रचलन था। इसी प्रकार के एक मन्दिर हैं ताम्रेश्वरी मन्दिर। यह शादिया राज्य में स्थित हैं। इसी मन्दिर के पुजारी लांफाइ के बेटी आघोणी को धनेश्वर नाम के युवक शादी करना चाहते थे। लांफाइ को ये मंजूर नहीं था। उसने एक षड़यन्त्र रचा और ये साबित किया कि देवी धनेश्वर का बलि चाहती हैं। वैष्णवी आकर वैष्णव धर्म के माहात्म्य का प्रचार करती हैं और बलि प्रथा को गलत साबित कर धनेश्वर को बचाती हैं।

दन्दवा द्रोहः इसका प्रकाशन काल 1929 हैं। कामरूप राज्य के दो प्रतापी वीर भाई हरदत्त और वीरदत्त ने मिलकर दन्दुवा द्रोह का प्रारंभ किया था। आहोम राजा के शासन के खिलाफ। उन दोनों के अथक परिश्रम से कामरूप राज्य में सुख-चैन थोड़े दिनों के लिए आते हैं। धीरे-धीरे आहोम शक्ति का मुकाबला वे लोग नहीं कर पाये। एक भा युद्धक्षेत्र में ही प्राणत्याग करते हैं और दूसरे भाई को प्राणदण्ड दिया जाता हैं।

रहदै लिगिरीः इसका प्रकाशन काल 1930 हैं। रहदै लिगिरी का पूरा जीवन दुःख और वेदना में ही कट जाते हैं। उसका प्रेम कभी सफल नहीं हो पाता हैं। राजा उसको जबर्दस्ती पकड़ के ले जाकर महल के दासी बनाते हैं। रानी बनाने का वादा करके मुकर जाते हैं। महल से भागकर रहदै वापस अपने गाँव आती हैं पर गाँव वालों के अत्याचार से पीड़ित होके आत्महत्या करने की कोशिश करती हैं। फिर एक साधु उसकी प्राण रक्षा करके उसे आश्रम में ले जाते हैं। मुलतः रहदै का पूरा जीवन अशान्तिमय ही रहती हैं।

खाम्बा-थोइबी : इसका प्रकाशन काल 1932 हैं। इस उपन्यास की मुख्य कथा मोइरां राज्य के वीर पुरेनबा के सन्तान खम्बा और मोइरां की राजकुमारी थोइबी के अमर प्रेम कथा हैं। खम्बा और थोइबी के प्रेम सरल नहीं थे। अनेक जटिल परिस्थिति तय करके दोनों के मिलन होते हैं।

बरदलै जी के उपन्यास नायिका प्रधान हैं। ये नायिका कोपपूर्ण, अभिमानिनी, निर्दया और व्याभिचारिणी नहीं हैं। सरलता से जीवन जीने वाली हैं। वे पुरुषों को हर परिस्थिति में सहायता करती हैं। त्याग और बलिदान इनकी मूल शक्ति गैं बरदलै जी के उपन्यासों में चित्रित प्रेम के स्वरूप को नारी पात्र के द्वारा ही पूर्णता प्राप्ति हुई है।

उनके उपन्यासों में नायक से ज्यादा नायिका का उत्साह हैं। जैसे- 'मिरि जीयरी' में पानेइ, 'रहदै लिगिरी' में रहदै, 'रंगिली' में रंगिली, 'मनोमती' में मनोमती, पदुमी, पमीला आदि, 'नाम्रेश्वरी मन्दिर' में आघोणी, वैष्णवी, 'निर्मल भक्त' में रूप ही आदि का अवदान उल्लेखनीय हैं। उनके ज्यादातर उपन्यासों के नामकरण भी नारी पात्रों के नाम से ही हुआ हैं।

बरदलै के उपन्यासों के नारी पात्र इतनी सरल और सहज हैं कि वे प्रथम मिलन में ही पुरुष पात्र के प्रति आकर्षित हुई हैं। जैसे 'मनोमती' में वरपेटा के कीर्तन घर में चल रहे होली उत्सव में लक्ष्मीकान्त और मनोमती के प्रथम मिलन हुआ था।

'ताम्रेश्वरी मन्दिर' में धनेश्वर ने आघोणी को खेत में प्रेम निवेदन किया था और आघोणी ने भी उसे समर्थन किया। 'रंगिली' में शान्तिराम ने नदी में पानी लाते वक्त पदुमी को प्रेम निवेदन किया था। तभी से वो शान्तिराम के प्रति समर्पित हुई थी। 'खाम्बा-थोइवी' में थोइवी लगतक तलाब में खुमनु के साथ मछली पकड़ रही थी। तभी खम्बा नाव लेके वहाँ पर प्रवेश करते है। खम्बा को देखके थोइवी के मन में प्रेम जाग्रत हुआ।

पहली मुलाकात में ही बरदलै के नारी पात्राओ ने अपने आपको प्रेमी के चरण में समूर्पत किया हैं। किसी के जीवन में सुख रूपी कमल नहीं खिलता है तो वे धर्म का आश्रय लेती हैं। असीम त्याग और धैर्य के कारण ही ये नारी पात्र भारत के किसी भी महान नारिओं के समकक्ष ठहरती हैं।

बरदलै के एकमात्र सामाजिक उपन्यास मिरि जीयरी के मुख्य नारी पात्र है पानेइ। पानेइ जंकि से प्यार करती थी। जंकि निर्धन हैं इसीलिए पानेइ की माता-पिता जंकि को अपना दामाद नहीं बनाना चाहते। फिर भी पानेइ अपनी धैर्य और कर्तव्य के प्रति पूरा ख्याल रखती हैं।

माता-पिता के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए वो कहती है- 'अगर माँ और पिताजी शादी के लिए राजी हुए तब ही में शादी करूँगी।'[5]

पानेइ एक साहसी और बुद्धिमती युवती हैं। अपने प्रेमी जंकि से मिलने के लिए घर से उसे भागना पड़ता है और अन्त में गाछी मिरिओं के हाथों मरना पड़ता हैं।[6]

डालिमी मिरि- जीयरी के एक उल्लेखनीय नारी-पात्र हैं। डालिमी मन ही मन जंकि को चाहती हैं। जंकि के जीवन में पानेइ की स्थान कोई नहीं ले सकता है। डालिमी जंकि को अपने जीवनसाथी बनाना चाहती है पर जंकि और पानेइ के गभीर प्रेम के बारे में पता चलने से डालिमी अन्दर से टूट जाती हैं पर कभी भी उसके मन में ईर्ष्या भाव नहीं आता है। अपने त्याग के जरिए हमेशा वह जंकि के शुभचिन्तक ही रही।

डालिमी के जीवन में प्रेम को कभी पूर्णता नहीं मिला। फिर भी दायित्व और कर्तव्य की वजह से उसे अपने प्रेमी को प्रेमिका से मिलने के लिए सहायता करनी पड़ती है। यही है बरदलै के उपन्यासों में यथार्थ और आर्दश का करूण मिलन।

'मनोमती' उपन्यास में मनोमती नायिका है। बचपन में ही उसके माता-पिता गुजर गये। चण्डी बरूवा ने उसे अपनी बेटी की तरह पाला-पोसा। लक्ष्मीकान्त वरुवा से वह प्रेम करती थी और अन्त में विवाह भी हुआ उसके साथ। मनोमती बुद्धिमत्ता से अपनी रक्षा खुद कर सकती थी। मान सेनापति मगिमाहा के बुरी नजर से बचने के लिए उसने उसे बुरी तरह से फटकारा।

पमीला एक आर्दश सहेली और वीरांगना थी। सहेली मनोमती के सुख-शान्ति के लिए उसने अपना सब कुछ न्योच्छावर कर दिया। पमीला शान्तिराम से मन ही मन प्रेम करती थी। पमीला मनोमती और लक्ष्मीकान्त का गन्धर्व विवाह करा देते है। मान सैन्य के हाथों से भागते समय उसने पहले मनोमती को भेजा बाद में खुद के बारे में सोचा। पमीला नें राजनीति का भी ज्ञान था। वह युद्ध के दाँव-पेंच भी जानती थी।

पदुमी एक ऐसी पात्रा है जिसकी बरदलै जी ने दो उपन्यासों में उल्लेख किया है। उसके जीवन के दो अध्याय है। पहला अध्याय 'रंगिली' उपन्यास में है और दूसरा अध्याय 'मनोमती' उपन्यास में हैं।

पदुमी का जीवन दुःख और दर्द से भरा हुआ हैं। बाहर से देखने से उसके चारित्रिक पतन पाठक के समझ में नही आता हैं पर अन्दर ही अन्दर हमेशा वह स्वदेश और असमीया जाति के उन्नति के बारे में सोचती रहती थी। पदुमी मान सेनापति मिंगिमाहा के साथ रहती थी। इसीलिए जब उसे मौका मिला तुरन्त उसने मान के हाथों बन्दी असमीया लोगों को मुक्ति दिलाती है। इसके बाद उसने मान सैन्य के सामने सब कुछ खुलके कहती हैं। परिणाम ये होता हैं कि मान उसको जिन्दा जलाके मार देता हैं। मूलतः स्वदेश और स्वजाति के लिए वे अपने आपको बलिदान कर देती है।

'रहदै लिगिरी' उपन्यास के मूख्य पात्री रहदै पहले एक साधारण युवती थी। दयाराम को वह अपना सर्वस्व समझती थी। लेकिन परिस्थितिवश दुर्भाग्य से उसे राजमहल जाना पड़ा। वहश्वपर उसे लिगिरी बनके रहना पड़ा। उसने अपना घर-वार खोया, प्रेमी को छोड़ना पड़ा। फिर भी वह दृढ़मना है इसीलिए राजमहल के सभी लोग उसे आदर करते हैं। राजा उसको रानी बनाने का प्रलोभन देकर उसको अपने पास लाना चाहते हैं पर रहदै राजा को कहती हैं- 'जब तक आप नियमानुसार मुझे रानी नहीं बनायेंगे तब तक में आपके दासी ही रहुँगी।' इस उक्ति से उसके चारित्रिक उज्वलता का आभास मिलता है।

रूप स चर्दार, जन्मि और गाँव के कुछ गुण्डे युवको ने रहदै को भ्रष्ट करने की कौशिश की फिर भी अपने साहस, धैर्य और बुद्धि से वे अपने आपको रक्षा कर पायी।

इसके बाद उपन्यास के अन्तिम खण्ड में रहदै वैष्णव धर्म की शरण में आती है। स्वामी आगमानन्द के शरण में दीक्षा लेके वह वृद्धा जैसी बन जाती हैं। यहाँ पर उपन्यासकार ने कुछ अलौकिकता का आश्रय लिया हैं। पर जो भी हो रहदै के चारित्रिक उज्वलता का उपन्यास के किसी भी स्थल पर म्लान नहीं हुआ है।

माहैन्द्री राजा चन्द्रकान्त की रानी थी। वह पतिभक्ता थी। नारी के स्वभाव गत प्रवृत्ति ये होती हैं कि नारी अपने पति के साथ दूसरी नारी को वर्दास्त नही कर सकती है। सौतन को कभी सहज भाव से नही ले सकती। यही बात माहेन्द्री की भी हुई। रहदै के प्रति रानी के मन में क्रोध की भावना थी। क्योंकि राजा रहदै को रानी बनाना चाहते थे। इसीलिए वे रहदै को कहती है - 'रहदै, एक बात पुछती हूँ। झूठ मत बोलना। झूठ बोलने से तेरा बुरा होगा।'[7]

जब राजा को रहदै और दयाराम के बारे में पता चलता है तब रानी के प्रयत्न से राजा दोनों को आजाद कर देते हैं। इसके जरिए रानी रहदै को अपने रास्ते से हटाने में सफल हो सकी है।

'रंगिली' उपन्यास की नायिका रंगिली बुद्धिमती, घर के कामो में निपुण, आनन्द

से रहने वाली, नाच-गाने में तेज युवती है। जीवन में कितने भी दुःख-कष्ट क्यों न आये कभी भी हँसना नही छोड़ती है। सत्राम नामक युवक से उसे प्रेम था पर सत्राम को जब राजघराने में 'फुकन' पद मिला तब उसे रंगिली से स्नेह नहीं रहा। फिर भी रंगिली ने कभी सतराम पर अभिमान नहीं किया। वह अपने पिताजी का हर समय ख्याल रखती है। सतराम से कहती है- 'मै हमेशा धैर्य से तेरा ही ध्यान करती रहूंगी'[8] इस कथन से उसके पवित्र प्रेम के स्पष्ट आभास मिलता हैं।

पदुमी एक बड़ी ही प्यारी लड़की है। वह कमल के कली की तरह सुन्दर थी। उसका स्वभाव बड़ा ही प्यारा था। वह सुन्दर थी पर उसे इसका अभिमान नहीं था। अपने प्रेमी शान्तिराम के साथ घर वसाने का जो स्वप्न उसने देखा था वह टूट गया। मान सेनापति मिंगिमाहा ने उसे अपने साथ रख लिया। फिर भी उसके मन में स्वदेश, स्वजाति आदि के प्रति निष्ठाभाव हमेशा रहा। गुप्त रुप से वे मान सैन्य के हाथो से बन्दी असमीया लोगो को मुक्त होने में सहायता करती रही।

'निर्मल भकत' उपन्यास के उल्लेखनीय नारी चरित्र है रूपही। रूपही उपन्यास की नायिका है। बचपन से ही मन ही मन उसने निर्मल को अपना सब कुछ मान लिया था। गुड़ियो की विवाह कराते वक्त रूपही अनिराम से कहती है- 'अनि। तु क्यों झगड़ा करता है? आज के दिन निर्मल को दुल्हा बनने दे। कल जब हम लोग खेलेंगे तो तु दुल्हा बनना।'[9]

जीवन के प्रथम स्तर पर तो रूपही और निर्मल बहुत खुश से रहे। घर के लोग उन दोनों की छादी से खुश नहीं थे। इसीलिए भाग के दोनों ने छादी की। निर्मल को बाप का आर्शीवाद नहीं मिला। जो भी हो भाग्य की ही बिडम्बना थी की निर्मल और रूपही एक साथ नहीं रह पाये। मान के हाथों बन्दी बनकर निर्मल को मानेदश जाना पड़ा और 12 वर्ष तक वहीं पर रहना पड़ा। रूपही उसके इन्तेजार में रोते-रोते दिन बिताये और जब निर्मल नहीं आये तो गाँव वालो ने रूपही और अनिराम की शादी करा दी। दोनों के एक बेटा भी हुए। इसके बाद निर्मल लौट आये लेकिन तब तक बहुत देर हो गयी थी। निर्मल ने अपनी आँखो से उन दोनों को खुश देखा तो उसने सन्यासी का रूप धारण किया और बहुत दूर चले गये। जीवन के अन्तिम दिनों तक रूपही और अनिराम को ये पता नहीं चला कि निर्मल जिन्दा है।

इस उपन्यास में रूपही के जरिए उपन्यासकार ने नारी के आत्मनिर्भरशील रूप और आत्मसंयम पर प्रकाश डाला है। 12 सालों तक निर्मल से दूर रह कर भी रूपही ने एक पल के लिए भी मन में किसी भी प्रकार की दूसरी भावना को स्थान नहीं दिया। अनेक ठोकरे खाते फिरे, दूसरो के खेत में काम किया फिर भी अपनी दृढ़ता नही छोड़ी। नारी जितना भी क्यों न आगे बढ़े बिन पुरुष के वो अधूरी हैं। इस अपूर्णता की पूर्ति की अनिराम ने, जिसने रूपही को मन ही मन बचपन से चाहा था।

रजनीकांत बरदलै के उपन्यासो के मुख्य अंग है प्रेम। उनके प्रेम भौतिक स्तर से ऊँचे उठकर आध्यात्मिक तक पहुँच गये हैं। उनके उपन्यासो में प्रेम के स्वरूप सागर जैसा गहन और चन्द्रमा जैसी स्निग्ध है। बरदलै जी के उपन्यासों के नारी पात्र सामाजिक बन्धनों के दायरे में रहती है। ये नारी पात्र बलिदान की भावना से युक्त होने के कारण अपना सर्वस्व देती है, कुछ नही माँगती है।

कुछ उपन्यासों के नारी पात्र प्रेम में विफल होके आध्यात्मिक क्षेत्र में आ जाती है पर आत्महत्या के बारे में नहीं सोचती हैं। इसके बारे में बरदलै ने कहा है- 'जिस उपन्यासों का अन्त आत्महत्या में होता हैं, वैसे उपन्यासों से हमारा कभी भी भला नहीं हो सकता हैं।'[10]

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. गोस्वामी, त्रैलोक्यनाथ, साहित्य आलोचना, शर्मा ब्रदर्स. एण्ड कोम्पानी, नलवारी, प्रथम संस्करण-1951, पृष्ठ- 27
2. शर्मा, सत्येन्द्रनाथ, असमीया उपन्यास भूमिका, सोमार प्रिंटिंग प्रेस, गुवाहाटी, तृतीय संस्करण, 1989, पृष्ठ-21
3. Bardoloi, Nirmalprabha, Rajani Kanta Bardoloi Sahitya Akademi, New Delhi, 1st Published 1995, Page-41.
4. गोस्वामी, त्रैलोक्याथ, साहित्य आलोचना, शर्मा ब्रदर्स एण्ड कोम्पानी, नलवारी, प्रथम संस्करण-1951, पृष्ठ-42
5. बरदलै, रजनीकांत, मिरि जीयरी, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी, नयी संस्करण 2010, पृष्ठ-16
6. बरदलै, रजनीकांत, रहदै लिगिरी, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी, नयी संस्करण-2011, पृष्ठ-52
7. वही, पृष्ठ-55
8. बरदलै, रजनीकांत, रंगिली, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी, नयी संस्करण-2010, पृष्ठ-24
9. बरदलै, रजनीकांत, निर्मल भकत, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी, नयी संस्करण-2010, पृष्ठ-27
10. वरूवा, प्रहलादकुमार, उपन्यास, वनलता प्रकाशन, नतुन बाजार, डिब्रूगढ़, तृतीय संस्करण-1987, पृष्ठ-52

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA

ISSN 0973-3914
9 770973 391009

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications, 41/42 Raghuwans Sadan, Bichhiya, Rewa, 486001 (MP) and Printed at Yuvraj Press, Ghoghar, Raniganj, Rewa 486001 (MP)